

मास्टर्स इन
कौटिल्य राज्यशास्त्र और अर्थशास्त्र
(MKPE)

Study Material

(For Private Circulation only)

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य (MK03)

भीष्म स्कूल ऑफ इंडिक स्टडीज

www.bhishmaindics.org

Table of Contents

युनिट १ : भारतीय कालगणना विषयक समस्या.....	4
१.१ परिचय:	4
१.२ ऋग्वेद का काल :	10
१.३ भारत युद्ध :	25
१.४ पुराण - महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत:	49
१.५ सरस्वती- सिंधु सभ्यता और महाभारत:	71
१.६ यह सँझाकोट्टस कौन था?	89
१.७ बुद्धका काल:	91
१.८ पौरव वंश:	91
१.९ इक्ष्वाकूका सूर्यवंश :	92
१.१० मगध सम्राट :	92
१.११ नंद वंश:	97
१.१२ मौर्य वंश :	98
१.१३ कण्व वंश:	101
१.१४ ज्योतिषात्मक प्रमाण:	124
१.१५ भगवान महावीर का काल:	126
१.१६ गुप्तवंशकी कालगणना- एक स्पष्टीकरण :	134
युनिट २ : महाभारत युद्ध के बाद के वंश.....	154
२.१ पौरव वंश:	154
२.२ सूर्यवंश:	156
२.३ शिशुनाग वंश:	160
२.४ नंदवंश:	162
युनिट ३ : आर्य चाणक्य	167

३.१ महत् आय चाणक्यः.....	167
३.२ अर्थशास्त्रः	173
३.३ राजा का दायित्वः.....	175
३.४ सामाजिक जीवन :.....	186
३.५ सुनियोजित शहर का जीवन :.....	194
३.६ कौटिल्य और मॅकिअँडेली के बीच विचारों की समानता थी क्या? :.....	199
Reference Books List – Masters in Kautilya Politics and Economics	203

© Bhishma School of Indic Studies

Website: www.bhishmaindics.org

1. STRICTLY FOR PRIVATE AND RESCTRICTED CIRCULATION ONLY
2. Pune India CityJurisdiction

युनिट १ : भारतीय कालगणना विषयक समस्या

१.१ परिचय:

साधारण अभ्यासकों एवं विद्वानोंकोभी भारतीय कालगणना का विषय बहुत असंभाव्य चीजोंसे घिरा हुआ प्रतीत होता है। किंतु पाश्चिमात्य विद्वानोंके इस क्षेत्र में प्रविष्ट होने से पहले ऐसी बात नहीं थी। हमारी कालगणना को संदेह से देखने के कारण उनकी यह धारणा थी की, बायबल के समान सृष्टि-उत्पत्तिकाल ख्रिस्तपूर्व चार हजार वर्षसे अधिक प्राचीन न होनेपर यह पराजित भारतीय लोग सृष्टि के अनादि होने का प्रतिपादन करते हैं और यह भी निश्चित तोरपर कैसे संभव है? पाश्चिमात्य विद्वानोंने और भी स्पष्टतापूर्वक यह भी कहना आरंभ किया कि, भारतीयोंके पास ऐतिहासिक नजरियाँ नहीं था और इसलिए भारतीय कालगणनाका अतिप्राचीन होने का सिद्धांत ग्रहण करने योग्य नहीं। आजकल पाश्चिमात्योंका यह नजरियाँ बदलने लगा है। पर इससे पहले उन्होंने इस क्षेत्र में कियी हुई हानी को देखनेपर, इस विषयपर पुनर्विचार कर पाश्चिमात्यों के तर्कके हेत्वाभास को दूर करना और हमारे इतिहासका महाभारत युद्ध, शकारि विक्रमादित्य और शालिवाहन के राज्यकाल की वास्तविकता, आद्य शंकराचार्य का काल, आदि प्रमुख प्रसंगोंका ऐतिहासिक स्वरूप प्रस्थापित करना जरूरी है। प्राचीन भारतीय ऋषीमुनीयोंने अपने ऐतिहासिक विवेचन का प्रारंभ सृष्टिनिर्मितीसे किया। किन्तु गणना करना सरल होने के लिए उन्होंने वर्तमान सृष्टीका काल ब्रह्मदेवके सौ वर्षोंके आधारपर माना। उनके अनुसार आजतक इनमेसे ५० साल बीत गए हैं, ब्रह्माका इक्यावनवाँ वर्ष शुरू है।

एक मानव वर्ष याने देवोंका एक दिन और एक रात होती है। छह महिन्योंका एक ऐसे दो अयन होते हैं। प्रथम अयन को उत्तरायण कहा जाता है, वह प्रतिवर्ष सर्दी के मौसम में जो सबसे बड़ी रात होती है उसके दुसरे दिन याने २१ दिसंबर से शुरू होता है और २० जून के आसपास समाप्त होता है। यह देवोंका (सूर्यप्रकाशयुक्त) दिन (अहन्) होता है। तथापि प्रतिवर्ष २१ जून से २० दिसंबर तक के छह मासोंको दक्षिणायन कहा जाता है। यह देवोंकी रात होती है। ऐसे बारह हजार देव-वर्षोंका चतुर्युग आगे बताया है,

युग	देववर्ष	देवदिन	मानव वर्ष
१) कलि	१२००	१२०० X ३६०	४,३२,०००
२) द्वापर	२४००	२४०० X ३६०	८,६४,०००
३) त्रेता	३६००	३६०० X ३६०	१२,९६,०००
४) सत्य अथवा कृत	४८००	४८०० X ३६०	१७,२८,०००

इस तरह से एक चतुर्युगमें कुल मिला कर ४,३२०,००० साल होते हैं। एक संस्कृत श्लोक में इनमेंसे हर युग की विशेषता दर्शायी है –

“कलिः शयानो भवति संजिहानः तु द्वापारः

उत्तिष्ठानः त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥”

‘कलियुगमें मानव आलसी और द्वापारमें कर्मशील बनते हैं, त्रेतामें वे अधिक कर्मनिष्ठ बनकर सत्य (कृत) युगमें सात्विकता की तरफ बढ़ते हैं’

ऐसे एक सहस्र चतुर्युग, अर्थात् ४३२,००,००,००० मानव वर्ष ब्रह्माकी एक रात होती है, इनमेंसे आधे २१६ कोटी वर्ष दिनके और शेष रातके होते हैं। इसका आशय ऐसा है, कि सृष्टिनिर्मितीकी प्रक्रिया २१६ कोटी वर्षोंतक चलती रहेगी; और बादमें ब्रह्मदेव की रात शुरू होकर लय प्रक्रिया का आरंभ होगा।

ब्रह्मा के ऐसे हर एक दिनको ‘कल्प’ कहते हैं और इसमें चौदह मनु होते हैं, वर्तमान के समय ५१ वा वर्ष शुरू है, याने ब्रह्माके पचास वर्ष बीत चुके हैं - $४३२,००००,००० \times ३६० = १५५५२०,००००,००० \times ५० = ७७७६०००,००००,०००$ मानव वर्ष होते हैं। बेशक एक अजस्र संख्या!

हिंदूओंकी प्रार्थना में आगे दिया गया ‘संकल्प’ है,

"श्रीमद् भगवतो महात्पुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे... सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगचतुष्टये कलियुगे प्रथम चरणेनाम्नि संवत्सरे..... अद्य वासरे" संकल्प के अनुसार वर्तमान कलियुग वर्ष (जनवरी ई.स. १९८७ में) ५०८८ है। इसमें कहा है कि, ‘भगवान् महापुरुष विष्णुकी अनुमति से ब्रह्माके वर्षके उत्तरार्ध का आरंभ हुआ है, यह श्वेतवाराह कल्प है; आज ब्रह्माके ५१ वे वर्ष के वर्तमान कल्पमेंसे मानव वर्षका १९६,२९,४०,०८८ वा दिन शुरू है।’ इससे ई.स. १९८७ युगाब्द ५०८८ वा साबित होता है, यह कौनसी भी हिंदू पंचांग में दिया हुआ नजर आएगा। यह ‘कल्प

दिवस' लगभग तीस (२१६ - १९६) कोटी वर्षों के बाद समाप्त होगा और कल्प की रात (दुनिया के अंत का आरंभ) शुरू होगा। इस तरह से इस गणनानुसार मानव (इस कल्पमें) और कमसे कम तीस कोटी सालों तक जीवित रहेगा।

ऐसे अगणित कल्प बन चुके हैं और असंख्य बनते भी रहेंगे। इसलिए विश्वको अनादि अनंत कहा है। उपरोक्त चौदह मनुओं के नाम ऐसे हैं - स्वायंभुव, स्वरोचिष, उत्तम, तमस्, रैवत, चाक्षुष्, वैवस्वत, सावर्णि, दशसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। वर्तमान मनु वैवस्वत है; वह साँतवा है। उसके नामानुसार उसे विवस्वानका अर्थात् सूर्यका पुत्र कहा गया है। इस बातका आशय यह है, वर्तमान मानव - वर्ष - चक्र आरंभ हुआ तब प्रथम राजा बहुत धार्मिक, वीर और विक्रमी था जैसे साक्षात् सूर्य का पुत्र हो, इतने महत् गुणोंसे संपन्न था।

इस तरह से वर्तमान सृष्टि लगभग १९६ कोटी वर्ष पुरातन होते हुए यह वर्षसंख्या ब्रह्माद्वारा इससे पूर्व बने हुए सृष्टिनिर्मितीके ७७७६००० कोटी वर्षोंसे अतिरिक्त है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती आई है जिसका कोई आदि अंत नहीं है। इस बात की खोज हमने की इस बात को वैदिक द्रष्टा नहीं मानते बल्कि यह परम विशुद्ध ज्ञान संपूर्णतः विकाररहित बुद्धिकी अवस्थामें अपने अंतर्दृष्टीसे वेदों के रूपमें प्राप्त हुआ ऐसा उनका कहना है। आज वेदोंका अर्थ ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चार वेदों के रूपमें माना जाता है। फिर भी वास्तव में उसका अर्थ अनंतदृष्टीसे प्राप्त हुआ ज्ञान ऐसा था। 'वेद' शब्द विद् याने 'जानना' धातु से उत्पन्न हुआ है।

वैदिक ऋषि अपने मतों को लेकर हठिले नहीं हैं। उनका इतना ही कहना है कि, यह विशुद्ध सत्य ज्ञान उन्हें परमपवित्र अंतर्दृष्टीद्वारा, अथवा योगी अरविंद के शब्दोंमें "The pressure of consciousness on its own being". द्वारा प्राप्त हुआ। महाभारत में कहा है -

युगान्ते अंतर्हि तान्वेदान् स इतिहासान् महर्षयः

लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा।। शांतिपर्व, २१०-११

"स्वयंभू के आदेशानुसार प्राचीन कालमें महर्षिने पूर्वयुगके अंतमें लुप्त हुए वेद और इतिहास तपद्वारा प्राप्त किए।" इस कारण ब्रह्मा के हर दिनसे सृष्टी का प्रारंभ होकर उसका अस्तित्व बनता है, और हर एक रात को नष्ट होता है। यह ऋग्वेद के अगले मंत्रमें निर्देशित किया है -

देवानाम् तु वयं जाना प्रवोचाम् विपन्यया

उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्याद् उत्तरे युगे ॥ १०-७२-१

"अब एक विशेष प्रार्थनाद्वारा देवोंकी सृष्टि निर्माण प्रक्रिया का हम वर्णन करते हैं; मतलब भविष्यकालीन युगमें इन ऋचाओंका पठन होकर आनेवाली पिढीयोंको इस प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त होगा।" इस मंत्रमें आगे कहा है कि, ब्रह्मणस्पतीने (ब्रह्माने) यह विश्व, किसी लुहार के समान, जैसे अभावसे (शून्य से) निर्माण किया। यह व्यक्त विश्व अव्यक्त ब्रह्म तत्त्वसे उत्पन्न हुआ।

विश्व कैसे निर्माण हुआ इस बातका विस्तृत वर्णन ऋग्वेद के १०-१२९ अतीव सुंदर एवं अप्रतिम काव्यात्मक मंत्रमें मिलता है, उसका अनुवाद देखिए -

“उस समय सत् नहीं था और असत् भी नहीं था; नीचे भूमि नहीं थी और उपर आकाशभी नहीं था; वहाँ कुछ भी नहीं था; तो आवरण कहासे होगा और पालनकर्ता भी कौन हो सकता था ?” – (१)

“वहाँ मृत्यु नहीं था और अमरत्वभी नहीं था; रात-दिनका भेद नहीं था; वायुहीन शून्य में 'एक' अपने सामर्थ्यद्वारा उसका आवेश हुआ; 'एक' के अलावा अन्य कुछ भी नहीं था” – (२)

“उसमें सबसे पहले तमका अर्थात् भेदरहित एहसासका और जलतत्त्वका उद्भव हुआ; और फिर तम के कारण सूक्ष्म आवृत चैतन्य का उद्भव हुआ” – (३)

“उस 'एक' में प्रथम मनका मूलबीज 'काम' पैदा हुआ; मंत्रद्रष्टा ऋषियोंने अपने हृदयमें अनुभव किया कि, सृष्टीका उस 'अव्यक्त एक' से संबंध है” – (४)

“प्रकाश किरणोंने 'नीचे' (व्यक्त) और 'उपर' (अव्यक्त) इन दोनोंको अलग किया है। वहाँ आदिबीज और महान व्यक्तरूप धारण करनेका सामर्थ्य है; स्वतंत्र इच्छाशक्ति वहाँ नीचले स्थानपर है और चेतना ऊपरि स्थानपर है।” – (५)

“(यह सृष्टि निर्माण प्रक्रिया) कौन समझाता है ? और कौन (वह) हमें बता सकता है ? इस सृष्टी का उद्भव कहाँ से हुआ ? और उसके निर्माण की प्रक्रिया क्या है ? देव इस निर्मिती के बाद बने; फिर इन सबकी उत्पत्ति कैसे हुई यह कौन बताएगा ?” – (६)

विविधता से घिरी हुई इस सृष्टी का कहाँ से आगमन हुआ? इसे 'एक' ने ही निर्माण किया अथवा नहीं यह परमज्ञानी 'वह' ही जानता है; और 'वह' ही नहीं जानता तो अन्य कोई भला जान सकता है क्या ?

इन ऋचाओंमें सृष्टीरचनाको सरल शब्दोंमें चित्रित किया है। बहुत पहले प्रारंभमें क्या था ? शुरुवातमें केवल वह 'एक' अकेला (अ - द्वितीय) तत्व था। यह वेदान्तदर्शन का 'ब्रह्म' होता है। महान दार्शनिक आद्य

शंकराचार्य स्पष्ट करते हैं, 'वह' सबसे ज्येष्ठतम होने से (वृद्धमत्वात्) उसे 'ब्रह्म' कहके संबोधित किया है। आचार्य 'वह' सबसे बड़ा होनेसे (बृहत्तमत्वात्) उसका बृह (= बढना, बड़ा होना) ऐसेभी वर्णन करते हैं। यह ब्रह्म के बारेमें संकल्पना व्यक्तिरूप ईश्वरवाद की नहीं है। वह विश्वसे अलग है। वेदान्त दर्शन के अनुसार 'ब्रह्म' और (तद्वत्) 'विश्व' समान अर्थवाले शब्दप्रयोग है।

उस 'एक' को आत्मप्रेरणासे कामना हुई के खुद ही मूर्तिरूप धारण कर इस विभिन्न सृष्टीद्वारा व्यक्त होते हैं। उसने ऐसी भी कामना की इस 'सृष्टी' को स्वतंत्र इच्छाशक्ति हो सकती है, परंतु उस व्यक्त सृष्टीके पिछे रहनेवाली उर्जाशक्ति स्वयं उस 'एक' की हो सकती है।

उस 'एक' के व्यक्त स्वरूप धारण करनेकी प्रक्रिया द्रष्टा ऋषियोंद्वारा इसप्रकार वर्णन की है। उस 'एक' से पुरा भेदभाव रहित चैतन्य, याने विशाल स्थलाकाश निर्माण हुआ, फिर उसमें गति, हवा और आप (जल) निर्माण हुआ; बादमें तेज (प्रकाश) आकर उससे सृष्टीका बीज निर्माण हुआ।" यह उसके निर्माण किये हुए मूलभूत तत्त्व कह सकते हैं। वैज्ञानिक परिभाषामें उन्हें १) गुरुत्वाकर्षण, २) क्षीण अंतःक्रिया ३) प्रबल अंतःक्रिया और ४) विद्युत चुंबकत्व ऐसे नाम दे सकते हैं।

इससे अधिक जानकारी ऋग्वेद मंत्र १०-१२१ में दिखाई देती है। किंतु उपर दिये गए उद्धरणोंसे यह दिखाई देता है कि ऋग्वेदीय द्रष्टाओंने मानवी चिंतन के क्षेत्रमें कितनी अतुलनीय बुद्धिमत्ता प्रकट की थी। इसलिए कुछ पाश्चिमात्य विद्वानोंनेभी ऋग्वेद की उचित प्रशंसा की है। इसके के साथ ही उन्नीसवीं सदी के अभ्यासकोंकी पूर्वग्रह के कारण दूषित वृत्ति को प्रकट करते हुए A. B. Keith कहते हैं, ".....The Rigvedic poets never attain any very great command of their material whether in language or metre, though in certain cases poetic results are attained by simple means. To the end the structure of the sentences remains naive and simple and when the poet seeks to compass more elaborate thought, his power of expression seriously fails him. (ऋग्वेदीय कवी कुछ स्थानपर साधारण रचनाद्वारा भले ही काव्य निर्माण करते हैं, पर भाषा और छंद की नजरियेसे वे कभीभी अपने विषयवस्तु पर जादा प्रभुत्व प्राप्त नहीं करते; अंततो गत्वा वाक्यरचना कलाहीन और सरल होती है, और जब कवि विशेष गहरी सोच की तरफ बढ़ता है तब व्यक्तिकरणसामर्थ्य लडखड़ा जाता है।") A. B. Macdonell कहते हैं, "Such myths have their source in the attempt of the human mind, in a primitive and unscientific age." (ऐसे पुराणकथाओंका उद्भव प्राथमिक विज्ञानपूर्व युग के मानवों के विचारों के प्रयासमें होता है।") यह वैदिक भाषा और संस्कृति से जुड़े एक पूर्वग्रहग्रस्त अपरिपक्व विधान है। उपर उद्धृत किए गए ऋग्वेद के १०-१२१ मंत्रोंमें सृष्टिनिर्मिती

की प्रक्रिया का वर्णन किया है। वह वर्णन आधुनिक परमाणविक भौतिक वैज्ञानिकों के प्रतिपादन का काव्यमय रूपांतर है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि, इस विश्वकी रचनामें हायड्रोजन मूल पदार्थ है जिसमें एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन होता है। उसमें न्यूट्रॉन नहीं होता है। वह एक अनन्य परमाणू है और उपरनीचे गतिमान होता रहता है। उसमें न्यूट्रॉनके न होनेसे वह स्थिर परमाणु नहीं है। सामान्य नजरसे वह देखा नहीं जा सकता; साधारण मानव उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता है। वैज्ञानिक नजरियेसे ही उसे देखा जा सकता है। उसकी उत्पत्ति किसी भी अन्य कारणोंसे नहीं हुई है। भौतिक विज्ञानका कार्यकारण नियम उसके लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता। इन सबके बावजूद वह किसप्रकार अस्तित्वमें आया यह बात कोई भी नियम नहीं बता सकता। वह जहाँ है वही है; इतनाही हम उसके बारेमें जानते हैं।

वह कहाँ (किसमें) गतिमान रहता है ? पिछली सदीका भौतिक विज्ञान का उतर था, 'ईथर (नामक सर्वव्यापी पदार्थ) में' परंतु वह ईथरकी संकल्पना अब अपर्याप्त है, और आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक इस संदर्भमें 'व्हॉक्यूम' (खाली जगह) शब्द का प्रयोग करते हैं, जो और भी उलझा हुआ है। उसकी अस्तित्व हीनतासे कोई समानता नहीं है। फिर वह निश्चित स्वरूपमें है क्या ? वैज्ञानिकों के पास इस बातका उत्तर नहीं है।

किंतु ऋग्वेद के द्रष्टा कहते हैं, “वायुहीन अवस्थामें उसे अपनेही संकल्पशक्तीद्वारा आवेश प्राप्त हुआ। यह फुरफुरी होना यही मूल प्रशांत स्थिती ढलने की निशानी है। यह ढली हुई स्थिती, यही सृष्टिनिर्मिती की शुरुवात है। उसे शब्दोंमें बयान करना संभव नहीं है, सत् (अस्तित्व), चित् (ऊर्जा) और आनंद (परम सुख) यह उसकी विशेषताएँ हैं।”

मूल हायड्रोजन परमाणुका निश्चित वर्णन शब्दोंसे परे है ऐसा भौतिक वैज्ञानिक भी कहते हैं; और वे भी उपनिषदों के समान 'नेति नेति' जैसे आशयपूर्ण शब्दोंका प्रयोग करते हैं। परमाणुओंके सूक्ष्म विश्वमें स्थूल जगतके कोई भी नियम लागू नहीं होते हैं। वह एक रहस्यमय स्वरूपका विचित्र जगत् है। अंतिम तत्व जो वेदान्तका 'ब्रह्म' हो या नाभिकीय भौतिक वैज्ञानिक जिसे मानते हैं वह अंतिम कण हो - वर्णन करते समय भाषामें स्पष्ट रूपमें समानता नजर आती है। अर्थात् वेदान्तीयों का ब्रह्म और भौतिक शास्त्रज्ञों का 'इलेक्ट्रॉन' अथवा क्वार्क, एक नहीं है। ब्रह्म क्वार्क के निर्माणकर्ता है। पहले पदार्थको शब्दों में गुंथते वक्त शब्द कम पड़ जाते हैं, यह बात साबित करने के लिए यहाँ 'नेति' 'नेति' शब्द का प्रयोग किया गया है।

इन सबसे यह अनुमान लगाया जाता है, के ऋग्वेदकालीन भारतीय बहुत प्रगत थे और उनका समय भारतीय परंपरा की धारणानुसार अतिप्राचीन था। परंतु भारतीय संस्कृतीका एक प्रमुख पाश्चिमात्य

विवेचनकर्ता मैक्स म्यूलर ऋग्वेदका काल ई. स. पूर्व १२०० का बताते हैं। वे वैदिक साहित्य के छंद, मंत्र, ब्राह्मण और सूत्र भागों में बाँटकर इसमें से सूत्र खंड बुद्धधर्म के उदय से पूर्वका न होने पर उसके राजकीय अभ्युदय के पूर्वका मानते हैं और हिंदुस्थान में बुद्ध धर्म के अभ्युत्थान का काल ई. स. पूर्व चौथी सदी मानकर, 'सूत्र' काल ई. स. पूर्व छठी सदी, ब्राह्मण रचनाका काल ई. स. पूर्व आठवीं सदी और मंत्रकाल एक हजार और 'छंद' काल ई. स. पूर्व १२०० बताया जाता है।

एक अन्य पाश्चिमात्य विद्वान श्री. हॉग (Haug) भी मनगढ़त गणना को स्वीकारकर उपर बताए गए हर विभाग को पाचसौ वर्ष देते हैं और वेदोंका काल ई. स. पूर्व २४०० से २००० तक का प्रतिपादित करते हैं।

वेबर भौगोलिक और ऐतिहासिक आधार पर कहते हैं, भारतीय साहित्य का आरंभ 'भारतीय आर्यों' का इराणी आर्यों के साथ वास करना अद्यापि शुरु था उस कालखंड के मुताबिक शायद पिछे लाया जा सकता है। बायबल के अनुसार पृथ्वी पर मानव-जीवन का आरंभ काल अर्थात् ई. स. पूर्व चार हजार वर्षोंका हो सकता है। बायबल के पुराने करार में (Old Testament) पहले पाँच खंड ज्यू के नेता मोइसेस ने लिखे हैं। उसके स्मृति के नुसार ख्रिस्तपूर्व पाँचवीं सदी में उनके पूर्वज उनका मूल ठिकाना 'बाबिलोन' के ऊर शहर में रहते थे, वह काल हो सकता है। यह काल सृष्टि - उत्पत्तीका है, ऐसा पाश्चिमात्योंका मानना गलत है। तिलक के निष्कर्ष के अनुसार वैदिक संहिता के निर्माण के आरंभ का काल यही हो सकता है। ऋग्वेद की प्रत्यक्ष रचना उससे भी बहुत प्राचीन है।

१.२ ऋग्वेद का काल :

ऋग्वेद के काल को निश्चित करने के लिए एकमेव विश्वसनीय आधार ऋग्वेद में अंतर्भूत ज्योतिष विषयक संदर्भ है।

वर्षगणना विभिन्न प्रकारों से हो सकती है। बारह चान्द्रमासों का 'चान्द्र' वर्ष (Lunar Year) ३५४ दिनोंका है और इससे ऋतुगणना नहीं की जा सकती। इसके अलावा सूर्योदय के आधार पर सौर वर्ष ३६० दिनोंका होता है। किंतु पृथ्वी एक नक्षत्र से निकलकर फिर से वही आती है, अर्थात् उसकी सूर्य की तरफ एक प्रदक्षिणा पूरी होती है, वह "नाक्षत्र" वर्ष होता है। (Sidereal year); ये ३६५ दिन, छह घंटे, नौ मिनट और कुछ सेकंड का होता है और बसंत संपात पर आरंभ होनेवाला 'सायन वर्ष' नाक्षत्रवर्ष से २० ४/१० मिनटों से छोटा होता है।

प्राचीन कालसे भारतीय पंचांग 'सांपातिक' वर्षगणनापर आधारित है। हिंदू प्रत्यक्षतः मास और वर्षोंके 'चांद्र' की गिनती करते हैं। हिंदू अपने धार्मिक कृत्य चांद्रमास के अनुसार गिनती करने के बाद ही करते हैं। पर लगभग २७ चान्द्रमहिने बितनेपर एक 'अधिक' मास को जोड़कर चांद्रगणना सौरगणना के साथ (और इसलिए ऋतुचक्र के साथ) करते हैं। तिलकजीके मतनुसार नाक्षत्र वर्ष सांपातिक वर्षसे किंचित् बड़ा होनेसे नाक्षत्र वर्षगणनामें लगभग दो हजार वर्ष ऋतुमान एक चान्द्र मास पिछे लाया जाता है।

प्राचीन समयमें वसंत संपातको ऋतुओंका मुख कहाँ जाता था। "मुखं वा एतद् ऋतुनाम् यद् वसन्तः" (तैत्तिरीय ब्राह्मण - १-१-२-६) वैदिक आधार उद्धृत कर तिलक इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं, 'इसके अनुसार आर्य संस्कृती के सबसे प्राचीन कालको 'अदिति' अथवा ओरायन - पूर्व कालखंड कहा जा सकता है और उसकी कालमर्यादा सामान्यतः ई. स. पूर्व ६००० से ई. स. पूर्व ४००० तक मानी जा सकती है। तिलक और लिखते हैं, 'इसके बाद ओरायन काल की तरफ बढ़ते हुए यह ज्ञात होता है, वह ई. स. पूर्व ४००० से ई. स. पूर्व २५०० तक का था। आर्य संस्कृतीके इतिहास का यह बहुत महत्वपूर्ण कालखंड है। ऋग्वेद के वृषाकपी सूक्त रचनाका यही काल हो सकता है। यह वृषाकपी की कहानी जिस वर्ष रची गई, उस वर्ष का जिक्र इस सूक्तमें हो सकता है। अन्य बहुत सूक्तोंका गान उस वक्त हुआ था।' तिसरा 'कृत्तिका कालखंड' वसंत संपातमें कृत्तिका नक्षत्र के समय आरंभ होता है और वेदांग ज्योतिषमें निर्दिष्ट किये गए कालतक याने ई. स. पूर्व २५०० से ई. स. पूर्व १५०० तक चलता है। यह तैत्तिरीय संहिता और बहुतसे 'ब्राह्मण' ग्रंथोंका रचना काल है।

तिलकजी को यह ज्ञात था कि, कृत्तिका के समान मृगशीर्षको नक्षत्रोंका मुख माननेका वैदिक साहित्य में कहींभी स्पष्टरूपमें संदर्भ नहीं है। और 'आग्रहायण' शब्द का मृगशीर्ष के लिए वैदिक ग्रंथमें स्पष्टरूपमें प्रयोग नहीं किया है। फिर भी तिलक आग्रहायण अर्थात् मृगशीर्ष ऐसा मानकर मृगशीर्षको नक्षत्रोंका मुख मानते हैं। और उससे यह निष्कर्ष करते हैं, प्राचीन समयमें वसंत संपातमें इस नक्षत्रमें हुआ करता था और वह समय ई. स. पूर्व ४००० से ई. स. पूर्व २५०० तक का हो सकता है। पर वैदिक साहित्यके स्पष्ट वचन कुछ और ही कहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में ऐसा वचन है, "कृत्तिकासु आदधीत, एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशः च्यवन्ते" ('कृत्तिका नक्षत्रके पवित्र अग्निमें हवन करना चाहिए, वे (कृत्तिका) पूरबसे ढलते नहीं हैं; अन्य सभी नक्षत्र पूरब दिशासे ढलते हैं।') यह उच्चारित स्पष्ट वचन तबकी कृत्तिकाओंकी स्थिती दर्शाता है। वहाँ ऐसेभी कहा गया है कि, जिस तरह से वसंत संपात ('वसंत ऋतु') ऋतुओंका मुख है उसी तरह से यह (कृत्तिका) नक्षत्र नक्षत्रोंका मुख है।

इस वचनसे यह दिखाई देता है कि, वह किया गया उस समय कृत्तिका नक्षत्र पूर्व क्षितिज के मध्यवर्ती विषुववृत्तीय बिंदूपर दिखाई देता था। श्री. शं. बा. दीक्षितजी को लगभग ई. स. १९०० में कृत्तिका विषुववृत्तके उपर याने उत्तर की ओर लगभग ६८ अंशमें दिखाई दिए। नक्षत्रोंका स्थान एक अंश से बदलने में ७२ वर्षोंसे कुछ कम समय लगता है। इस आधारसे कृत्तिका सन १९०० में कृत्तिका विषुववृत्तके ६८ अंश तक बनने के लिए $68 \times 72 = 4896$ वर्ष बीत गए होंगे। इसका अर्थ शतपथ ब्राह्मणमें आनेवाला वह वचन ई. स. पूर्व २९९६ (४८९६ - १९००) अथवा ई. स. पूर्व लगभग २९०० के आसपास लिखा गया था।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में और एक वचन है। “बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रं अभिसंवभूव” (३-१-१५) बृहस्पतीने (गुरु ने) पुष्य नक्षत्र को सर्वप्रथम ई. स. पूर्व ४६५० वर्ष में लांघा था। इससे तै. ब्राह्मणका काल ई. स. पूर्व ४६५० पता चलता है। ऐसा है तो, ऋग्वेदका काल ई. स. पूर्व ४६५० से बहुत प्राचीन हो सकता है; क्योंकि ब्राह्मण ग्रंथोंकी रचना ऋग्वेद के बाद हुई है।

ऋग्वेद में (४-५०-४) अगला वचन दिखाई देता है, “बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महः ज्योतिषः परमे व्योमन्” (जब बृहस्पति प्रथम दृश्यमान हुआ तब वह बहुत ऊँचे आकाशमें सबसे अधिक प्रकाशमान स्थान के उपर दिखाई दिया।) विभिन्न रचनाओंमें आनेवाले यह दो वचन एकही घटना के बारेमें हो ऐसा संभव है। इससे दिग्दर्शित होता है, 'ब्राह्मण' ग्रंथ भी वैदिक ऋचाओंके रचना के समय लिखे जाते थे।

'शतपथ ब्राह्मण' में आनेवाला एक संदर्भ देखिए (६-२-२-१८) “एषा ह संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिः यत् फाल्गुनी पूर्णिमासि” ('फाल्गुनी पूर्णिमाकी रात वर्ष की पहली रात होती है।') इसका अर्थ उस समय वसंत संपात फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन हुआ करता था।

'तैत्तिरीय संहिता' में भी (७-४-८) इस अर्थ का वचन है। "एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य यद् उत्तरे फाल्गुनी" ('यह वर्षकी प्रथम रात है और इस वक्त वसंत संपात है और यह फाल्गुनी पूर्णिमा है और चांद उत्तरा फाल्गुनी में है।'); और अर्थात् सूर्य पूर्णिमा के समय चाँदसे अर्धनक्षत्रमंडल की दूरीपर होता है इसलिए सूर्य इस समय उत्तर भाद्रपदमें था। ई. स. १९८६ में भी वसंत संपात उत्तरा भाद्रपदमें था। इससे यह ज्ञात होता है कि, इस दौरान वसंत संपात का उत्तरा भाद्रपदा से उत्तरा भाद्रपदा तक एक चक्कर पुरा हो चुका था। हर अंश के लिए ७२ साल के हिसाब से संपात बिंदुओं को नक्षत्र मंडलमें पुनः उस स्थानपर आने के लिए $72 \times 360 = 25920$ साल लगते हैं; बहुत सूक्ष्म गणितसे वे २५८६८ वर्ष हो जाते हैं। किंतु कुछ विशेष कारणवश यह समय कभीकभी इक्कीस हजार वर्षोंतक कम करनेपर गिना जाता है। तिलक लिखते हैं, 'फाल्गुनी पूर्णिमा को वसंत संपात के समय उत्तरा भाद्रपदमें वर्षारंभ होता था, इस बातको हम नहीं स्वीकार सकते; वे कृत्तिकापूर्व काल में होने के लिए हमें ई. स. पूर्व बीस हजार जैसे कालतक पीछे जाना पड़ेगा। इसके अलावा,

पूर्णिमामें उत्तरायण के प्रारंभमें वर्षारंभ हुआ करता था, यह अन्य विकल्प है। तिलकजी वेदोंका काल इतना पिछे ले जाना, आश्चर्यजनक मानते हैं।

तिलकजीने इस प्रश्न के बारे में सूक्ष्मतासे सोचने के बाद वेदकालमें वर्षारंभ वसंत संपात के समय हुआ करता था इस निष्कर्ष तक वे पहुँचे। इस प्रकार 'ब्राह्मण' ग्रंथ के वचनानुसार यह काल ई. स. पूर्व बीस हजार साल सूचित होता है। किंतु यह स्वाभाविक निष्कर्ष 'बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण' होने का कारण बताकर तिलकजी उसे स्वीकार करना नहीं चाहते। उनके मत के अनुसार 'वेद और ब्राह्मण' रचना का काल हम उतना प्राचीन नहीं कह सकते। वस्तुतः प्राचीन वैदिक आर्योंके प्रगत सभ्यता के, ज्योतिषीय ज्ञान और बौद्धिक स्तर के बारे में संदेह उठानेवाले कुछ पाश्चिमात्य विद्वानों के बारे में स्वयं तिलक आवेशपूर्वक लिखते हैं, "Prof. Weber and Dr. Schrader appear to doubt the conclusion (that primitive Aryans had contrived a means for adjusting the lunar with the solar year) on the sole ground that we cannot suppose the primitive Aryans to have so far advanced In civilization as to correctly apprehend such problems. This means that we must refuse to draw legitimate Inference from plain facts when such Inferences conflict with our preconceived notions about the primitive Aryan civilization. I am not disposed to follow this method nor do I think that people, who knew and worked In metals, made clothing of wool, constructed boats, built houses and chariots, performed sacrifices and had made advance In agriculture, were incapable of ascertaining the solar and the lunar year." "The knowledge implied by these (astronomical) observations may appear to be too much for a Vedic poet in the opinion of those who have formed their notions of primitive humanity from the accounts of savages in Africa or islands of the Pacific. But as observed before, we must give up these apriori notions of primitive humanity in the face of evidence furnished by the hymns of the Rigveda." (प्रो. वेबर और डॉ. स्क्राडर (प्राचीन आर्योंने चांद्र वर्ष और सौर वर्ष के बीच समन्वय करने की रीती की खोज की थी। इस निष्कर्षपर संदेह व्यक्त करते हुए नजर आते हैं और वे केवल इस कारण के लिए प्राचीन आर्य ऐसे प्रश्नोंको सुलझाने के लिए काबील थे ऐसा नहीं माना जा सकता। पर इसका आशय यह होगा कि, स्पष्ट तथ्यों से निकलने वाले सही अनुमान प्राचीन आर्य सभ्यता के बारे में अपने पूर्वग्रहदोषपूर्ण कल्पनाके विरुद्ध जानेवालों को हमें नहीं स्वीकारना चाहिए। पर मैं यह विचारधारा का अनुसरण करने के लिए तैयार नहीं हूँ और मेरे विचार के अनुसार जो लोग धातु और धातुकाम

जानते थे, ऊन के वस्त्र बुनते थे, नौका बनाते थे, घर और रथ बनाते थे, यज्ञ करते थे और खेतीमें भी प्रगत थे, वे चांद्र और सौर वर्ष ठीकसे जानने के लिए असमर्थ थे।" " इस (ज्योतिषविषयक) विधानमें अंतर्भूत ज्ञान वैदिक कवी के बस के बाहर था, ऐसा जिन्होंने प्राचीन मानवों के बारे में अपने बारे में कल्पनाएँ आफ्रिका या प्रशांत सागर के द्वीप पर रहनेवाले जंगली लोगों से की होई, उन्हें लगता होगा। पर उपर कथन के अनुसार ऋग्वेदीय मंत्रों से मिलनेवाले प्रमाण पर नजर डालने पर, प्राचीन मानव के बारे में की गई कल्पनाओंको हमें अनदेखा करना चाहिए।") स्वयं यह बताने पर भी तिलक 'ब्राह्मण' ग्रंथोंमें उपर उद्धृत किए गए वचनका समय ई. स. पूर्व बीस हजार इस कारण से अस्वीकार करते हैं - 'वेदों को इतना प्राचीन मानना बहुत अतिशयोक्तीपूर्ण होगा।'

इन सबके बावजूद कमसे कम अगला निष्कर्ष अनिवार्य है। वेद और 'ब्राह्मण' ग्रंथ हम भूतकालसे ही प्राप्त हैं और वे प्रथम मौखिक वचनों के रूप में मौजूद थे, उन्हें वर्तमानकालीन लिखित स्वरूप (महाभारत में दुर्योधन के दादाजी) वेदव्यासने उस रचना को अंतिम बार जोड़ा और ई. स. पूर्व ३३०० के पूर्व वे प्राप्त हुए।

सत्य रूपमें वैदिक ऋचाओंके बारे में उनसे किए गए काल निर्धारण के बारेमें तिलक हठिले नहीं हैं। वे मान लेते हैं कि, 'बहुत प्राचीन और आधुनिक विद्वानों को भ्रममें डालनेवाला यह एक कठिन सवाल है और मैंने भलेही उसके बारे में चर्चा की हो पर उसका पुरा समाधान हो चुका है यह हम नहीं कह सकते।' इतनाही नहीं बल्कि तिलक ऐसाभी कहते हैं कि, 'संक्षेप में, ऋग्वेदमें उल्लिखित प्राचीन ऋचा, कवि और देवता का संबंध हिमयुग समाप्ती के बाद काल को छोड़ बहुत अतीत युगसे जोड़ना होगा।'

परंतु पाश्चिमात्य विद्वान प्रश्न उठाते हैं कि, केवल वैदिक आर्योंमें ही वे पुरातन परंपराएँ कैसे बनी रही ? अन्य जगह वे क्यों नहीं दिखाई देती। तिलक उत्तर देते हैं, 'वेदकाल के आरंभ में भारतीयों के साथ रहनेवाले ग्रीक और फारसी लोगों ने उस कालकी किसी भी परंपराको कायम नहीं रखा, यह बात साफ है कि, उन्होने भारतीयों के साथ निवास छोड़ते समय केवल तत्कालीन प्रचलित दिनगणना अपने साथ रखी, पर भारतीय आर्योंने उसके अतिरिक्त सभी परंपराओंका भी अतीव धार्मिक श्रद्धापूर्वक जतन किया; मेरे मत के अनुसार ग्रीक और फारसी परंपरा ओरायन से प्राचीन नहीं है इस बात के लिए यह स्पष्टीकरण है।'

तिलक फिर कहते हैं, ' ऋग्वेदकी प्रत्येक ऋचा का कब गान किया गया यह हम भलेही निश्चित रूपमें न कह सके, फिर भी इतना कह सकते हैं कि, उस महान दुर्घटनामें (अर्थात् उन्हें ध्रुव प्रदेश से मूल निवास छोड़ने के लिए मजबूर करनेवाली भीषण थंड से) बचनेवालों ने अथवा उनके निकटतम अनुवंशजोंने, अपने पूर्वजोंद्वारा एक पवित्र निधी के रूपमें प्राप्त किया धार्मिक ज्ञान, उन ऋचाओंमें यथा संभव उतने शीघ्र याने कुछ समय के लिए निवास स्थापित करने के बाद कुछ अवधि के बाद, समाविष्ट किया गया होगा।' बिलकुल

स्पष्टता से, तिलक लिखते हैं, 'वैदिक ऋचा हिमयुगोत्तर कालमें (लगभग ई. स. पूर्व ८०००) ऋषियों के गानेपर भी उनके बारे में उन ऋषियों को अपने बड़ी बाड़ के पूर्वकालीन पूर्वजों से अविच्छिन्न रूपमें चलती हुई परंपराओंद्वारा जानकारी प्राप्त हुई थी।' और यह काल वेदरचनाओंका हमें ज्ञात काल है इस बात को माननेमें कोई संदेह नहीं है। पुराणों की परंपराओं के अनुसार श्वेतवाराह कल्प के स्वायंभुव मनूका काल आजसे पहले ३१००० वर्ष था। हमारे ब्राह्मण परंपरासे चलता आया संकल्प जिसे संध्यावंदन के समय उच्चारण करते हैं वह अविच्छिन्न रूपमें पिछले १९७ कोटीसे भी अधिक सालों से करते आये हैं, यह हम पहले ही देख चुके हैं।

मॅक्स म्युलरने भी वेदरचना काल ई. स. पूर्व १२०० होने के अपने मतपर पुनर्विचार किया था। व्ही. रंगाचार्य कहते हैं, "Max Muller (in Gifford Lectures, 1890) was careful enough to warn students that his intervals of 200 years were purely arbitrary, that it was only terminus ad quem; that it was impossible to fix the earliest date; that whether Vedic hymns were composed in 1000 or 1500 B.C. or 2000 or 3000 B.C., no power on earth could ever fix." (मॅक्स म्युलरने सन १८६० के गिफोर्ड व्याख्यानमें छात्रों को स्पष्ट रूपमें सूचित किया था कि, उन्होंने प्रस्तुत की हुई दो सौ वर्ष के कालांतर केवल कल्पना के आधारपर थी और इस बारे में कोई काल निश्चित करना असंभव है, वैदिक ऋचा ई. स. पूर्व १००० - १५००, अथवा ई. स. पूर्व २००० - ३००० के बीच रची गई यह कोई भी नहीं बता सकता।")

परंतु यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूचना को अनदेखा कर बहुतसे लेखक मॅक्स म्युलर के आरंभ काल के मत को पूर्णतया सही मानकर वेदों का काल ई. स. पूर्व १२०० प्रतिपादन करते हैं।

भाषा शास्त्र के आधारपर ऋग्वेद का कालनिर्णय :

वेदों का काल ई. स. पूर्व १२०० भाषाशास्त्र के आधारपर कैसे प्रतिपादित किया जाता है, इसपर नजर डालते हैं। संस्कृत और इराण की इंद भाषामें बहुतसी समानता है और शायद युरोपीय भाषाओंमें भी संस्कृत और इंद से कुछ शब्द आते हैं। इसलिए संस्कृत और इंद (छंद) सहित सभी भाषाएँ जिससे उत्पन्न हुई (होगी) उसे 'इंडो युरोपियन' अथवा 'इंडो जर्मन' कहते हैं।

इन मतों को माननेवाले विद्वान स्वयं को आर्यों के वंशज कहना चाहते हैं; इस बातपर किसी का कोई भी आक्षेप नहीं है। और तो और वेद अखिल मानवों की पैतृक संपदा है; और इन विद्वानोंको अपनी मूल भाषा 'इंडो-युरोपियन' की जगह प्रत्यक्ष संस्कृत कहनेमें झिझकना नहीं चाहिए।

यहाँ इस बात को गौर करना होगा कि, 'आर्य' शब्द भारतीय साहित्यों के अतिरिक्त अन्य कहीं भी नहीं मिलता। उसका उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है और फिर भी यह विद्वान कहते हैं कि, 'आर्य' भाषा एक आरंभिक इंडो युरोपियन भाषा है और उसे बोलनेवाली आर्य एक प्राथमिक जंगली जाती थी। वे यह सुझाव देना चाहते हैं कि संस्कृत भाषा उस प्राथमिक इंडो - युरोपियन भाषा से उत्पन्न हुई है। किंतु 'आर्य' शब्द केवल संस्कृत भाषा के अलावा अन्यत्र कहीं भी नहीं है, अगर संस्कृत भाषा बाद में आयी होगी तो ये विद्वान उस पूर्वकाल की भाषा को 'आर्य' क्यों कहते हैं ? 'आर्य' (जिस का वेदों में 'सभ्यतापूर्ण' अर्थ है।) उस शब्द से लगाव होने पर वे अपने आद्य जंगली पूर्वजों को 'आर्य' कहना चाहते हैं यह वदतोव्याघात ही है।

पाश्चिमात्य विद्वान कहते हैं कि, अवेस्ता की झेंद भाषा ई. स. पूर्व छठे शतक के बेहिस्तान के उत्कीण लेखाओं के इरानी भाषा का प्राचीन प्रकार है। यह लेख उत्तर इराण में है और उसे गढ़ानेवाले राजा का नाम 'दारयबहु' बताया गया है। वह संस्कृत "दीर्घबाहु" हो सकता है; अंग्रेजी में "दारियस" लिखते हैं। उसकी भाषा अवेस्तीय झेंद से आधुनिक मानी जाती है और इसलिए उस लेख का काल ई. स. पूर्व ६०० निश्चित किया होगा, बल्कि विद्वान अवेस्ता का काल ई. स. पूर्व १००० से प्राचीन नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। और वैदिक संस्कृत अवेस्तीय झेंद के समान कहने से वेदों का काल भी इस अवेस्तीय काल के जितना अर्थात् ई. स. पूर्व १००० दिखाया जाता है।

ये विद्वान वेदों का काल जब ग्रीक भाषा बोलनेवाले ई. स. पूर्व १२०० के आसपास ग्रीस देश में प्रविष्ट हुए उससे समानता दर्शाने पर साबित करना चाहते हैं। ग्रीक भाषा सबसे प्राचीन इंडो युरोपियन भाषा मानी जाती है और वह ग्रीस में बाहर से आई है ऐसा भी कहा जाता है। Hall लिखते हैं, "Like Sanskrit, Greek with all its entirely Indo-European syntax and grammar, has vast non-Indo-European vocabulary. The reason was the same in both cases. In both lands the invading warriors (i.e. the Indo-Europeans) found a previously existing non-Aryan race with which they mingled, the Hindus with the Dravidians, the Greeks with the Minoans; and in both cases, while the language of the conqueror prevailed, that of the conquered supplied innumerable names and words to its vocabulary. In both countries the conquered race continued to exist side by side with the conquerors, the dark Dasyus with the fair Aryans, the dark Minoans with the fair Hellenes." (संस्कृत के समान ग्रीक भाषा में भी पूरी तरह से हिंद - युरोपीय वाक्यरचना है और हिंद - युरोपीय भाषाहीन बहुतसे शब्द हैं। दोनों मामलों में इसका एक ही कारण है। दोनों देशों में आक्रमक योद्धाओं को याने इंडो - युरोपियन लोगों को एक पहल से विद्यमान अनार्य जाति की खोज हुई, जिसमें वे घुलमिल गए - हिंदू द्रविड़ों में

और ग्रीक मिनों में और दोनों के मामले में जेतों लोगों की भाषा प्रचलित हुई। पर उसके शब्द कोश में जितों के भाषा के बहुत नाम और शब्दों का समावेश हुआ। दोनों देशों में जित जेतों के साथ रहने लगे - काले दस्यू गोरे आर्यों के साथ और काले मिनों गौरवर्णीय हेलेनी लोगों के साथ (रहने लगे।)"

परंतु मैक्स म्युलर आदि बहुत विख्यात विद्वानों के मतानुसार 'आर्य' नामका कोई भी विशेष वंश नहीं था। सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डॉ. सांकलिया इस धारणा का स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "All this underlines the vagueness and our very, very partial realization of the truth, because of our often one-sided approach. This is also true of the sister sciences of linguistics and anthropology leaning on which many theories are propounded. Unfortunately, these, though cautiously formulated, are passed on as accepted truths doing immense harm in the sequel to peoples and nations; thus the Aryan theory in Germany and the Dravidian in South India." ("इन सबसे आपका प्रायः एकपक्षी भूमिका से होने वाली संदिग्धता और सत्य स्थिति का अंशरूप में एहसास दिखाई देता है। यही बहुतसे सिद्धांत जिनके आधार पर प्रतिपादित किए जानेवाले भाषाविज्ञान और मानववंश विज्ञान पर भी लागू होते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे सिद्धांत, सतर्कतापूर्वक प्रकट करने पर भी स्वीकृत सत्य के तौर पर प्रचलित होते हैं और अंत में लोग और राष्ट्रों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। - जैसे जर्मनियों के आर्यविषयक और दक्षिण भारतीयों के द्रविड विषयक सिद्धांत") एक अन्य पुरातत्ववेत्ता डी. जी. गॉर्डन इस बात का स्वीकार करते हैं कि, "Almost all the interpretation of the archaeological material of these early times is in fact speculative" ("प्राचीन काल से संबंधित पुरातत्वीय सामग्री के बारे में सभी प्रतिपादन प्रायः एक कल्पना तरंग पर आधारित हैं।")

हॉल का उपर बताया हुआ मत केवल कल्पनापूर्ण ही नहीं बल्कि पूर्वग्रहदोषपूर्ण भी है। भारत में कोई भी आर्य, द्रविड अथवा दस्यू नहीं है। अवेस्ता के विद्वान एस. के. होडीवाला कहते हैं, ".....The Dasyus mentioned in **Vedas** and especially the **Rigveda** were the Dakhyus -- the followers of Zarathustra..... Such an able scholar of Sanskrit, as Prof. R. S. Bhagavat has anticipated me...in his book named Mihr Yast (p.31) he says, 'But the Avestic literatures are as valuable in fixing the original meaning of Dasyu, as is the Vedic in fixing that of the Deva. The political organization of the Ahura-worshippers recognized the four divisions of the nmana-house, the visa – village, the zantu - small district, and the dakhyu, a large district.'" ("वेदों में और विशेषता से ऋग्वेद में उल्लेखित

'दस्यू' झरथुष्ट्राके शिष्य 'दख्यू' थे।..... संस्कृत प्रकांडपंडित प्रो. आर. एस. भागवतजी ने मुझसे पहले ही कहाँ है - 'मिहिर यष्ट' नामक अपने पुस्तक में (पृ. ३१) वे कहते हैं कि जिस तरह 'देव' शब्द का अर्थ निश्चित करने हेतु वैदिक साहित्य महत्वपूर्ण है, उसी तरह से दस्यू का मूल अर्थ निश्चित करने हेतु अवेस्तीय साहित्य महत्वपूर्ण है। आहूर पूजकों के राजनैतिक समाजव्यवस्था में 'माना' (गृह), 'व्हिसा' (ग्राम), 'झंटु' (छोटा जिला) और 'दस्यू' (बड़ा जिला), ऐसे चार विभाग थे।" होडीवाला आगे कहते हैं कि, झरथुष्ट्र आध्यत्मिक नेता और 'दख्युम' भौतिक सत्ताधीश भी थे। इस तरह से ऋग्वेदके 'दस्यू' पंजाबके आदिवासी नहीं हैं। 'दस्यू' शब्द में कोई भी हीन भावना नहीं है और धर्मपुरुष झरथुष्ट्र को यह उपपद प्रदान करने में फारसीयों को कोई आक्षेप नहीं है।

इस तरह से, भारतमें द्रविड नामक अलग वंश था और आर्योंको विरोध करनेवाले कोई आदिवासी 'दस्यू' थे, ऐसा कुछ नहीं है बल्कि ये सब विद्वानों की कल्पनाएँ हैं।

हॉल कहते हैं कि, गोरी चमडीवाले आर्योंने भारत में आदिवासी 'दस्यू'ओंपर और दक्षिण हिंदुस्थान के द्रविडोंपर विजय प्राप्त किया। परंतु वैदिक आर्योंका हिमयुगसमाप्ति के बादका मूल निवासस्थान पश्चिम से कास्पियन समंदरसे पूर्व के सिंध, पंजाब और काश्मीरतक फैला हुआ था। इसलिए आर्योंने बाहर से भारतमें प्रवेशकर पंजाबमें और अन्यत्र भी आदिवासीयों पर विजय प्राप्त करने का सवाल ही नहीं उठता।

आर्य (वैदिक लोग) दाशराज्ञ युद्धतक, याने ई. स. पूर्व लगभग ७००० तक राजनैतिक दृष्टिसे एक समाज के तौरपर साथ रहने के बाद, पश्चिम की ओर ग्रीस आदि युरोपियन देशोंमें प्रवेश करने के बाद दक्षिण की ओर से भारतमें आये। पर यह घटना भी ई. स. पूर्व ४५०० से पहले घटी। वर्तमान भारतीय अपने इराणी बांधवों से उसी समयपर अलग हुए। किंतु फिर भी भारत का अफगाणिस्तान और इराण के साथ संबंध ई. स. पूर्व १००० के आसपास अफगाणिस्तानमें इस्लाम प्रविष्ट होने तक शुरू रहा।

संक्षेपमें, सिंधुघाटी सभ्यता का कर्तृत्व ऋग्वेदीय आर्योंके पास था इसके विरोधमें कोई भी निश्चित प्रमाण नहीं है। और ऋग्वेद रचना सिंधुघाटी सभ्यताके पूर्व सिद्ध हो चुकी है, तब यह रचना ई. स. पूर्व १२०० से पहले की नहीं यह भाषा - शास्त्रज्ञों की दलील बेबुनियाद साबित होती है।

श्रीमती मालती शेंडगे प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता एम. व्हीलरको आगे उद्धृत करती है। "The Sargonid Period is now agreeably established at 2370-2280 B.C. and we know from a number of recent soundings (1964-66) that the occupation of Mohenjodaro goes back to a very considerable way below the levels at which the excavations have recovered materials recognizable as Sargonid sites at Mesopotamia. It may well be that the

initial date 2500 B.C. conjectured for Harappans may yet have to be pushed further back by a century or two." ("सर्गोनिड काल ई. स. पूर्व २३७०-२२८० था इस बातको अब स्वीकारा जाता है और आधुनिक उत्खननोंद्वारा यह प्रतीत होता है कि, मेसोपोटेमियामें उत्खननोंमें सर्गोनिड स्थानों के नाम जानी गई सामग्री जिन स्तरोंकी है उससे मोहेंजोदरोंकी बस्ती बहुत प्राचीन है। हरप्पन लोगोंका अनुमानित काल ई. स. पूर्व २५०० से पूर्व एक दो शतक होना संभव है।") श्रीमती शेंडगे आगे कहती है, टेपयाह्या के संशोधन के कारण उससे भी अधिक परिवर्तन करना पड़ेगा। हरप्पाका काल ई. स. पूर्व ३१०० से भी प्राचीन हो सकता है।

इस तरह से पुरातत्ववेत्ताओंके अनुसार आज का तथाकथित सिंधूसभ्यता का काल ई. स. पूर्व ३१०० उससे भी प्राचीन हो सकता है और वह इजिप्त के नाईल नदीसे पुरे उत्तर भारत तक फैली होगी, तो कुछ विद्वानों के अनुसार आर्य लोग - जिन्हें वे पुरी तरह से जंगली कहते हैं - भारत में आक्रमक लोगों के रूपमें ई. स. पूर्व १५०० में प्रविष्ट हुए और उन्होंने सिंधु घाटकी प्रगत सभ्यता का ध्वंस किया यह अनुमान डगमगाएगा। उदा. टी. बरो स्वीकारते हैं कि, "The Aryan Invasion of India is recorded in no written document and cannot be proved archaeologically," ("भारतपर आर्योंके आक्रमण का कोई लिखित प्रमाण नहीं है और पुरातत्त्वविज्ञान के आधारपर वह आक्रमण साबित नहीं किया जा सकता।") और फिर भी ए. एल. बाशम जैसे भारतीय सभ्यता की प्रशंसा करनेवाले लेखक उस बेबुनियाद मत को अनुमोदन देते हैं।

कैलाशचन्द्र वर्मा लिखते हैं, "The researches of Kedar Nath Shastri and others show that the final destruction of Harappa was not due to any attack by Aryans or any one else and that it is to be dated near or even earlier than 2000 B.C." ("केदारनाथ शास्त्री और अन्य विद्वानोंके संशोधन से यह दिखाई देता है कि, हरप्पा का विनाश आर्य अथवा अन्य किसीके आक्रमणसे नहीं हुआ और उसका काल ई. स. पूर्व लगभग २००० अथवा उससे भी प्राचीन होना चाहिए।) श्री वर्मा समर्पकतासे समाप्ती करते हैं, "The archaeologists like Sir John Marshall, Leonard Wooley and others, held the Aryan advent in India in the middle of the second millennium B.C. and ascribed the Harappan (Indus) civilization to the Dravidians. But now there is a change, as a result of complete failure of the Dravidian hypothesis. Even such protagonists as I. Mahadevan have now been shaken; archaeologists like Fair service, Jean Deshayas and even B. B. Lal, B.K. Thapar are

veering round to the view that the Aryans were present in India at least as early as the commencement of the Indus civilization."

"Actually this view, that the Aryans were in India even before the Indus civilization, was first posited by Langdon, and then supported on independent grounds by B. W. Datta (Man in India, 1936-37), Kadar Nath Shastri (New Light on the Indus Civilization, 2 vols), Sir Max Mallowan, Arun Kumar, Dilip K. Chakravarty. Lamberg Karlovsky, F. R. Allchin and a host of others also on archaeological ground that the Indo-Europeans were already in Anatolia and Palestine in the 4th millennium B.C."

"Actually as acknowledged by Western Sanskritists, like E.G. Rapson and Indians like Suniti Kumar Chatterjee, to say nothing of the inveterate supporter of a late date for Rigveda, the late B.K. Ghosa, have admitted that there is not even an indirect memory or legend of Aryan Invasion or Infiltration in the Vedic literature and S. P. Gupta (Archaeology of Soviet Central Asia and Indian Borderlands, 1976 Vol-II, P. 139) has been forced to observe 'The analysis of the Soviet scholars also shows that archaeologically it cannot be proved that Vedic Aryans came either from Dagestan-Kapet Dag region of Western Turkmenia and Northern Iran, or from Tedjen Murgab deltas of South-eastern Turkmenia or from the Oxus basin in southern parts of Uzbekistan and Tadjikistan and northern parts of Afghanistan. "(B. K. Tapar. Vivekananda Comm. Vol., 1970, PP. 147-164)."

(सर जॉन मार्शल, लिओनार्ड वूली और अन्य पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भारत में आर्यों का प्रवेश काल ई. स. पूर्व द्वितीय सहस्रक माना था और हरप्पा (सिंधु) सभ्यता को द्रविड़ों की कहा था। पर आज द्रविड़ विषयक धरना पूरी आधारहीन होने से उस मत में परिवर्तन हुआ है। आय. महादेवन जैसे उसका प्रतिपादन भी अब संदेह भरा दिखाई देता है। और के.एस.विल्स, जीन देशायस और तो और बी. बी. लाल, बी. के. थापर भी, बहुत से तत्त्ववेत्ताओं ने इस राय की ओर कदम बढ़ाए हैं, कम से कम आर्य भारत में सिंधु सभ्यता के शुरुवात में विद्यमान थे।"

“सच कहें तो आर्य भारत में सिंधु सभ्यता के पूर्व समयसे थे यह सर्वप्रथम लॅंगडनने प्रतिपादित किया और बाद में बी. डब्लू दत्त (ManInIndia, 1936-37) केदारनाथ शास्त्री (New Light on theIndus Civilization, 2 Vols), सर मैक्स मल्लोवन, अरुण कुमार, दिलीप के. चक्रवर्ती, लॅमबर्ग कार्लोव्स्की, एफ़. आर. ऑलचिन और अन्य बहुतसे विद्वानोंने पुरातत्त्वीय आधारपर स्वतंत्र प्रमाण देकर उस बात का समर्थन किया कि, इंडोयूरोपियन लोग अनतोलिया और पॅलेस्टाइन में ई. स. पूर्व चौथे सहस्रमें विद्यमान थे।”

“ई. जी. रॅपसन जैसे पाश्चिमात्य संस्कृतज्ञ और सुनितीकुमार चटर्जी जैसे भारतीय और ऋग्वेद आधुनिक काल का बतानेवाले स्व. बी. के. घोष भी स्वीकार करने लगे है कि, वैदिक साहित्यमें आर्योंके आक्रमण की अथवा आक्रमतासे प्रविष्ट होने की अधूरी स्मृति या दंतकथा नहीं है और एस. पी. गुप्त (Archaeology of Soviet Central Asia and Indian Borderlands, Vol-II, P. 139) भी यह कहने के लिए मजबूर हुए है कि रशियन विद्वानोंके विवेचन के नुसार भी वैदिक आर्य पश्चिम तुर्कमानिया और उत्तर इराण के दहिस्तान - कापेट दाग प्रदेशसे अथवा दक्षिणपूर्व तुर्कमानिया के पेड़जेन मुर्गब नदीमुख प्रदेशसे अथवा उझबेकिस्तान और ताजीकिस्तानके दक्षिण भागमें और अफगानिस्तानके उत्तर भाग में बहनेवाली ऑक्सस नदी के घाटी से आए थे ऐसा पुरातत्त्वविज्ञान द्वाराभी साबित नहीं किया जा सकता।”)

अंतमें वर्मा निष्कर्ष निकालते है - "Thus there is neither literary nor archacological evidence for the entry of Aryans into India. They may have come or India itself may have been a part of the original Indo-European home. In any case the Max-Mullerian chronology of the Vedic literature is dead as dodo" (“इसप्रकार भारत में आर्योंके प्रवेश के बारेमें साहित्यिक और पुरातत्त्वीय प्रमाण नहीं हिया। वे इसप्रकार आए होंगे अथवा स्वयं भारत ही मूल इंडो-यूरोपियन निवासस्थानका हिस्सा रहा होगा। परन्तु वो कुछ भी हो, लेकिन वैदिक साहित्य के बारेमें मैक्स म्यूलर की कालगणना आज पूर्णतः मृत साबित हुई है।”)

आर्य वंश के संबंधमें भ्रामक सिद्धांत :

आर्य और द्रविड़ अलग वंश थे और बाहरसे आए हुए आर्योंने भारत के मूल निवासी द्रविड़ोंपर (ई. स. पूर्व १५०० के आसपास) आक्रमण किया, यह प्रतिपादन वस्तुतः साम्राज्यवादी अंग्रेजोंने और अन्य यूरोपियन विद्वानोंने हमारे बहुभाषी बहुप्रांतीय विशाल भारत के समाजमें आपसमें भेदभाव के और कटुता के बीज बोने के लिए प्रसृत किया। लंदन के रॉयल एशियाटिक सोसायटी के वृत्तमेंसे अगला उद्धरण इस आर्य-द्रविड़ सिद्धांत के जन्म की जानकारी देता है The meeting of the Royal Asiatic Society on 9th April,

1866 Rt. Honourable Viscount Strangford in the Chair: Mr. Thomas then proceeded to advert to the single point open to discussion, involved under the 4th head, "tracing the progress of the successive waves of Aryan Immigration from the Oxus into the province of Ariyania and the Hindukush, and the downward course of the pastoral races from their first entry into the Punjab and the associate crude chants of the vedic hymns to the establishment of the cultivated Brahmanic Institutions on the banks of Saraswati and the collaboration of Sanskrit Grammar at Taxila." थॉमस और भी आगे कहते हैं, "The Aryans Invented no alphabet of their own for their special form of Aryan speech, but were in all their migrations indebted to the nationality with whom they settled for their Instructions in the science of writing ...Devanagari was appropriated to the expression of Sanskrit language from the pre-existing Sanskrit, Pali or Lat alphabet which was obviously originated to meet the requirements of the Turanian dialects." ("रॉयल एशियाटिक सोसायटी की दि. ९ अप्रैल १८६६ की चर्चासत्र अध्यक्षीय पदपर व्हायकाऊंट स्ट्रॉगफोर्ड की चर्चा के क्रमांक ४ के एकमात्र मुद्देपर श्री. थॉमस ने भाषण का आरंभ किया और ऑक्सस से देशांतर कर आरियानिया और हिन्दूकुश के प्रदेशमें प्रवेश करनेवाले आर्योंके पीछे 'लाटा' नामक ग्राम की जाति का पंजाब के प्रथम प्रवेशसे आगे नीचली ओर सफ़र और तत्संबंधी वैदिक मंत्रोंका बेसुरा और कर्णकटु गान, यहाँ से सरस्वती के किनारे प्रगल्भ ब्राह्मणीय संस्थाकी स्थापना और तक्षशिला में संस्कृत व्याकरण का विकास, इन सब घटी हुई घटनाओंका वर्णन किया") (थॉमस आगे और कहते हैं, 'आर्योंने अपनी विशिष्ट आर्यभाषा के लिए अपनी किसी भी लिपि की खोज नहीं की, अपने पुरे देशांतर यात्रामें लेखन कला की उन्नति के लिए वे जिनके साथ रहने लगे उनपर निर्भर रहे तुरेनियन बोलचाल की भाषाओंके लिए स्पष्ट रूपमें स्थित रहनेवाली पुरातन संस्कृत, पाली अथवा लाट लिपिसे संस्कृत भाषा व्यक्त करने हेतु देवनागरीमें की गयी।")

इसप्रकार साम्राज्यवादी जित भारतीयोंके मनमें यह बात डालने लगे कि, भारतीय सदैव अन्य देशीयोंद्वारा जिते गए। प्रथम इन विद्वानोंने 'लाट' लिपिको 'ब्राह्मी' कहा और 'तुरेनियन' की जगह 'द्रविडीयन' शब्द रखा और यह झूठी कहानी फैलाई कि, भारत में उत्तर से दक्षिण तक निवास करनेवाले द्रविड़ोंको जंगली आर्योंने ई. स. पूर्व १५०० के आसपास पराजित किया; और यह आक्रमक टोली अपने साथ एक टेढ़ीमेढ़ी भाषा ले आयी और प्रगत संस्कृत एवं पाली भाषा को स्वीकारकर वे द्रविड़ोंके साथ घुलमिल गए और सुव्यवस्थित संस्थाओंकी स्थापना की। बादमें उत्तरकालीन भारतीयोंपर शक, हूण और ग्रीकोंने आक्रमण

किया। इसप्रकार भारत और भारतीय विदेशी एवं आक्रमक टोलीयोंसे सदा पराभूत हुए ऐसा चित्र बनाया गया।

सन १८६६ में थॉमस के प्रस्ताव को रॉयल एशियाटिक सोसायटीके स्वीकृति देने के बाद भारताभ्यासक इसे ब्रह्मवाक्य मानने लगे और जब सिंधुघाटी सभ्यता की खोज हुई, उसका काल लगभग ई. स. पूर्व ३००० अनुमानित किया जाने लगा। तब इस भ्रम को जोर देकर प्रतिपादित करने लगे कि, भारतमें उत्तरपूर्वसे जंगली आर्योंकी टोलीने आकर यहाँ की स्थानिक सभ्यता का विनाश किया।

यह 'आर्य विरुद्ध द्रविड़' सिद्धांत के उपरांत आर. कॉल्डवेलसे हेरॉस तक के ख्रिश्चन धर्मप्रचारकोंने भाषाशास्त्र के आधारपर और बढ़ाया। उन्होंने द्रविड़ोंको जगत् के सभ्यताजनक कहकर प्रशंसा करना आरंभ किया। उसे मानने में कोई आपत्ती नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि भारतीयोंको ही, चाहे द्रविड़ हो या आर्य, विश्वके आद्य सभ्यता प्रसारक माना जाता है, इस बात को अनदेखा न किया जाए। ऋग्वेदीय लोगोंनेही 'कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्' (ऋ. ८-६३-५) ऐसा नारा हिमयुगोत्तर कालमें लगाया था, आर्य और द्रविड़ ऐसा कोई भेद नहीं है, यह सच्चाई को पाश्चिमात्य पंडितोंने दबाकर दक्षिण के तमिल और उत्तर भारतीयोंके बीच भेदभाव का बीज बोया।

देड सौ सालसे यह बुद्धिभेद चलता आया है। मैक्स म्युलरने सन १८८८ में 'आर्यवंश' सिद्धांत को स्वीकारने की गलती को कबूल किया। वे लिखते हैं, "I have declared again and again that if I say 'Aryan' I mean neither blood or bones, nor hair nor skull, I mean simply those who speak an Aryan language." ("मैंने बारबार ऐलान किया है कि मैं जब 'आर्य' कहता हूँ तब मेरा इशारा हड्डियाँ, बाल अथवा खोपड़ी की तरफ नहीं होता बल्कि उसका अर्थ आर्य भाषा बोलनेवाले लोग इतना ही है।") समाज विज्ञानवेत्ता नेसफ्रील्ड भी कहते हैं, "There is no division of the people as the Aryan conquerors of India and the aboriginals of the country, that division is modern and that there is essential unity of the Indian races." ("भारत के आर्य विजेता और वहाँ के आदिवासी जैसा कोई भी भेद नहीं है, यह विभाजन आधुनिक है और भारतीय जातियों में मूलतः एकता है।") इससे यह स्पष्ट है कि, द्रविड़ समग्र उत्तरदक्षिण भारत के मूल निवासित हैं और जंगली आर्योंने मध्य आशियासे आगमन कर उनकी उत्कृष्ट सभ्यता को तहसनहस कर दिया, यह पाश्चिमात्योंने फैलाई हुई अर्थहीन कहानी है। वस्तुतः द्रविड़ नामक कोई भी अलग वंश नहीं था और उस समय आर्य नामका भी कोई वंश नहीं था। ऋग्वेद इस बातके लिए प्रमाण है कि, ऋग्वेदीय लोगोंका मूल निवासस्थान रशियन मैदान से पंजाब तक का भूखंड था और उसके उपरांत वे पश्चिम की ओर ब्रिटिश द्वीपोंतक फैल गए।

वस्तुतः ऋग्वेद बहुत प्राचीन है और उसका समय ई. स. पूर्व ३५०० से पीछे गिनना चाहिए। आर्य और द्रविड़ संस्कृति में भेद काल्पनिक है और हरप्पा सभ्यता भी आर्यों ने ही बसाई थी। उसे सरस्वती - सिंधू सभ्यता कहना चाहिए। आर्य भारत के ही थे; बाहर से नहीं आए थे। 'आर्य' शब्द का अर्थ वंशसूचक नहीं बल्कि 'सभ्यता प्राप्त व्यक्ति' ऐसा है।

परंतु पाश्चिमात्य कहते हैं कि, भारत से द्रविड़ बाहर चले गए और उन्होंने पश्चिम को सभ्यता प्रदान की और उन्होंने 'सिंधुघाटी सभ्यता' नाष्ट करने वाले आक्रमक आर्यों को भी सभ्यता प्रदान करवायी। हॉल कहते हैं, "There is little doubt that India must have been one of the earliest centers of human civilization and it seems natural to suppose that the strange un-Semitic un-Aryan people who came from the east to civilize the west were of Indian origin, especially when we see with our eyes how very Indian the Sumerians were in type." ("भारत वर्ष मानव सभ्यता के सर्वप्रथम केंद्रों में से एक होना चाहिए इस बात में कोई संदेह नहीं है। और विशेषता से जब सुमेरियन लोग शरीररचना में भारतीयों से समान कितने थे यह हम प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं, तब स्वाभाविकता से कहना चाहते हैं कि, पश्चिम के देशों को सभ्यतापूर्ण करते हेतु पुरुषों से आए वे विचित्र असेमेटिक अन-आर्य लोग भारतमूलक थे।") समाप्ति के समय हेरॉस कहते हैं, "We are therefore, forced to acknowledge that the Dravidians of India, after a long period of development in this country (India), travelled westwards and settling successively in the various lands, they found their way from Mesopotamia up to the British Isles, spread their race.....and made their civilization flourish in the two continents, being thus the originators of the modern world civilization" (ibid, P.21). ("इसलिए हम ये स्वीकारने के लिए मजबूर हैं कि, भारत के द्रविड़, भारत में दीर्घकाल तक उन्नति करने के बाद पश्चिम की ओर गए और क्रमशः बहुत देशों में रहते थे, उन्होंने मेसोपोटेमिया से ब्रिटिश द्वीप तक के मार्ग की खोज की और अपना वंश प्रसृत किया और अपनी सभ्यता को पृथ्वी के दोनों खंडों में प्रस्थापित किया और इस प्रकार आधुनिक वैश्विक सभ्यता के वे आदि प्रस्थापक बन गए।")

हेरॉस सिंधुघाटी सभ्यता का काल ई. स. पूर्व ६५९४ से ४९८० मानते हैं। वे कहते हैं, "In fact, the beginning of the constellation of Ram coincided with the winter solstice in the year 6594 B. C." (ई. स. पूर्व ६५९४ में मेष राशीका आरंभ उत्तरायण शुरू हुआ था।) यह गणना नक्षत्रमंडल की खालड्रियन धारणा के अनुसार थी। उसमें नक्षत्रमंडल के बारा विभाग थे; तो मोहेंजोदारो के लोग आठ विभाग करते थे। इसलिए हेरॉस कहते हैं कि, मोहेंजोदारो के लोगों के मेष राशीका प्रारंभ ई. स. पूर्व ४९८० के बाद का

नहीं माना जा सकता। तिलकजी भी ऋग्वेदका अदिति काल ई. स. पूर्व लगभग ६००० के आसपास का मानते हैं। हेरॉसके अनुमान को फ्रेंच भूगर्भवैज्ञानिक Garridge ने बोलान नदी की भूमीमें खोजे हुए सबूतोंसे समर्थन मिलता है। अपने वृत्तमें वे कहते हैं, वहाँ जो कुछ भी दिखाई दिया उसका काल ई. स. पूर्व ६००० हो सकता है और इससे वहाँ का उत्तम चावल निर्माण करने के लिए लगनेवाला खेती विषय की निपुणता दिखाई देती है।

१.३ भारत युद्ध :

सिंधु घाटी संस्कृतिका काल ऊपर निर्देश किये जाने के अनुसार ई. स. पूर्व छह हजार वर्षोंतक पीछे जाने के बावजूद उसे पुरातत्त्ववेत्ता सबसे आधुनिक ई. स. पूर्व ३१०० का काल प्रदान करते हैं, उस समय पुराण, इतिहास, ग्रंथोंके अनुसार क्या स्थिति थी वह हम अब देखते हैं।

विष्णुपुराण में कहा है –

यदेव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज

वसुदेवकुलोद्भूतः तदैव कलिरागतः॥४-२४-१०८

“हे द्विज ! जिस समय वसुदेव के कुलमें जन्मा श्रीविष्णुका अवतार (श्रीकृष्ण) स्वर्गलोक में चला गया, उस समय कलि (पृथ्वीपर) आया (कलियुग का आरंभ हुआ)।” इसी पुराणमें एक अन्य श्लोकमें भी कलियुग के आरंभ का यह निश्चित दिन बताया है –

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातः तस्मिन्नेव तदहनि

प्रतिपन्नं कलियुगं इति प्राहुः पुराविदाः॥४-२४-११३

“जिस दिन श्रीकृष्णने स्वर्गलोक की ओर प्रस्थान किया उसी दिन (देहोत्सर्ग के उपरांत) कलियुग प्राप्त हुआ ऐसा प्राचीन इतिहास जाननेवालोंने कहा है।”

हिंदू परंपरा के अनुसार अवसर के अथवा विधि के शुरुवातमें एक संकल्प किया जाता है। उसमें सृष्टिके प्रारंभसे काल बताया जाता है। कलियुग का प्रारंभ प्रमाथि नामक प्रथ संवत्सरके प्रथम मासके प्रथम दिनके रात के उपरांत सुबह दो बजकर २७ मिनट और ३० सेकंदपर बारिकीसे निश्चित किया है। यह ई. स. पूर्व ३१०२ के फरवरी की २० तारीख है। यहाँसे गणना शुरू करके भारतीय ज्योतिषवेत्ता पंचांग बनाते हैं और वे सब हिंदुस्थानमें कश्मीर से कन्याकुमारीतक और सौराष्ट्रसे आसामतक प्रचलित हैं।

कलियुग के शुरुवातमें सात ग्रह मेष राशीमें एकसाथ आए थे। फ्रेंच ज्योतिर्विद बैली (Bailey) आदि स्वीकार करते हैं कि, भारतीय ज्योतिषज्ञोंने वर्णन की हुई सात ग्रहोंकी युति बिल्कुल उस समय - मिनट और सेकंद के साथ हुई थी। पाश्चिमात्य इतिहासकारोंने कलियुग का आरंभ ई. स. पूर्व ३१०२ के फरवरी के २० तारीख को दो बजकर २७ १/२ मिनटोंपर निश्चित किया है।

विष्णुपुराणमें और भी कहा है कि जबतक भगवान श्रीकृष्ण इस पृथ्वीतलपर थे, तब तक कलि पृथ्वी को छू भी नहीं पाया। उनके देहांत के बाद बहुत चमत्कृतिपूर्ण विपरीत घटनाएँ घटने लगीं। और वृद्ध राजा युधिष्ठिरने हस्तिनापुरका राज्य अर्जुनके पोते परीक्षित को सोपकर वानप्रस्थाश्रम धारण किया; और पच्चीस साल बाद (ई. स. पूर्व ३०७६ में) अपने भाई और अन्य स्वजनों के साथ स्वर्गारोहण किया। ई. स. पूर्व ३०७६ वर्ष से कश्मिरी पंडित उनका लोकाब्द (युधिष्ठिर शक) गिनते हैं और वह शक आज भी कश्मीरमें प्रचलित है।

कलीका प्रारंभ होतेही युधिष्ठिरकी स्थिति विपरीत प्रतीत होने लगी। ऐसा महाभारतके मौसलपर्व में कहा है।

षट्त्रिंशे अथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः

ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥ २-२

“युधिष्ठिरने अपने राज्यकालके छत्तीस वर्ष पुरे करने के उपरांत उसे अपने आसपास विपरीत घटनाएँ घटती हुई दिखाई देने लगीं।” ऐसा विष्णुपुराणमें स्पष्टतासे कहा है -

विपरीतानि दृष्ट्वाच निमित्तानि हि पाण्डवः

याते कृष्णे चकाराथ सोऽभिषेकं परीक्षितः ॥४-२३-१११

“पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण निर्याण के बाद घटनेवाली विपरीत घटनाओंके कारण परीक्षित का राज्याभिषेक किया॥” इस पुराणमें आगे और कहा है -

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातः तस्मिन्नेव तदहनि

प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे॥४-२४-११५

“जिस दिन श्रीकृष्णने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया, उसी दिन और उसी समयसे कलियुग की शुरुवात हुई, उसकी वर्षसंख्या का श्रवण करो।” (४,३२,००० वर्ष) अन्य पुराणोंमें भी विष्णुपुराण के समान ही धारणा एवं घटनाओंका वर्णन मिलता है।

इस वर्णनसे दिखाई देता है, श्रीकृष्णके देहत्याग करने तक युधिष्ठिरने हस्तिनापुर पर लगभग ३६ वर्ष राज्य किया। श्रीकृष्णके देह विसर्जन का दिन ई. स. पूर्व ३१०२ फरवरी की बीस तारीखको बताया है। इसलिए इससे पहले ३६ वर्ष अर्थात् लगभग ई. स. पूर्व ३१३८ में युधिष्ठिरका (कुरुक्षेत्रके महायुद्धमें कौरवोंकी पराजय होने के उपरांत) हस्तिनापुरमें राज्याभिषेक किया गया था। इसे भारतीय युद्ध कहते हैं; वह ई. स. पूर्व ३१३९-३८ में लड़ा गया। दूसरी निश्चित तिथियाँ भी महाभारतमें दी गयी हैं।

इस युद्धमें महारथी भीष्म लड़ाई के दसवे दिन भीषण जखमी होकर रथसे नीचे गिरे। हिंदूधारणा के अनुसार उत्तरायणमें आनेवाली मृत्यु को शुभ माना जाता है। महाभारतमें भीष्म पर्वमें कहने के अनुसार उस युद्धका आरंभ कार्तिकके अमावसमें घोषित किया था। भीष्म मृत्यु की स्थितीमें गिर पड़े तब से उत्तरायणकी शुरुवात ५८ दिन दूर थी। वे इच्छित मृत्यु चाहते थे और अपने शरीरमें घुसे तीक्ष्ण बाणोंके कारण होनेवाला भीषण दुख वे धीरजसे सहते सहते उन्होंने उत्तरायण के प्रारंभतक ५८ रातें गुजारी।

शरशय्या के अठ्ठानवे रातोंकी गणना :

इन ५८ रातोंकी गणना के बारेमें महाभारत के अभ्यासकोंको उलझन हुई थी। अब ग. वा. कविश्वरजी ने वह युद्ध असलमें अठारह दिन लड़े जाने के बावजूद प्रत्यक्ष रूपमें लड़ाई के हर दिन के बाद एक आराम का दिन हुआ करता था इसलिए युद्ध का काल पैंतीस दिन था, ऐसा प्रतिपादन करके उस उलझन को दूर

किया है। इसप्रकार यह स्पष्टरूपमें साबित किया है कि, इस युद्धके घटनाओंका वर्णन काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तवदर्शी है। युद्धकी उभयपक्षी संमती से निश्चित किए गए कुछ नियमोंके अनुसार वह लड़ा जा रहा था। इस बड़े युद्धमें प्रतिदिन उभयपक्षके हजारों योद्धे मारे जा रहे थे और बहुत रथ शस्त्र आदि तहस नहस हो रहे थे। घोड़े, हाथी भी मारे जा रहे थे। दूसरे दिन पुनः प्रत्यक्ष लड़ाई शुरू करने से पहले सारी विशाल रणभूमीपर फैली हुई चीजोंको साफ करना जरूरी था। एक दिन के बाद तीसरे दिनपर लड़ाई कर बीचके विश्राम दिनपर वह काम हुआ करता था।

ऊपर किया गया प्रतिपादन महाभारतके श्लोकोंके आधारपर है और वह न्यायसिद्ध है। महाभारतमें प्रत्यक्ष युद्धारंभ की तिथि यह बताई गई है।

सप्तमाचापि दिवसादमावास्या भविष्यति

संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥

“(आजसे) साँतवे दिन के बाद (अर्थात् आठवे दिन) अमावस आएगी और उसकी देवता इंद्रको माना गया है, उस तिथिपर युद्ध का प्रारंभ करे।”

लिखित इतिहासके अनुसार प्रथम महायुद्धके आरंभ की यह तिथि ई. स. पूर्व ३१३९ सालके अमावस के अंत के मासपद्धतीसे कार्तिक की और पूर्णिमान्त मास गणना के अनुसार मार्गशीर्षकी थी। श्रीकृष्णने हस्तिनापुरमें अंतिम शांतिप्रयास असफल होने के बाद कर्णद्वारा वह कौरवोंके लिए घोषित की गई। परंतु इस अमावसकी उस युद्धमें घटी अन्य कुछ घटनाओंके वर्णन से विरोधमें देखते हुए बहुतसे विद्वानोंने युद्धारंभ की वह तिथि अस्वीकार कर मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को स्वीकृत किया है। किन्तु प्रत्यक्ष महाभारतमें उस तिथिको स्वीकारने का कोई आधार नहीं है। और वस्तुतः महाभारत के संस्कृत भाष्यकार नीलकंठाचार्य युद्धारंभ की तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मानते हैं और ‘भारतसावित्री’ नामक एक प्राचीन काव्य शुक्ल १३ मानते हैं।

युद्धके पहले दिन श्रीकृष्णार्जुन के बीच सुप्रसिद्ध भगवद्गीता संवाद हुआ। पर गीताजयंतीकी तिथि उस अमावस को अनदेखा कर एकादशी को मानना गलत है।

उपरोक्त मार्गशीर्ष की शुक्ल एकादशी को युद्धारंभ की तिथि क्यों माना गया इसका कारण देखते हैं। लड़ाई के तेरहवें दिन जयद्रथ आदि ने अर्जुनपुत्र अभिमन्यु का वध किया। उसका बदला लेने के लिए अर्जुनने लड़ाई के चौदहवें दिन की संध्या को सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध किया। उसी दिन दुर्योधनने सूर्यास्त के बाद भी लड़ाई जारी रखी। किंतु उस वर्णन के बारेमें महाभारतमें कहा है कि उस रात चंद्रोदय देरसे आधी रात के बाद हुआ था। इसलिए विद्वानोंको संदेह हुआ, अमावस को युद्धारंभ मानकर लड़ाई (कवीश्वरके प्रतिपादन के अनुसार एक के बाद एक दिन छोड़कर न मानते हुए) हररोज हुई ऐसा कहा है, लड़ाईका वह चौदहवा दिन शुक्ल पक्षके अंत में आकर उस रात देरसे वह चंद्रोदय नहीं हो सकता। इसलिए उक्त विद्वानोंने युद्धारंभकी तिथि अमावसके अलावा बादमें आनेवाली मार्गशीर्षकी शुक्ल एकादशी को माना; इसलिए क्योंकि, लड़ाई का चौदहवा दिन कृष्णपक्षकी द्वादशी और त्रयोदशी को आता है और स्वभावतः चंद्रमाका वह देर रात के बाद का चंद्रोदय साबित हो।

जो विद्वान् मार्गशीर्ष की शुक्ल एकादशी को युद्धारंभ की तिथि मानते हैं, वह युद्ध एक दिन के बादका अगला दिन छोड़कर हुआ होगा इस बात पर ध्यान नहीं देते। ग. वा. कवीश्वरने महाभारतमें आनेवाले इससे संबंधित सभी गहरे प्रश्न एक दिन के बाद एक दिन छोड़कर यह लड़ाई हुई ऐसा कहकर उत्तर की खोज की है। एक दिन को छोड़कर लड़ाईका वह चौदहवा दिन वस्तुतः सत्ताईसवा दिन होकर वह अगले कृष्णपक्षकी उत्तरार्धमें आता है और उस दिन रातको देरसे हुआ चंद्रोदय भी सही साबित होता है।

जो अन्य बहुतसी प्रहेलिकाएँ इस महाकाव्यमें स्वयं महाभारतकारोंके कहने के मुताबिक बताई हैं, वे भी इस दलील के जरिए सहजतासे खोजी जाती हैं। इसमें कहा है, वेदव्यास ने प्रत्यक्ष गणेशसे अनुरोध किया कि, वे उनका रचा हुआ यह महाकाव्य लिखें। श्रीगणेशने शर्त रखी की, मेरी लेखनी अखंडित रूपमें चलती रहे। जब कवि किसी स्थानपर श्लोकोंकी रचना करने से ठहर जाए तब मैं अपनी लेखनीको रोक लूँगा। वेदव्यासने भी अपनी शर्त रखी कि, भगवान गणेशको भी श्लोकोंका वास्तव अर्थ जानकर ही लिखना होगा। इस बातपर महाभारतकारने एक होशियारी दिखाई कि, इसमें बीचबीच में ऐसे गहरे पहेलीभरे श्लोकोंकी रचना करना शुरू कर दिया कि, स्वयं ज्ञान के देवता गणेश को भी उनका पूर्णतः अर्थ जानने में समय लगता था और उतने समयमें वेदव्यास अपनी अगली रचना को मनमें तैयार रखते थे !

आदिपर्वके अगले श्लोकमें व्यास की यह तरकीब बताई है –

ग्रंथग्रंथिं तदा चक्रे मुनिर्गुदं कुतूहलात्

यस्मिन्प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम्॥ १-८०

अष्टौ लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च

अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा॥ ८१ १-८०, ८१

“इसके बाद मुनिवर्य कृष्णद्वैपायनने अपने ग्रंथमें बुद्धिचातुर्य से कूटश्लोकोंकी गहरी गाँठ निर्माण की और उनके बारेमें प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि, इसमें आठ हजार आठसौ रहस्यभरे श्लोक हैं, जिनका सत्य अर्थ (केवल) मैंही जानता हूँ, (मेरा पुत्र) शुक जानता है और (मेरा शिष्य) संजय कुछ हद तक ही जानता होगा।”

इस कथामें कितना सत्य होगा ? ठीक है, किंतु यह निश्चित है कि इस महाकाव्यमें बहुत रहस्य से भरे हुए पहलीवाले श्लोक हैं। महाभारत युद्धके दिनगणना से संबंधित ऐसाही एक रहस्यात्मक श्लोक आगे दिया है –

“चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै

पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥” शल्यपर्व ३३४-६

युद्धारंभ की तिथि घोषित होने के उपरांत (अमावस के सात दिन पहले) बलराम (होनेवाले स्वजनयुद्ध को अनुचित समझते हुए) श्रीकृष्ण से बीड़ा लेकर तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े और युद्धके अंतिम दिन भीम-दुर्योधन गदायुद्ध के समयपर बलराम यात्रा समाप्त कर श्रीकृष्णादि को फिरसे आ मिले। इस समय उपरके श्लोकमें बलराम कहते हैं, “(तुमसे बिदा लेकर यात्रा के लिए) मैं निकल पड़ा था उसे आज बयालीस दिन पुरे हो रहे हैं; मैं पुष्य नक्षत्रपर निकल पड़ा था और (आज) श्रवण नक्षत्रपर वापस आ रहा हूँ।”

परंपरा की धारणा के अनुसार यह दिन यात्रारंभसे ७ + १८ = २५ वा है। पर बलराम स्पष्टतापूर्वक उस दिन को ४२ वा कह रहे हैं। अर्थात् इस गणना में वे १७ दिन अधिक गिनते हैं। ये १७ दिन लड़ाई एक दिन के अंतरालमें हुई, इस गणना के अनुसार युद्धकाल के वे विश्रामदिन थे। इस तर्कसे अगला श्लोक भी स्पष्टरूपमें ज्ञात होता है। इसमें युद्धसमाप्ति के बाद विजय प्राप्त करनेवाले धर्मनिष्ठ पांडवोंने अकस्मात् हस्तिनापुरमें प्रवेश न करके गंगातटपर युद्धमें मृतोंके लिए शौच (अशौच) पालने का संदर्भ मिलता है।

तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनंदनाः

शौचं निवर्तयिष्यन्तां मासमात्रं बहिः पुरात्॥ शांतिपर्व १-२

“वहाँ शहर के बहार (नदी के तटपर) महात्मा पांडवोंने शौचपालन करते हुए एक महिना निवास किया।” सिंहासन काबीज करने के हेतु वे अचानकसे हस्तिनापुरकी ओर नहीं दौड़े।

अबतक विद्वानोंका मानना था, युद्ध जितने के बाद पांडव एक महिनेतक राजधानी के बाहर नहीं रहे होंगे। इसलिए वे तर्क करते थे कि, मृतोंके लिए इस शौचपालन के एक महिने में युद्धकालके अठारह दिन समाविष्ट होंगे और इसलिए युद्धोत्तर किए गए शौचपालनके केवल (३०-१८) बारा दिन गिने जाते थे। पर श्लोकमें शौचपालनार्थ शहर के बाहर एक महिना बिताने का स्पष्टतापूर्वक संदर्भ है।

कवीश्वरने इन सब बातोंका अपने पुस्तकमें बिलकुल स्पष्टतासे वर्णन किया है। इस नए रहस्य के अनुसार उस युद्धकी तिथियाँ कैसे निश्चित की जाती हैं, यह देखते हैं।

श्रीकृष्णने युद्धतिथिकी घोषणा की वह दिन अमावस के सात दिन पूर्व का था; अर्थात् वह दिन कार्तिक कृष्ण सप्तमीका था; महाभारत में स्पष्टता से बताए जाने के नुसार वह कृष्णपक्ष तेरह दिनोंका था अर्थात् उसमें दो तिथियाँ लुप्त होती हैं - एक उस पक्षके पूर्वार्धमें और दूसरी उत्तरार्धमें। उस दिन चन्द्र पुष्य नक्षत्रमें था और बलराम की तीर्थयात्रा शुरू हुई।

तिथितालिका

कार्तिक कृष्ण सप्तमी : हस्तिनापुरमें असफल शांतिवार्ता और युद्धारंभ तिथि की घोषणा

कार्तिक कृष्ण अष्टमीसे चतुर्दशी : एक तिथि लुप्त होने के साथ छह दिन, उभय सेना कुरुक्षेत्र में पहुँच कर प्रत्यक्ष लड़ाई की तैयारी करते हैं।

कार्तिक कृष्ण अमावस : गीतोपदेश - युद्धारंभ

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा : विश्रामदिन

मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया : लड़ाई का दूसरा दिन

मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया : विश्रामदिन

मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी : लड़ाई का तिसरा दिन

इसप्रकार पंचमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी और त्रयोदशी विश्राम दिन; तथापि षष्ठी, अष्टमी, दशमी, द्वादशी और चतुर्दशी क्रमशः लड़ाई के चौथे से आठवे दिन

मार्गशीर्ष पूर्णिमा : विश्रामदिन

मार्गशीर्ष वद्य प्रतिपदा : लड़ाई का नौवा दिन

मार्गशीर्ष वद्य द्वितीया : विश्रामदिन

मार्गशीर्ष वद्य तृतीया : लड़ाई का दसवा दिन, भीष्मपतन, भीष्मकी शरशय्यापर प्रथम रात्री

इसप्रकार चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, विश्रामदिन और पंचमी, सप्तमी, नवमी क्रमशः लड़ाई का ग्यारहवा, बारहवा और तेरहवा दिन।

दशमी : विश्रामदिन

एकादशी : लड़ाई का चौदहवा दिन, जयद्रथ का वध, दुर्योधन के जिद के खातिर लड़ाई रातभर जारी रही, उत्तररातको चंद्रोदय, उसके अगले दिन लड़ाई शुरू हुई, विश्रामदिन नहीं (इसका विशेष कारण महाभारत में बताया है।)

द्वादशी	: लढाई का पंदरहवा दिन, द्रोणवध
त्रयोदशी	: विश्रामदिन
चतुर्दशी	: लढाई का सोलहवा दिन, अमावस - विश्रामदिन
पौष शुक्ल प्रतिपदा	: लढाई का सतरहवा, कर्णवध
द्वितीया	: विश्रामदिन
तृतीया	: लढाई का १७ १/२ वा दिन; दोपहर को शल्यवध के बाद लढाई रोक दी गई।
चतुर्थी	: आधा दिन भीम-दुर्योधन के बीच गदायुद्ध के बाद १८ वा दिन पूरा हुआ; बलराम-यात्रा के ४२ वे दिन की समाप्ती; आधी रातको अश्वत्थामाद्वारा निद्रिस्त पांडवोंकी सेना का कत्ल, दुर्योधन की मृत्यु

कार्तिक कृष्ण पक्षपर दो तिथिलोप होनेसे, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष पुरे पंदरह दिनों का था। इससे प्रत्यक्ष लढाईका दसवा दिन मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया पर आता है। इस दिन कौरव सेनापति भीष्म का रणभूमीवर पतन हुआ। परंतु, उनके इच्छा के अनुसार उत्तरायणमें प्राणत्याग करने हेतु, वे शरशय्या के ऊपर लेटे रहे। यह उनकी शरशय्या पर बिताई पहली रात थी।

जयद्रथवध लढाई के चौदहवे दिन हुआ, उस दिन मार्गशीर्ष की कृष्ण एकादशी थी। यह बलरामकी यात्रा का चौतीसवा दिन था। यह दिन समाप्त होनेपर भी बिना विश्राम के लढाई वैसेही चलती रहीं। इसका कारण यह है, जयद्रथवध की वजह से उदास हुआ दुर्योधन सेनापति द्रोणाचार्य को बेज्जती भरे वचन बोल बैठा और इसलिए अतीव कष्टित होकर द्रोणाचार्यजी ने ऐलान किया कि इससे आगे विजय अथवा मृत्यु प्राप्त होनेतक लढाई शुरू रही और अन्तमें उसी दिन रणभूमीपर द्रोणाचार्य का वध हुआ। लढाईके अठारहवे दिन, पौष शुक्ल तृतीया को, कौरव सेनापति शल्य का दोपहर के समय वध हुआ और उसके उपरांत रणभूमीपर लढाई बंद हुई। इसतरह से लढाई उसदिन आधा दिन ही हुई। दुर्योधन रणांगण को छोड़ जलाशयमें छिप गया। पांडवोंने उसे ढूँड निकाला और दुसरे दिन उसका भीम के साथ गदायुद्ध हुआ।

इसप्रकार पौष शुक्ल चतुर्थी को लढाई के अठारहवे दिन उत्तरार्ध समाप्त होकर दुर्योधनकी भी मृत्यु हुई और पुरे युद्धपर आखिरी पडदा गिरा। यह युद्धारंभसे ३५वा दिन और बलराम की यात्रा का ४२ वा दिन

था। उस दिन उनके दो शिष्य भीम और दुर्योधन का आपसमें गदायुद्ध देखने के लिए नारदजीने बलरामजी को उनकी तीर्थयात्रासे आने के लिए अनुरोध किया और लेकर आ गए। यह भीष्म की शरशय्या का सतरहवा दिन था।

इसके बाद पांडवोंने मृत आप्तजनोंको तर्पण देकर तीस दिनोंतक शौचपालन किया और फिर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। वहाँ युधिष्ठिरको राज्याभिषेक किया गया। उसके बाद युधिष्ठिर कुरुक्षेत्रमें शरशय्यापर लेटे हुए भीष्माचार्यके पास चला गया। वहाँ कृष्ण के कहने के अनुसार भीष्मने युधिष्ठिरको महत् धर्मोपदेश दिया।

शरशय्याकी ५८ राते समाप्त होनेके बाद उत्तरायण के अवसरपर भीष्मने देहत्याग कर दिया। उस दिन माघ पूर्णिमा थी। मृत्यु के समय भीष्म ने कहा,

अष्टपंचाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः

शरीषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा।। अनुशासन पर्व

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यः युधिष्ठिर

त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लां भवितुमर्हति ॥

“तीक्ष्ण अंकुशोंसे युक्त शरों के ऊपर शयन करते करते मेरी अठ्ठवन रातें बीत चुकी है, यह पूरा समय मुझे सौ वर्षोंसमान प्रतीत हुआ। हे युधिष्ठिर, यह माघका सौम्य मास चल रहा है और केवल तीन मुहूर्त शेष रहे इस पक्ष को शुक्ल कहा जाता है।” इसमें आनेवाले ‘त्रिभागशेष’ शब्द के कारण विद्वान् बहुत उलझनमें पड़ गए थे, वे उसका अर्थ माघ मास का ३/४ भाग अद्याप शेष है, ऐसा करते थे। परंतु “पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति” शब्दसे यह स्पष्ट है कि, वह शुक्ल पक्ष लगभग खत्म हो चुका था और इसलिए ‘त्रिभाग शेष’ का अर्थ अगले कृष्णपक्षीय प्रतिपदा का सूर्योदय होनेके लिए तीन मुहूर्त (४८ मिनट x ३ = १४४ मिनट = दो घंटे चोबीस मिनट) शेष थे ऐसा है।

जिन्हें ‘एक दिन के विराम से लड़ाई’ के रहस्य का पता नहीं था, वे अमावस को युद्ध शुरुवात करने के महाभारतमें आने वाले स्पष्ट वचन को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे और लड़ाईका ठीक चौदहवा दिन

मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष के उत्तरार्धमें साबित करने हेतु उन्होंने मार्गशीर्ष एकादशी को युद्धारंभ का दिन माना। तथापि, लड़ाई के दसवे दिन भीष्म का रणभूमीपर पतन हुआ वह दिन इनके गणना के अनुसार मार्गशीर्षकी कृष्ण पंचमी माना जाता है और वहाँ से शरशय्यापर बिताई हुई (मार्गशीर्ष में शेष १० + पौषकी २९ + माघ की १९ =) ५८ रातोंकी गिनती करनेपर भीष्म के मृत्यु की तिथि माघ कृष्ण चतुर्थी अथवा पंचमी कह सकते हैं। उस समय बेशक शुक्ल पक्ष नहीं हो सकता। परंतु भीष्म स्पष्टतापूर्वक “शुक्लो भवितुमर्हति” ऐसा कह रहे हैं। युद्धारंभ उक्त अमावसको माननेपर लड़ाई एक दिन के विरामदिनोंसे न मानते हुए हररोज हुई होगी तों लड़ाई का दसवा दिन मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी होकर, वहाँ से ५८ रात को माघ शुक्ल अष्टमी को समाप्त हुआ, ऐसे माना जा सकता है और यहाँ तक ही सीमित यह बात रहेगी। परंतु इसमें ‘लड़ाई के चौदहवे दिन उत्तररातको चंद्रोदय’, और ‘बलरामयात्रा के ४२ दिन’ और युद्ध के बारे में महाभारतमें आनेवाले अन्य विधान भी सही साबित नहीं हो सकते।

इन सब बातोंको देखते हुए, अगर एक विश्रामदिन के साथ लड़ाई हुई यह रहस्यपर गौर किया जाए तों ऐसे सभी प्रहेलिका पूर्ण श्लोकोंका सही स्पष्टीकरण मिलता है।

इसके साथ ही यह बात भी साबित होती है कि, इस युद्धका इतना सूक्ष्मतासे और घटनाक्रमके अनुसार वर्णन देने के कारण यह एक वास्तविक घटना थी।

यह रहस्य केवल एक कल्पना नहीं है। रणांगणपर पड़े हुए योद्धा और जानवरोंके शव साफ करने के लिए विश्रामदिन जरूरी थे। इस रहस्यको अनुमोदन देने के हेतु महाभारतमें बहुतसे संकेत हैं। उदाहरणार्थ, लड़ाईके हर दिन उभय पक्षकी सेना को पूर्वनियोजित जटिल व्यूहरचना में खड़ा किया जाता था। लड़ाई के दुसरे दिन पांडवोंने अपनी सेना को ‘क्रौंचारुण’ व्यूहमें और कौरवोंने ‘गरुड़’ व्यूह में खड़ा किया था, ऐसा कहा है। इसके अलावा, ‘मकर’, ‘वज्र’, ‘श्येन’, ‘अर्धचंद्राकार’ आदि व्यूहोंके भी सन्दर्भ मिलते हैं। इन व्यूहोंके सेनाद्वारा अभ्यास हेतु भी विश्रामदिन जरूरी थे। अन्यथा लड़ाई के दिन संध्या को उभयपक्षीय सेना थकी हुई और शयन की इच्छा कर रही हो, तों अगले दिन सूर्योदय के पूर्व उनकी व्यूहबद्ध रचना सेनापति नहीं कर पाते। उभयपक्षी सेना की विश्रामदिन के नियम को शायद स्वीकृती होगी।

इसके बिना, एक सेनापति के जाने के बाद उसी जगह दुसरे को स्थानापन्न करने के लिए विधिवत् अभिषेकादि के विस्तारपूर्वक वर्णन महाभारतमें दिए हैं। यह विधि केवल विश्रामदिन को ही होने संभव था।

हिंदू परंपरा के अनुसार पांडवोंने सभी मृत आप्तोंके स्मरणार्थ तीस दिन गंगाकिनारे ‘शौचपालन’ किया। उसके बाद श्रीकृष्ण और वेदव्यासने युधिष्ठिर को अपने शोक काबू करके राज स्वीकारने के लिए समझाने के बाद वह सिंहासनपर बैठने के लिए तैयार हुआ। उसके अनुसार पांडवोंने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया

और युधिष्ठिर को राज्याभिषेक किया। उसने प्रजाके सामने आकर आशीर्वाद का ग्रहण किया। उसके बाद श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको भीष्माचार्य के पास जाकर उपदेश ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। उसी तरहसे श्रीकृष्ण और सात्यकी के साथ पांडव जहाँ शरशय्यापर भीष्म लेटे थे, वहाँ पहुँचे। उस समय शरशय्यापर भीष्म की त्रेपन्न रातें गुजर चुकी थी। भीष्म के पास पहुँचनेपर वे सब रथ से उतरें और उन्होंने भीष्म को अभिवंदन किया। श्रीकृष्णने भीष्म को दिव्य दृष्टी और शक्ति प्रदान की; जिससे भीष्मकी शारीरिक और मानसिक दुर्बलता दूर हुई। श्रीकृष्णने भीष्मकी प्रशंसा कर कहा कि, वे युधिष्ठिरपर सत्य, न्याय और धर्म का उपदेश करने की कृपा करे, अन्यथा उनके मृत्यु के बाद वह सारा ज्ञान आनेवाली पिढीयोंको अनुपलब्ध होगा। तदनुसार भीष्मने मानव और उसके हित के बारेमें महान धर्मोपदेश किया, वह महाभारत के शांतिपर्व और अनुशासन पर्व में ग्रंथित किया है।

युद्धारंभ से ७६ वे दिन, भीष्मपतन से ५८ वे रात के समाप्ती के समय श्रीकृष्ण, विदुर, व्यास आदि के साथ पांडव कुरुक्षेत्रपर जहाँ भीष्म शरशय्यापर पड़े थे वहाँ के पवन स्थानपर फिरसे गए। भीष्मने उनका अभिवंदन स्वीकृत कर युधिष्ठिरसे कहा -

दिष्टया प्राप्तोऽसि कौन्तेय सहामात्यां युधिष्ठिर

परिवृत्तो हि भगवान् सहस्त्रांशुर्दिवाकरः॥ अनुशासन पर्व

अष्टपंचाशतं रात्र्यः शयानस्याय मे गताः

शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा॥

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यः युधिष्ठिर

त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति॥

“हे कुंतीपुत्र युधिष्ठिर ! तुम बिलकुल समयपर अपने आमात्यदिकोंके साथ यहाँ आए हो, यह बहुत अच्छी बात है, सहस्रकिरणधारी सूर्य अब दक्षिणायन से फिरसे (उत्तर) की ओर घुमा है।” (इसके बाद आनेवाले दो श्लोकोंका अर्थ ऊपर दिया है।) इसके बाद कुछ ही समय के उपरांत भीष्म की मृत्यु हो गई।

महाभारतमें दिए गए इस युद्ध के सुव्यवस्थित वर्णन को देखते हुए यह युद्ध एक काल्पनिक कथा नहीं बल्कि वास्तवमें घटी घटना दिखाई देती है और उसमें दिए गए सभी ज्योतिषविषयक संदर्भ भी ई. स. पूर्व ३१३९ में यह घटना घटी होगी ऐसा माननेपर यह वास्तविक ग्रहोंकी स्थिति से मेल खाती है। इसप्रकार ई. स. पूर्व ३१३९ के साल अक्तूबर ८ का दिन युद्धारंभ का दिन होकर, अक्तूबर २६ भीष्म के पतन का दिन बन जाता है। युद्धसमाप्ति नवंबर ११ को हुई और भीष्मनिधन ई. स. पूर्व ३१३९ को २३ दिसंबर को सूर्योदय से पहले उत्तरायण के प्रारंभमें हुआ। युधिष्ठिर का भारतसम्राट के रूपमें हस्तिनापुरको उस साल १७ दिसंबर को अभिषेक किया गया और ई. स. पूर्व ३१०२ में बीस फरवरी को कलियुग का प्रारंभ होकर, युधिष्ठिरमें उसी समय राज्य का त्याग किया और वह परीक्षित के पास सौंप दिया। इसप्रकार महाभारत में कहने के अनुसार सम्राट युधिष्ठिरने ३६ साल राज्य किया।

सुमेरियन कालगणना के संकेत :

परंतु वेंडेल मेसोपोटेमियामें प्राप्त हुए चिकणी मिट्टीके बाणाकृती पाटियोंकी आधारपर भारतीय युद्ध का काल ई. स. पूर्व ६७० बताते हैं। इसका संक्षेपमें परीक्षण करते हैं, विशेषतः इसलिए कि, सुमेरियन और सिंधु सभ्यताओंमें निकटतम संबंध था, यह सर्वसम्मत है। वैदिक लोगोंका आर्य शब्द वांशिक अर्थ से भले ही न हो, फिर भी वे देशांतर करके जहाँ जहाँ जाते थे वहाँ वहाँ उस शब्द से अपने आपको संबोधित करते थे। उसका ‘उच्च’ अथवा ‘श्रेष्ठ’ अर्थ बड़ा आकर्षक था। सुमेरियन शब्द Ar-Are (= उच्च, भव्य) इसकी वैदिक ‘आर्य’ से निकटतम समानता है। गोथ, स्कैंडिनेव्हियन, जर्मन और अंग्लोसॅक्सन लोगोंके शब्द Her, Hera, Hearra, Herr (= स्वामी अथवा मालिक), आयरिश शब्द Aire (= नायक), ये आर्य अथवा Ar, Ara से बने हैं। सम्राट दारियस खुदको ‘आर्योंका वंशज आर्य’, और वज़्रसेस खुदको ‘हरि’ कहता है।

सुमेरियन राजधानी ‘शुरूपाक’ का स्थान आधुनिक अरब गाँव ‘फारा’ के पास है, जहाँ कुछ उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए उस बिस्मय अथवा आडस शहर से जादा दूर नहीं (वेंडेल, p. १३४). ‘शुरूपाक’ से मुंबई के नजदीक ‘शुर्वरक’ अथवा ‘शुर्पारक’ (आधुनिक सोपारा) शहर के नामसे उच्चारण की समानता दिखाई देती है। ई. स. पूर्व २८०० के उपरांत जल्दही दक्षिण बलूचिस्तानके कुल्ली संस्कृतीके व्यापार करनेवाले और शुरू के सुमेर वंशीयोंके बीच संबंध बना था, यह विद्वानोंने स्वीकृत किया है और ऐसेभी कहा है कि, जबतक हरप्पा और मोहेंजोदारो शहर मौजूद थे तबतक हरप्पा संस्कृती और कुल्ली संस्कृती के बीच संबंध जारी था।

मुद्दे की बात यह है कि सुमेरियन और सिंधु सभ्यता के बीच बहुत समानता थी और समकालीन भी थी। ऐसा माननेपर, अगर वॉडेल सुमेरियन उत्कीर्ण लेखोंसे महाभारत युद्धका काल ई. स. पूर्व ६७० ठहराते हैं, तो इस बातका चिकित्सापूर्वक परीक्षण जरूरी है।

बहुत जगहोंपर प्राप्त हुई चिकणी बाणाकृती की सूची है। युफ्रेटिस और टायग्रिस नदीयोंके पास के प्रदेशको पहले मेसोपोटेमिया कहते थे। वे सूचीयाँ 'ईसिन' नामक राजधानी शहरके पुरोहितने बनाई है।

इस खोज से पहले पाच सुमेरियन वंश की सूचीवाला एक फलक किश शहरमें उत्खनन द्वारा खोजा गया है। किश पुरातन सुमेरियन साम्राज्य की राजधानी थी (इराकमें बगदाद के दक्षिण की ओर) युफ्रेटिसके प्राचीन प्रवाह के मार्गपर स्थित थी। युफ्रेटिसका सुमेरियन नाम "पुरनुनु" अथवा 'पुरत्रि' था, वॉडेल उसे वर्तमान (पाकिस्तानके) ओजब के परुष्णी अथवा रावीके साथ जोड़कर ऐसा सूचित करते हैं कि, हिंदू-आर्योंने सिंधु संस्कृतिको पार कर पूरब की ओर ऐसी ही एक बड़ी नदीपर निवास के लिए आने के बाद उसे पुरनू नदीका परिचित प्राचीन नाम दिया।

इस 'किश' नामक लेख का काल ई. स. पूर्व २४९६ माना गया है। यह गोथिक आक्रमण का साल है और यह उस सूचीमेंसे अंतिम (पाँचवे) वंशके अंतिम राजाका काल है। उसमेंसे चौथा वंश प्रसिद्ध राजा सरगोनका है। उसका काल लगभग ई. स. पूर्व २७२५ मानकर और पीछे कालगणना करते हुए उस सूचीके प्रथम वंशके प्रथम राजा का काल ई. स. पूर्व ३३७८ माना है। वॉडेल 'किश' के लेखानुसार उस राजा का नाम 'उकुसी' पढ़ा जाता है और वह भारत के प्रथम सूर्यवंशका राजा 'इश्वाकु' मानते हैं। जाहीर है फिर वे इश्वाकुका काल ई. स. पूर्व ३३७८ मानते हैं। विष्णुपुराणमें आनेवाले वंशावली को प्रमाण मानकर वे उस वंशके अंतिम राजाका काल ई. स. पूर्व ७१७ होने का अनुमान लगते हैं और उस सूर्यवंश का अंत महाभारत युद्ध के थोड़े पहले हुआ ऐसा मानकर उस युद्ध का वर्ष ई. स. पूर्व ६७० मानते हैं।

परंतु 'किश' लेखमें प्रथम सुमेरियन राजवंश के प्रथम राजा 'उकुसी' का वॉडेल सम्मत काल ई. स. ३३७८ तथाकथित काल केवल काल्पनिक अंदाजा है। वे यँही ४९४२ साल पीछे की ओर इस काल को ठहराते हैं। ऐसा माननेपर यह काल $3378 + 4942 = 8320$ होता है और वॉडेल 'किश' सूचीमेंसे २३ वे राजा सरगोन को मानकर, ऊपर दिए गए पसिपद्मको २४ वे राजा के समकालीन मानते हैं और सरगोनका काल वे ई. स. पूर्व २७२५ मानते हैं।

इसमें स्पष्ट कुछ गड़बड़ है। 'उर' के प्रथम राजा 'किश' के प्रथम वंशके प्रथम राजासे ४९४२ वर्ष पूर्व होना और इसके साथ ही उसें किस सूचीमेंसे २४ वे राजाका समकालीन मानना असंभाव्य है।

इस सूचीमें प्रत्येक राजा का राज्यकाल सूचित किया हुआ है, इससे प्रथम 'उर' राजाका काल ई. स. पूर्व ८३२० सही हो सकता है। पर वॅडेल सुमेरियन लोगोंका इतने प्राचीन कालसे होना मानने के लिए तैयार नहीं है।

प्रोफ़ेसर Scheil जैसे असीरियन संस्कृतीके विवेचक 'इसिन'का कालगणना वृत्तांतमें सबसे महत्त्वपूर्ण बाणाकृति ऐतिहासिक लेख मानते हैं। पर फिर भी यह विवेचक बिना वजह ई. स. पूर्व ८३२० कम करके 'ई. स. पूर्व लगभग ४२१६' का बताते हैं। (Cambridge Ancient History, p. 42)

यहाँ एक विशेष बात को ध्यान में रखना पड़ेगा कि, अपने पुराणोंसमान 'किश' और 'ईसिन' वृत्तांत के महापुरको प्रलयपूर्व और प्रलयोत्तर काल की विभाजन रेखा मानते हैं। यह महापुर कब हुआ उसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। भूगर्भीय और अन्य आधारोंपर तिलक प्रतिपादन करते हैं कि, हिमयुगोत्तर कालमें वैदिक लोग अपना पुराना निवास त्यागकर कास्पियन समंदर और कॉकेशस पहाड़ की तरफ बढ़ेंगे। इसलिए तिलक वैदिक और अवेस्ता साहित्यमें वर्णित महापुर विषयके कथाओंका सहारा लेते हैं। हिमयुगका अंत महापुर के कारण हुआ। तिलक अनुमान करते हैं, "जिसे आसानीसे अनदेखा नहीं किया जा सकता ऐसी नूतन उपलब्ध भूगर्भीय प्रमाणोंके मुताबिक अधिकसे अधिक लगभग दस हजार वर्षपूर्व, याने ई. स. पूर्व ८००० के आसपास, हिमयुग का अंतिम काल समाप्त हुआ होगा और सैबेरिया के जीवाश्म अवशेषों की स्थिति इस बातको बयान करती है।"

किशवृत्तके प्रथम महापुर के बाद राजा (प्रथम सुमेरियन राजवंश का प्रथम राजा) को ई. स. पूर्व ८३२० मानने पर उस उकुसीके और इसलिए भारतीय सूर्यवंशके प्रथम राजाका, काल ई. स. पूर्व ८३२० साल के साथ महापुर के ई. स. पूर्व ८००० साल सही साबित होता है। वॅडेल के सभी विधानोंको स्वीकार न करने पर भी पौराणिक इश्वाकू अर्थात् किशके उकुसी के आधारपर महापुर का साल ई. स. पूर्व ८३२० दिखाई देता है। उसके अलावा वॅडेल वह काल ३३७८ मानता है और वह वंश ई. स. पूर्व ३१३९ में समाप्त हुआ ऐसे मानकर वह महाभारत के युद्धका वर्ष तय किया जाता है।

दबिस्तानका लेख :

उत्तर भारत, कश्मीर और पश्चिम आशियाके अपने सफ़रमें विल्यम जोन्सने 'दबिस्तान लेख' प्राप्त किया। वे कहते हैं कि, उसमें उल्लेख किए हुए राजा भारतीय थे और अलेक्ज़ांडर के आक्रमण के छह हजार वर्षपूर्व, अर्थात् ई. स. पूर्व लगभग ६३२६ से, बॅक्ट्रियापर राज्य किया। इसके अतिरिक्त, भारतीय राजकीय इतिहासकी प्राचीनता बहुतसे स्मारकलेखोंसे भी सिद्ध होती है। (देखिए, The plot in Indian Chronology, पूर्व उल्लेखित p. 11)

भारतीय युद्ध काल्पनिक है क्या ?

पाश्चिमात्य विद्वान् महाभारत को एक काल्पनिक कहानी मानते हैं। जादा से जादा वे भारतीय युद्ध की बातका स्वीकार करते हैं; पर उसकी ऊपर दी हुई कालगणना को अस्वीकार करते हैं। वे रामायण, महाभारत और पुराण - जिसमें भारतीयोंके अनुसार कमसे कम ३१०० वर्षोंका इतिहास है वह सब ई. स. पूर्व ९४१ से ई. स. पूर्व ३२८ तक, अर्थात् केवल छहसौ वर्षोंके कालतक सीमित करना चाहते हैं। और इसलिए कि उनके अनुसार अलेक्झांडर की भारतमें यात्रा (जिसे 'सवारी' कहते हैं) हुई उससे पूर्व अर्थात् ई. स. पूर्व ३२८ के पीछे (का मानते हैं), भारतीयोंके पास वास्तविक इतिहासही नहीं है।

परंतु, भारतीय परंपरा के अनुसार रामायण ई. स. पूर्व ४५०० के आसपास और भारतीय युद्ध ई. स. पूर्व ३१३९-३८ में घटित हुआ। पुराणोंके अनुसार भारतीय युद्ध और नंद वंश के दरमियाँ १५०० सालोंतक, नंद वंश सौ वर्षोंतक रहा। अंतिम नंदको चंद्रगुप्त मौर्यने परास्त किया। पाश्चिमात्य विद्वान् इस चंद्रगुप्त मौर्यको अलेक्झांडरका समकालीन मानते हैं। इसप्रकार भारतीय युद्ध के बाद कुलमिकाकर १६०० (सूक्ष्मतासे १६०४) वर्ष बीत गए और पौराणिक गणनानुसार चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण वर्ष (३१३८-१६०४= ई. स. १५३४) साबित होता है; परंतु पाश्चिमात्य विद्वान् वह ई. स. पूर्व ३२६ का मानते हैं, क्योंकि वह चंद्रगुप्त मौर्य अलेक्झांडरसे समकालीनत्व को प्राचीन भारतीय कालगणनाका आधार (Sheet anchor) मानते हैं।

किंतु भारतीय सम्राट 'सँड्राकोट्स' (जिसे पाश्चिमात्य विद्वान् चंद्रगुप्त मौर्य समझते हैं) के दरबारमें आया ग्रीक राजदूत मेगस्थनीस लिखते हैं कि, 'बेकूस'से सँड्राकोट्सतक मगधमें १५३ राजे होकर गुजरे। भारतीय युद्ध के पूर्व भारत के ४८ सम्राट हो चुके थे; उसमें प्रथम सम्राट इक्ष्वाकु थे; जो हिम "महापूर" के उपरांत सूर्यवंशके प्रथम राजा थे। उसका पुत्र विकुक्षी अर्थात् 'बेकूस' था ऐसा माना जाता है। पुराणोंके अनुसार भारतीय युद्ध के बाद मगधमें नंद के अंततक केवल ४६ राजा हुए। इस प्रकार 'बेकूस'से सँड्राकोट्स (तथाकथित चंद्रगुप्त मौर्य) तक ४८+४६=९४ राजाओंकी ही गणना की जाती है और शेष (१५३-९४=) ५९ राजाओंके बारेमें कहीं जानकारी नहीं मिलती। परंतु उनकी कोई भी परवा न करते हुए यह विद्वान् कहते हैं कि, चंद्रगुप्त मौर्यके पूर्व (ई. स. पूर्व ३२८ के पूर्व) का काल भारतीय इतिहास का अंधकारमय हिस्सा था।

भारतीयों के पास ऐतिहासिक दृष्टि नहीं थी ?

पाश्चिमात्य प्रायः कहते हैं कि प्राचीन भारतीयोंको (मुख्यतः दार्शनिक चिंतनमें रुची थी) ऐतिहासिक दृष्टि न होनेसे तत्कालीन विद्वानोंने भारतीय इतिहास की सिलसिलेवार (उस बारेमें) कुछ लिखा नहीं। इसलिए भारत के इतिहास के लिए पाश्चिमात्य विद्वान् विशेषतासे उत्कीर्ण लेख, घोषणा लेख, सिक्के, ताम्रपत्र, उत्खनन में प्राप्त हुई पुरातन वस्तुएँ और विदेश के यात्रियोंके समाचार आदिपर निर्भर रहने लगे। पर वास्तव

रूपसे उनके पास ऐतिहासिक दृष्टि थी और ऐतिहासिक जानकारी देनेवाले बहुतसे ग्रंथ उन्होंने रचे हैं। तों पाश्चिमात्योंको ऊपर बताया गया भ्रम क्यों हुआ ?

अंदाजन दो सौ वर्षपूर्व ब्रिटिशोंका भारतपर अधिकार होने के उपरांत, अंग्रेज अधिकारियोंके बीच अपना शासन सुस्थिर रखने हेतु भारतीय संस्कृत भाषा एवं साहित्य के साथ परिचय होनेकी जरूरत महसूस हुई। तब उन्होंने विशेषतासे वॉरन हेस्टिंगकी प्रेरणासे वेदोपनिषद और गीता का अध्ययन शुरू किया। इसमें पाश्चिमात्य विद्वानोंको भारतीयोंका सृष्टिनिर्मितीविषयक सिद्धांत और उस संबंध में की गई युद्धगणना लाखों वर्षोंकी है, इस बातकी जानकारी मिली। परंतु वे ऐसा सोचने लगे कि, हमारा ऐतिहासिक साहित्य ई. स. पूर्व १००० तक का है, यह पराभूत हिंदू उससे भी अधिक प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य का प्रदर्शन कर सकते हैं ? इसलिए वे भारतीय कालगणना को कल्पित मानने लगे। वैदिक वाङ्मय का काल ई. स. पूर्व ६०० से १२०० होने का प्रतिपादन करने लगे। दुर्भाग्यवश शुरूमें हमारे विद्वानभी विदेश के विद्वानोंके इस मत को प्रमाण मानते थे।

लेकिन वैदिक साहित्यके विदेशीय विद्वान Goldstucker ने ही स्पष्टतासे प्रश्न किया है कि, बायबलकी भौगोलिक जानकारी छोड़नेपर ई. स. पूर्व १२०० विश्वका आदिवर्ष है क्या ? क्योंकि वेदग्रंथोंको विदेशीय विद्वानभी पुरे विश्वका आद्यतम साहित्य मानते हैं। तिलक महोदयने विदेशीय तरीकेसे विवेचन कर इस बारेमें वेदोंमेंसे ही कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। जॅकोबी आदि पाश्चिमात्यभी वेद का काल ई. स. पूर्व ४५०० बताते हैं। ई. जे. रॅपसनने ऋग्वेदका काल ई. स. पूर्व सात हजार वर्षोंतक का प्राचीन है, ऐसा खुलके स्वीकार किया है।

ऋग्वेदमें सरस्वती (७-१५-२) और सतलज (३-३३-१) नदीयोंके बारे में आनेवाला संदर्भ दर्शाता है कि, ये नदियाँ उस समय बहुत बड़ी होते हुए सीधे समंदर से जाकर मिलती थीं। वर्तमान समयपर सतलज सिंधु नदी की केवल एक शाखा के तौरपर बची है, सरस्वती लुप्त हो चुकी है। हमारे प्राचीन कवियोंने इन नदियोंका इतना योग्यतापूर्ण वर्णन किया है के उसे उन्होंने प्रत्यक्ष में देखा होगा। भूगर्भ वैज्ञानिक मानते हैं कि, वह वर्णन २५००० अथवा उससे भी अधिक पूर्वकालका होगा। आधुनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि, अपनी पृथ्वी अंदाजन ४५० करोड़ साल की होगी। ४३२ करोड़ मानव-वर्ष के उपरांत ब्रह्म का एक दिन आता है, इस प्राचीन हिन्दू धारणा का समर्थन करते हैं।

ऋग्वेदमें स्पष्टतासे कहा है कि पृथ्वी सूरज की ओर घुमती है। “यत् भूमिम् विअवर्तयत” (८-१४-५) ‘इंद्रने पृथ्वी को सूरज की ओर घूमनेके लिए कहा।’

ऑस्ट्रेलिया के थॉमस अपने पुस्तकमें प्राचीन भारतीयोंकी गणित में उन्नति दिखानेवाला एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 'सिद्धांत कौमुदी' से दिखाई देता है कि, प्राचीन भारतीय १/३ सेकंदोतक सूक्ष्म गणना नहीं कर पाते। 'बृहत् ज्ञातक' में अगली तालिका दी है, अहोरात्र कला-विकला-परा-तत्परा-विततापरा-इमा-काष्ठा। इनमेसे काष्ठा अर्थात् १/३२४००००० सेकंद। खगोलविज्ञान, गणित आदि और प्राचीन भारतीय लेखक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक, राजकीय और सामाजिक घटनाओंकोभी बारीकीसे लिख लेते थे। वायुपुराण में कहा गया है (१-३१, ३२) -

स्वधर्म एषः सूतस्य सद्भिः दृष्टः पुरातनैः

देवतानां ऋषीणां च राज्ञां अमिततेजसाम् ॥

वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्

इतिहास-पुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥

“प्राचीन सत्यवादी पुरुषोंने कहा है कि, इन सूतोंका कर्तव्य अपने इतिहास और पुराणमें आए राजा, द्रष्टा और अन्य अमित तेजस्वी व्यक्ति (देवदेवता) योंके पराक्रमोंके और कार्य के बारेमें लिखित जानकारी रखना था; तथापि, मैं व्यक्तियोंकी वंशावली की जानकारी और उन्होंने ब्रह्मवादी ऋषियोंके उपदेश के अनुसार अपने लक्ष्य किसप्रकार प्राप्त किए इस बात का लिखित रूपमें जिक्र करना भी उनका काम था।”

इससे दिखाई देता है कि, प्राचीन भारतमें प्रत्येक राजा केवल राजाओंके नहीं तो ऋषिमुनियोंके और मानवहित के लिए काम करनेवालोंके समाचार रखनेहेतु अपने पास 'सूत' (नामक व्यक्ति) नियुक्त करते थे। पर पिछले दो शतकोंके विदेशीय विद्वानोंने हमारे पुराण और इतिहासको अधिकृत इतिहास मानने के लिए व्यर्थ अस्वीकृती दिखाई।

पुराणोंका उद्देश पुराणोंमेही बताया है -

सर्गः प्रतिसर्गः च वंशो मन्वंतराणि च

वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् । भविष्य पुराण २-४

“सर्ग (मूल सृष्टिनिर्मिति), प्रतिसर्ग, देवादिकोंकी वंशावली, मन्वंतर और राजवंशका इतिहास की लिखित जानकारी (रखना) यह पुराणोंके पाँच लक्षण (कार्य) है।”

जोन्स आदिकी कल्पित और मनघडन भूमिका

कोलकाता उच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश विल्यम जोन्सने भारतीय इतिहासके अध्ययनका प्रारंभ किया। ई. स. १७९४ में स्थापित रॉयल एशियाटिक सोसायटीके वे संस्थापक अध्यक्ष थे। पुराणोंकी बौद्ध साहित्य के साथ असंगति देखकर उन्होंने कहा, “We may establish as indubitably the two following propositions: that the three first ages of the Hindus (Krita, Treta and Dwapara) are chiefly mythological, and that the fourth, or historical age (Kali) cannot be carried further back than about two thousand years before Christ.” (“हमें अगले दो विधान स्वीकारने में कोई हर्ज नहीं है - हिंदूओंके कृत, त्रेता और द्वापरयुग मुख्यतः पुराणकथास्वरूप है; और चौथे ऐतिहासिक (कलि) युग ख्रिस्तपूर्व दो हजार वर्षोंसे पीछे नहीं लाया जा सकता।”) उन्होंने ऐसाभी प्रतिपादन किया कि, उत्तर हिंदुस्थानके सम्राट के रूपमें पाटलीपुत्रमें राज करनेवाला चंद्रगुप्त, जिसके दरबारमें विदेशसे राजदूत आते थे, यह सेल्यूकस निकेटर के साथ सुलह करनेवाला सँझाकोट्टस ही है। जोन्स भारतीय पुराणोंसे ग्रीक समाचारोंको अधिक विश्वसनीय मानते हैं यह आश्चर्यकी बात है। ग्रीक समाचारोंमें ग्रीक राजदूत और उनके साथ आए हुए लेखकोंने यहाँपे अल्पकाल रहे तबतक लिखे गए टिप्पणीयोंपर आधारित है। उन्हें इस देशकी या भारतीयोंकी कितनी जानकारी होगी ? उसके विपरीत पुराणोंमें आनेवाले समाचारोंमें ‘व्यास’ नाम धारण करनेवाले बहुत विद्वानोंने उनके पास रही पुरी जानकारी के आधारपर आजीवन परिश्रम कर लिखी हुई कृतियाँ हैं। परंतु उनका यथोचित सम्मान करनेकी जगह, जोन्स कहते हैं -

"Indian (v) history is so much clouded by the fictions of the Brahmins who, to aggrandize themselves, have designedly raised their antiquity beyond the truth. We must be satisfied with probable conjectures." (“भारतीय इतिहास ब्राह्मणोंके कपोलकल्पनाओंसे बहुत धुंदलासा हुआ है। स्वयंको वैभवसंपन्न बनाने हेतु उन्होंने जानबुझकर अपनी प्राचीनता वास्तवसे परे साबित की है। हमें संभाव्य लगनेवाली दलीले करके संतुष्ट रहना मज़बूरी है।”)

प्राचीन ग्रीक इतिहासकार अलेक्झांडरकी भारतमें हुई तथाकथित सवारी से संबद्ध झँझोमस्, सँझाकोट्टस और सँझासायटस् नामक तीन राजाओंका सन्दर्भ बताते हैं। जोन्स इनमेसे सँझाकोट्टस को

चंद्रगुप्त मौर्य मानकर उसे अलेक्ज़ांडर का समकालीन मानते हैं। फिर उन्हें झँड्रोमस् अर्थात् महापद्म नंद (चंद्रगुप्त मौर्यके पिता) और सँड्रासायटस् अर्थात् चंद्रगुप्त के उपरांत आनेवाला राजा बिंदुसार मानना पड़ेगा। इसप्रकार ई. स. पूर्व १५३४ के चंद्रगुप्त मौर्यको ई. स. पूर्व ३२६ के अलेक्ज़ांडर का समकालीन ठहराया है। इसमें 'झँड्रोमस्' उच्चारका 'महापद्मनंद' के उच्चारण के साथ और 'सँड्रासायटस्' का 'बिंदुसार' से कितनी समानता है इस बातकी कोई चिंता जोन्स नहीं करते।

इसी नजरियेसे एलफ़िन्स्टोन कहते हैं, "No date or public event can be fixed before the invasion of Alexander" ("अलेक्ज़ांडर की सवारी से पूर्व कोई भी दिन अथवा सामाजिक अवसर निश्चित नहीं किया जा सकता।")

परंतु भारतीय इतिहासके एक अन्य विवेचक ट्रॉयर (ई. स. १८५९) ने प्रतिपादित किया है कि अलेक्ज़ांडर का समकालीन चंद्रगुप्त मौर्य नहीं, गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त था। इसके अनुसार झँड्रोमस् अर्थात् उस चंद्रगुप्तका पूर्वअधिकारी चंद्रबीज और सँड्रासिटस् अर्थात् उस चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त कहा जा सकता है। पर फिरभी मैक्स म्युलर कहते हैं, "Although other scholars, and particularly M. Troyer, in his edition of the Raja-tarangini have raised objections, we 'shall see that the evidence in favor of the identity of Chandragupta (Maurya) and Sandracottus is such as to admit of no reasonable doubt." ("भले ही अन्य विद्वान और विशेषतः एम. ट्रॉयर - 'राजतरंगिणी' के सम्पादित आवृत्तिमें आक्षेप लेते हैं, फिरभी सँड्राकोट्टस अर्थात् चंद्रगुप्त मौर्य, इस बातको साबित करने के लिए प्रमाण पेश करेंगे कि, उसके बारेमें कोई शक के लिए गुंजाईश नहीं बचेगी।") ये किस सहारेसे ऐसा कह रहे हैं, वह आधार नहीं बताते हैं।

वस्तुतः जोन्सने पौराणिक कालगणना का अध्ययन कर आगे दिया पत्रकविशेष बनाया है -

- १) २० राजा, बार्हद्रय वंशके, = १००० वर्ष = ई. स. पूर्व (अंदाजन) ३१०१ से २१०० तक
- २) ८ राजा, प्रथ्योत, = १३८ वर्ष = ई. स. पूर्व (अंदाजन) २१०० से १९६२ तक
- ३) १० राजा, शिशुनाग, = ३६० वर्ष = ई. स. पूर्व (अंदाजन) १९६२ से १६०२ तक
- ४) १ राजा, नंद, = १०० वर्ष = ई. स. पूर्व (अंदाजन) १६०२ से १५०२ तक

और वे लिखते हैं, 'इस नंद राजा की चाणक्य नामक बहुत चाणाक्ष एवं प्रतिशोध भावना से घिरे हुए ब्राह्मणने हत्या कर मौर्यवंशके चंद्रगुप्त को सिंहासन पर बिठानेके बारेमें बताया जाता है।' इसके उपरांत जोन्स और चार वंशोकी गिनती करते हैं -

(१) दस मौर्य राजा, १३७ वर्ष, ई.स.पूर्व १५०२ से १३६५ तक (२) इस शुंग राजा, ११२ वर्ष, ई.स.पूर्व १३६५ से १२४३ तक (३) चार कण्व राजा, ३४५ वर्ष, ई.स.पूर्व २२८३ से १०८ तक (४) बत्तीस आन्ध्र राजा, ४५६ वर्ष, ई.स. पूर्व १०८ से ४५२ तक।

इसप्रकार बृहद्रथसे आध्रान्त तक कुलमिलाकर २६४८ वर्ष पूरे होते हैं। जोन्स अनुमान लगाते हैं - "After the death of Chandrabij, the last Andhra King, which happened according to the Hindus 369 years before Vikramaditya or in 452 B.C., we hear no more of Magadha as an independent Kingdom" ("अंतिम आन्ध्र राजा चन्द्रबीजकी मृत्यु हिंदु धारणा के अनुसार विक्रमादित्य ३६९ वर्ष पूर्व याने ई.स. पूर्व ४५२ में होने के बाद स्वतंत्र राज्य के रूप में मगध के नामकी कोई जानकारी मिलती।")

परंतु चार कण्व राजाओं का काल ३४५ वर्ष और एक नंदका सौ वर्ष का नहीं हो सकता, यह कारण बताते हुए जोन्स इस गणनाको अस्वीकार करते हैं। वस्तुतः पुराणों में चार कण्वोंका काल ८५ वर्ष बताया है, सौ वर्षों में एक नहीं बल्कि नौ नंद राजाओं के बारेमें लिखा है। फिरभी वह ध्यान में न रखते हुए जोन्सने एक अलग रूप में कालगणना बनाई। चीनी लेखकोंने बुद्धका ई.स.पूर्व १०२७ नियुक्त काल (जो विवाद्य है) जोन्स ने ग्राह्य माना, और कलियुग बुद्ध से पहले १००२ वर्ष से शुरू हो चुका था (१०२७ + १००२)। कहींसे मिली हुई जानकारी के सहारे कलियुगारंभ ई.स. पूर्व २०३९ ' बताया। उसके उपरांत बार्हद्रथ के एक हजार वर्ष मानते हुए आंध्रका अंत (ई.स. पूर्व ४५२ की जगह) ई.स. ६१९ में माना जाता है। पर इससे भारतीय इतिहासकी अभी अभी की गई कालगणनामें पुरी गड़बड़ हो जाती है, इस बातपर ध्यान देते हुए उन्होंने (पुराणकारों को दोषी मानकर) अलेक्झांडरके समकालीन सैंड्राकोट्टस अर्थात् वही चंद्रगुप्त मौर्य ऐसा प्रतिपादन किया, और उसके लिए 'चन्द्र राज्याभिषेक' नामक नाटक का आधार दिया। वास्तविक कलियुग बुद्धसे पूर्व १००२ वर्षों से शुरू हुआ था, इस आधारपर बुद्धवर्ष ३१०२ - १००२ = २१०० हैं।

विलफोर्डने इस मतको आगे बढ़ाते हुए कहा कि, उसे अनंतकृत 'मुद्राराक्षस' नाटकका (जिसका 'चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक' एक हिस्सा है।) आधार, मिलता है। परंतु उस नाटकका कर्ता विशाखादत्त है; और विलसन कहते हैं कि विलफोर्डने ठीकसे नाटक देखा भी नहीं होगा, क्योंकि उसमें आनेवाले कहकर जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं वे उसमें नहीं हैं। चंद्र राज्याभिषेक किसी भी नाटक का नाम नहीं है। ऐसे गड़बड़ घोटाले को पाश्चिमात्योंने 'सत्याधिष्ठित ऐतिहासिक संशोधन' के रूप में स्वीकार किया है।

इसके बाद मैक्समुल्लरने (ई.स. १८५९ में) स्पष्ट रूपसे कहा है कि, ग्रीक लेखक बताते हैं वह सैंड्राकोट्टस भारतीयोंके पुराणोंमें आनेवाला चंद्रगुप्त मौर्य हैं। पर यह मत कुलमिलाकर हिंदू, जैन और बौद्ध

मतोंसे पूर्णतः भिन्न है, इस बातका उन्हें एहसास था। पर वे कहते हैं कि, भारतीय इतिहासका ग्रीक इतिहासके साथ संबंध जोड़नेपर और भारतीय कालगणनाको उचित मर्यादा में ढालने का यह एक मार्ग है। उसके इस कहने में ही पश्चिमात्य विद्वानों का आंतरिक उद्देश दिखाई देता है। वे सब धर्माभिमान रखने वाले ख्रिश्चन थे और इ.स. १६६४ में आयरलैंड के आर्च बिशप उशर ने आदेश निकाला था, सृष्टीका आरंभ ई.स.पूर्व ४००४ में २३ अक्टूबर को सुबह ९ बजे हुआ, और इसके बारेमें जो कोई अलग बात करेगा उसे पाखंडी ठहराया जाएगा। तिलकजी भी कहते हैं कि, ख्रिश्चन धर्म के अनुसार सृष्टिकी निर्मिती ई.स.पूर्व अंदाजन ४००० में हुई। और ऐसी धारणा मनमें लेकर पाश्चिमात्य विद्वान प्राचीन विभारतीयों को ही दोषी मानते हैं। ए.ए. मॅकडोनेल ऐसे पाश्चिमात्य मतोंको संक्षेप में बताते हैं, "History is one point in Indian literature. It is in fact, non-existent.....They wrote no history because India never any.....Brahmins embraced the doctrine that action and existence was a positive evil and could, therefore, have felt but little inclination to chronicle historical events." ("भारतीय साहित्यमें इतिहासका बहुत ही कम स्थान है, वस्तुतः नहीं है..... उन्होंने इतिहास लिखा नहीं क्योंकि भारतने इतिहास रचा नहीं.ब्राह्मणोंने कर्माचरण और ऐहिकजीवन को निश्चितरूपमें पापस्वरूप माना, और इसलिए ऐतिहासिक घटनाओं का समाचार रखने की तरफ उनका झुकाव न हो सका।")

कुछ विद्वानोंने सम्राट अशोक के शिलालेखोंमें उल्लेख किए हुए 'अंतियोक योनूराज', 'अंति किन, 'मक' 'तुरमय' और 'अलिक सुडेल नामोंके साथ तुलना क्रमशः सीरियाके 'तृतीय अंतिओकस' मॅसिडोन के अंतिगोनस गोनातस, सीरिनके 'मग', ईजिप्टके टॉलेमी फिलाडेलफस, और एपिरसके 'अलेक्झांडर' राजा से करते हैं। सीरिन देश पूर्व दिशा में है। इस राजाका संबंध भारतके पाटलिपुत्र के सम्राट अशोक के साथ जोड़ा गया है। और इससे वे उस अशोकका और इसलिए उसके दादा चंद्रगुप्त का काल अनुमानित करना चाहते हैं। पर Fleet कहते हैं कि, चंद्रगुप्त के बारेमें हमने जो मूल कारण खोजा है उस बारेमें कुछ अधिक आधार नहीं मिलते। यह बेबुनियाद संशोधन है। इसे हमारे विद्वान प्रमाण मानते हैं। इस दुर्भाग्य को हम क्या नाम दें?

मॅकक्रिडल कहते हैं कि, स्कायलॅक्स आदि चार ग्रीक लेखकोंके भारत विषयक समाचार अलेक्झांडरके पूर्व कालके हैं, वे भारत में नहीं आए थे, और उन्होंने किस आधारपर यह लिखा इस बारेमें कोई जानकारी नहीं है। और तो और मूल लेख भी मौजूद नहीं हैं। मेगॅस्थनीस आदि तीन ग्रीक वकील भारतमें राजदूत बनकर आए थे। पर उनके समाचारोंमेंसे भी बहुत कम अंश ही उपलब्ध हैं। इस प्रकार केवल आज अनुपलब्ध लेखोंमेंसे दुसरोके पिछेसे आए हुए कुछ उदाहरण, और उपलब्ध मूल समाचारका कुछ अंश, इतनाही भारतविषयक ग्रीक साहित्य का स्वरूप है।

स्मिथ, हर मगध राजवंश के लिए, जिसमें उसका कमसे कम शासन समय दिखाया होगा, उसी पुराणका आधार लेते हैं। जैसे, अधिकतर पुराण नंदवंशका काल सौ सालोंतक का बताते हैं। पर एक पुराण के पाठ में ४५ वर्ष दिए हैं, और स्मिथ उसे स्वीकारते हैं। अगली तालिकासे मगध राजवंश के कालका ऐसा फर्क दिखाई।

वंश	आधिकतर पुराणों के नुसार वर्ष	कचित पाठ के अनुसार वर्ष
नंद	१००	४५
मौर्य	३१६	१३७
शुंग	३००	११२
कण्व	८५	४५
आन्ध्र	५०६	२८९
गुप्त	२४५	१४९
कुल मिलाकर	१५५२	७७७

अपवादात्मक पाठमेंसे कम वर्षोंको स्वीकारना यह पूर्वग्रहदोषपूर्ण इतिहासलेखों द्वारा हमारी ऐतिहासिक कालगणनामें किया गया अनधिकृत हस्तक्षेप है। न्या. तेलंगजीने आवेशपूर्वक कहा कि, आजकल युरोपीय विद्वानों में हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य को अधिक से अधिक आधुनिक बताने की तरफ झुकाव बढ़ रहा है। मैक्समुलर प्रप्रखेदके अनुवाद से जोड़े हुए प्रस्तावना में (P. XXXIX) खुले आम कहते हैं कि ऋग्वेद के मंत्रों का काल जितना माना जाता है उससे अधिक आधुनिक दिखाने पर उन्हें संतुष्टी मिलेगी। इसपर न्या. तेलंगजी ने आक्षेप उठाकर कहा है, पाश्चिमात्यों की यह सोच अवैज्ञानिक है और यह विद्वान अपने चाह के मुताबिक सपने देखते हैं, और उन्हें सच्चा मानकर अपना इतिहास लिखते हैं, सभी संस्कृत साहित्यको आधुनिक काल प्रदान करना चाहते हैं।

न्यायमूर्ति तेलंग उचित समारोप करते हैं, "Not only are hypotheses formed on the weakest possible collection of facts, but upon such hypotheses further

superstructures of speculation are raised. And when that is done, the essential weakness of the case is often effectually kept out of view. By such methods the whole of Sanskrit literature, or nearly the whole of it, is being shown to be much more recent than it has hitherto been thought." (अत्यंत दुर्बल गृहितकोंको इकट्ठा कर अनुमान लगाया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि उन अनुमानों पर दलीलोंकी इमारत खड़ी की जाती है और यह सब करने के बाद सभी विवेचनोंका मूल उथलापन प्रायः पुरी तरहसे आवृत्त किया जाता है। इसप्रकार सब, अथवा लगभग सभी, संस्कृत साहित्य आजतक स्वीकृत किए हुए कालसेभी बहुत अधिक आधुनिक समय पर रचा गया यह प्रस्तुत किया जाता है।") सुविख्यात विद्वान डॉ. रा.गो.भांडारकर भी पाश्चिमात्य विद्वानोंकी, जो सब हिंदु उन सबको आधुनिक कालका दिखानेवाली धारणा का निषेध करते हैं।

परंतु दुर्भाग्यवश यह सब टीकाएँ बेकारका काम साबित हुई हैं, और पाश्चिमात्य ही नहीं बल्कि बहुत आधुनिक भारतीय विद्वान भी मैक्समुल्लरके विधानों को प्रमाणभूत सिद्धान्त समझने लगे। प्राचीन भारतीय संस्कृती पर प्रथम ग्रंथरचना करने का श्रेय जिन्हें दिया जाता है, वे रमेशचन्द्र दत्त स्वीकारते हैं कि, उन्होंने मूल संस्कृत ग्रंथ न देखते हुए प्रायः उनपर उपलब्ध होने वाले भाषांतर और विवेचनों पर निर्भर होके लिखा है। रमेशचंद्र दत्त के समान विद्वान ऐसा कहते हैं, तो अन्य लेखकोंसे क्या उमीद रखी जा सकती है।

यह प्राच्यविद्याविशद हमारे पुराणों में आनेवाले ऐतिहासिक समाचारों को इस बजह से अस्वीकृत करते हैं कि, उन्हें प्रबल करने के लिए उत्कीर्ण लेख, सिक्के, स्मारक आदि बाहरी प्रमाण नहीं मिलता। पर वे खुद ऐसा कोई भी प्रमाण न होते हुए चंद्रगुप्त मौर्यको अलेक्झांडरका समकालीन मानते हैं। स्मिथ स्वीकारते हैं कि, चंद्रगुप्त अथवा उसके पुत्र के समर्थक कोई निश्चित स्मारक उपलब्ध नहीं है, और ग्रीक लेखकोंके कथनके उत्खनन आदिद्वारा प्रबल करनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण पुरातत्त्ववेत्ता प्रस्तुत न कर सके।

संस्कृत साहित्य पाश्चिमात्यों को उपलब्ध करवाने के लिए मैक्समुल्लरकी प्रशंसा की जाती है, उसका मूल उद्देश्य क्या था ? एक पत्र में वे लिखते हैं कि.. उन्होंने किए हुए भाषांतर द्वारा भारतीय अपने वैदिक धर्म का स्वरूप जान जाएंगे, और पिछले तीन हजार वर्षों में वेदों के आधारपर जो कुछ निर्माण हुआ है, वह सब बिखर जाएगा। एक अन्य पत्र में वे सुझाव देते हैं कि, प्राचीन भारतीय धर्म नष्टप्राय हुआ है और उसका स्थान ख्रिश्चन धर्मको लेना चाहिए। वे स्पष्टतासे कहते हैं कि, हिंदुस्थान एकबार जिता गया है, फिरभी उसे पुनः जितना पड़ेगा- इस बार शिक्षाद्वारा। और आशा प्रकट करते हैं, "If our plans are followed there will not be a single idolator among the respectable classes in Bengal in twenty years." "अपनी योजनाएँ अमलमें लाई जाए तो बीस वर्षोंतक बंगाल के प्रतिष्ठित वर्ग में एक भी मूर्तिपूजक नहीं बच

पाएगा।" और उनकी आशा सफल होनेके लक्ष दिखाई देने लगे! श्रेष्ठ देशभक्त और ब्राह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन रायने संस्कृतभाषा और उसमें निहित ज्ञान के बारेमे तुच्छतापूर्वक बाते की, और पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने कहा कि वेदान्त और सांख्य निःसंदेह असत्य मरे दर्शन है।

पाश्चिमात्योंने भारतीय इतिहास और संस्कृती के बारेमें कैसी कैसी गलफेमियाँ फैला के रखी है, यह इस सब बातोंसे स्पष्ट है। उन सबको हटाकर अपना इतिहास वास्तव रूपमें प्रकाशित करना यह स्वतंत्र भारत के विद्वानों का कर्तव्य है।

१.४ पुराण - महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत:

भारतीय कालगणना निश्चित करने के लिए पुराण महत्त्वपूर्ण आधार है। कॅनडाके टोरांटो विश्वविद्यालयके आर मार्टिन स्मिथने हिंदुस्तान के प्राचीन कालगणनाको अच्छी तरह से प्रकाशित किया है। वे पुराणों के बारे में लिखते हैं, "There is one independent authority for the period, the PURANAS, which itself bears witness to the changing atmosphere. The evidence has been received with APRIORI scepticism, partly because it tells of the distant past and partly because it appeared to disagree with the Buddhist accounts.....If the trend of recent work on our own dark ages, or on the Greek and Roman, has been to rehabilitate tradition it is quite wrong to refuse that benefit to the Indian. To say that they told nothing but lies is to make high demands on credulity. APRIORI case for belief for the PURANAS has more rational support than that for scepticism. It is said that work on the Purana is valueless because it cannot be checked. There is at least the test of consistency to check it.") ("इस काल के लिए पुराण एक स्वतंत्र प्रमाण मौजूद है, उससे उस समय के परिवर्तनशील स्थितीकी जानकारी मिलती है। उनका पुराने अतीतसे संबंध होने पर और बौद्ध साहित्यसे विरोध होने पर इस प्रमाण की और पूर्वग्रहजन्य संदेह से देखा गया.... अगर अपने, अथवा ग्रीक और रोमन इतिहास के अंधकारमय कालपर अभी हुए विवेचन का उद्देश्य परंपरा को पुनःस्थापित करना यही होगा, तो भारतीयों के लिए उस लाभको नकार देना अनुचित है। उन्होंने केवल असत्य लिख रखा ऐसा कहने पर विश्वास करना कठिन है, शुरुवातसे ही संदेह करने से, पुराणोंपर विश्वास कर चलना अधिक उचित है। पौराणिक विवेचन के सत्यता की जाँच करना संभव नहीं है, इसलिए

उसपर विश्वास करना या विवेचन देना व्यर्थ है, ऐसा कहा जाता है। पर उसे परखने के लिए पुराणों में कमसे कम तालमेल हो, इस बातसे परीक्षा की जा सकती है -।”)

भारतीय धारणा के अनुसार पुराण भारत का योद्धा अर्जुन के दादा, वेदोंका संकलन करने वाले कृष्ण द्वैपायन व्यास ने रचे। उस युद्धका समय अब ई. स. पूर्व ३९३९- ३८ निश्चित किया है। अर्थात् पुराणोंकी मूल रचना उतनी ही प्राचीन दिखाई देती है। भारतवर्षमें इन पुराणों का कथन-पठन आजतक चलता है। इसमें बाद में आए लेखकोंने समय समयपर ऐतिहासिक और अन्य बाते डाली, और पुराणों के आज उपलब्ध होनेवाले पाठ वेदव्यास के मूल पाठ नहीं है, यही सत्य है। परंतु उसमें वर्णित घटनाएँ विमुक्त परंपरा से हम तक पहुँची है, उनका बड़े दिलसे स्वीकार करना चाहिए। यह परंपराकी कसौटी बौद्ध साहित्य के लिए नहीं लगाई जा सकती। वह आपस में विसंगति पूर्ण होने से उसपर भरौसा करना कठिन है, ऐसा अभ्यासकों का मत है। इससे विपरित पुराणों में अंग्रेज विज्ञान पारगितरने सुसंगती पूर्ण राजावली और उनका उपलब्ध इतिहास लिखा है। भारतमें भी ऐसा प्रयास के.पी. जयस्वाल प्रभृतीयों ने किया है।

सुमेरियन इतिहासकारोंनेभी वहाँ के 'ईसिन' सूचीयोंमें मनः पूत और अद्भुत कालनिर्देश देने पर भी, उन सूचीयोंको मेसोपोटेमियाके इतिहासके लिए एक अधिकृत प्रमाण माना है।

प्राचीन इतिहास के लिए आधारभूत अन्य प्रमाण न होने से परंपरा अथवा झूठी बातों का महत्त्व प्राप्त होता है, आद्य ग्रीक इतिहासकार हरेडोटसनेभी दंतकथाओंके सहारे अपना लेखन किया है, अगर लोककथाओं के आधारपर हरेडोटसका लिखा हुआ इतिहास प्रमाणित माना जाता है, तो हमारे पुराण, रामायण-महाभारतको क्यों स्वीकृती नहीं दी जा सकती ?

भारतीयों का स्पष्ट रूप में मानना है कि वेद अति प्राचीन होते हुए रामायण-महाभारत और पुराण भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण अधिकृत स्रोत हैं। पर मैक्समुल्लर आदि यो ने अपने मनसे ही ऋग्वेद का काल ई.स.पूर्व १२०० ठहराया। हमारे प्राचीन पूर्वजोंने “पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम्” ऐसा कहकर पुराणों को सभी विद्याओं में अग्रिम स्थान दिया।

संक्षेपमें, भारतीय इतिहास और संस्कृतिके लिए पुराण प्रमुख आधार हैं। और उनके खिलाफ निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होता, तबतक पुराण, रामायण, महाभारत और अन्य प्राचीन ऐतिहासिक स्वरूप की रचनाओं में मिलनेवाले वर्णनोंको विश्वासपात्र मानना पड़ेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए अब हम महाभारत युद्ध-वर्ष उत्कीर्ण लेख और अन्य पुराणों के आधारपर फिरसे निश्चित कर सकते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि भारतीय युद्ध के बारेमें उत्कीर्ण लेखभी मौजूद हैं।

उत्कीर्ण लेख और अन्य प्रमाण:

महाभारत युद्ध के बारेमें एकसौ बीस विद्वानोंके मतोंको टीकाओंमें दिखाई देता है कि, सात लोग वह साल ई-स.पूर्व १००० के बादका, और तिलक के साथ चालीस ई.स. पूर्व १५०० ई.स पूर्व १००० के बीच मानते हैं इनमेंसे बहुतसे लोग पाश्चिमात्य विद्वानोंके कथनानुसार चंद्रगुप्त मौर्य को अलेक्झांडरका समकालीन मानने के लिए यह प्रमुख कारण है। अंदाजन साँठ लेखक वह युद्ध ई. स. पूर्व ३००० के आसपास, और शेष पाँच उससे भी प्राचीन थाने ई.स. पूर्व ६२२८ और ई. स. पूर्व ५००० के बीच मानते हुए विभिन्न वर्षोंका सुझाव देते हैं। इससे यह प्रतीत होता है, अलेक्झांडर मौर्य समकालीनत्व छोड़कर महाभारतीय युद्धवर्ष ई.स. पूर्व ३००० के आसपास मानने में बहुतसे विद्वानोंका झुकाव है। इस समकालीनत्व की धारणा से पूरी भारतीय कालगणना तहसनहस हुई है।

वस्तुतः उस युद्धतक का भारतीय इतिहास विरल है, उसके बाद के चंद्रगुप्त मौर्य - अलेक्झांडर का इतिहास सिलसिलेवार है। इसलिए पुरा भारतीय इतिहासिक कालगणना महाभारत के युद्ध वर्षपर निर्भर करती है। विभिन्न पुराणों में दी गई राजवंशावली पुरी और प्रत्येक राजा के वर्ष संख्या सहित दी गई है, सभी पुराणों में समानता है। महाभारत महाकाव्य में यत्रतत्र असंगति दिखाई देती है, है पर वह ग्रंथ की खामीके कारण है, पाश्चिमात्य विद्वान कहते हैं उनकी बाद में किए गए उद्देशपूर्वक अनधिकृत हस्तक्षेपके कारण नहीं। पाश्चिमात्योंने इस असंगति को कुछ जादाही अवास्तव रूप प्रदान किया, और उस कारण इस महाकाव्य से लोगों का विश्वास उठने लगा। भारतीय इतिहास के लिए पुराण और रामायण-महाभारत को सोद्देश्य दूर करके अन्य साधनों पर पूरा जोर देने में जुट गए। और यह सब प्रयास भारतीय इतिहास प्राचीन नहीं हो सकता इंच सोचको किए गए। पर हरप्रसाद शास्त्रीजी के कहने के अनुसार, "In the eighties my European friends advised me not to touch the RAMAYANA, the MAHABHARATA and the PURANAS for the purpose of getting Indian History from them. They worked hard with the coins, Inscriptions, notices of foreign travelers, archaeology, sculpture, architecture, for extracting chronology and history from them.....But Mr. Pargiter and Mr. Jayaswal now produced a chronology from the PURANAS themselves, which agreed in the outlines prepared with so much toil of nearly 150 years by orientalists....They rescued the PURANAS from the disrepute in which they were placed and heightened the respect for them." (" अस्सी के दशक में मेरे युरोपियन मित्र मुझे बताते थे कि, भारत के इतिहास को जानने के लिए रामायण महाभारत, पुराणोंको छुना भी नहीं चाहिए। कालगणना और इतिहास की खोज करने के लिए सिक्के, उत्कीर्ण लेख, विदेश यात्रिकोंके समाचार,

पुरातत्त्वीय उत्खनन, खुदाई का काम, शिल्प, इन सबका सहारा लेते थे.....पर अब श्री, पार्गिटर और श्री जयस्वाल ने पुराणोंके आधारपर कालगणना तथ की है, वह प्राच्यविद्या विशारदों ने अंदाजन देडसौ सालोंकी मेहनतके बाद बनाई हुई सामान्य स्वरूपसे मिलती जुलती है..... उन्होंने पुराणों को बदनाम होने से बचाया, और अपने लिए सम्मान बढ़ाया। है। ?

इन पुराणों से राम, कृष्ण और शकारीय विक्रमादित्य जैसे महान मानवोंके बारेमें बहुतसी जानकारी मिलती है। पर, अन्य हर राजाके बारेमें सुयोग्य जानकारी नहीं मिलती। इसके लिए एहेम वजह पुराणकारोंका इतिहासकी ओर देखने का नजरियाँ हैं। वे स्पष्टता से लिखते हैं कि, मांधाता सागर आदि राजा हो गुजरे, इसमें संदेह नहीं है। पर, इस प्रत्येक राजाका जीवन समंदरके फेन की तरह क्षणमात्र है। वे जिन चिरंतन मूल्योंका अनुसरण करते आए, उस विषयकी और उससे निर्माण होने वाली धर्मसंकल्पना, तत्त्वज्ञान और संस्कृतीके बारेमें जानकारी देनेका हमारा प्रयास है। हर राजाके सभी विक्रम और कर्तृत्वके बारेमें उस दरबारके सूतोंने सात्विकतासे लिख रखा है। दुर्भाग्यवश नालंदा, तक्षशीला और कैरोके ग्रंथालयोंको मुसलमानोंने जलाया और उनके राजघरानोंके इतिहासभी उनके आक्रमण की वजहसे नष्ट होने से वे मौजूद नहीं है।

हम महाभारतीय युद्धवर्ष ई. स. पूर्व ३१३९ माननेके लिए कलियुगारंभ, हिंदू दैनिक 'संकल्प' और पौराणिक समाचारोंके आधारपर ई. स. पूर्व ३१०२ मानते हैं। इस कलियुगारंभके वर्षकी प्रबल करने हेतु और एक प्रमाण देखते हैं।

प्रसिद्ध फ्रेंच अवकाश शास्त्रज्ञ Bailey "The Hindu systems of astronomy are by far the oldest, and from them the Egyptians, Greeks, Romans and even the Jews derived their knowledge." लिखते हैं, " ('हिंदू ज्योतिष पद्धति सबसे प्राचीन है और उसके ईजिप्शियन, ग्रीक, रोमन लोगोंने 'और यहूदी लोगोंनेभी ज्ञान ग्रहण किया है।) Count Bijom अपने the theogony of Hindu ग्रंथ में कहते हैं, "According to the astronomical calculations of the Hindus, the present period of the World Kali Yuga, commenced 3102 years before the birth of Christ on 20th February, at 2 hours 27 minutes and 30 seconds, the time thus calculated to minutes and seconds. They say that conjunction of the planets there took place and their tables show the conjunction. Bailey also stated that Jupiter and Mercury were in the same degree of the ecliptic, Mars at a distance of only eight and Saturn or seven degrees. The calculation of the Brahmins is so exactly confirmed by our own historical 'Takes' (data) that nothing but an actual

observation could have given so correspondent a result..... The Indian tables give the same annual variation of the moon as that discovered by Tycho Brahe, a variation unknown to the school of Alexandria and also the Arabs who followed the calculation of the school.” (" हिंदुओंकी ज्योतिषीय गणनाके अनुसार मानवके कलियुगका आरंभ क्रिस्तजन्मसे पूर्व 3१०२ वर्षके बीस फरवरीको दो बजकर २७ मिनट और 30 सेकंदों पर हुआ, उन्होंने यह समथ मिनट-सेकंदों तक निकाला। उनके मुताबिक तब युति हुई और उनकी गणना यह सुति दिखाती है। बेलि कहते हैं कि, गुरु और बुध उस समय एक सतरपर ही थे, और मंगल केवल आँठ और शनि साँत अंशकी दूरी पर होता है। ब्राह्मणोंके (हिंदुओंके इस गणनाके साथ अपने ऐतिहासिक प्रमाण बिलकूल मेल खाते हैं, प्रत्यक्ष निरीक्षणके बिना इतना सही निष्कर्ष निकालना संभव नहीं हो सकता, भारतीय ज्योतिष - गणितमें चंद्रमाकी वही वार्षिक गति दिखाई है, जो टायको ब्राहेने खोज निकाली और अलेक्झांड्रियाके विद्वान एवं उनकी नकल करनेवाले अरबीयोंको ज्ञात नहीं थी।")

मेगॅस्थनीस जिस मगध राजाके दरबारमें राजदूत थे उसे हमने (गुप्तवंशीय) प्रथम चंद्रगुप्तका पुत्र समुद्रगुप्त माना है। मेगॅस्थनीस भारतवर्षमें ई.स. पूर्व ३०२ के उन्होंने 'इंडिका' नामक पुस्तक लिखा, पर वह मौजूद नहीं है; ३०२ के आसपास थे, परंतु बादमें आनेवाले ग्रीक इतिहासकारों ने दिए हुए कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। उससे जानकारी मिलती है कि, 'हेरॅक्लीस' से सेंट्राकोट्रस के बीच १३८ राजा हो गुजरे थे। यह 'हेरॅक्लीस' अर्थात् महाभारतका 'हरिकृष्ण' है ऐसा विद्वानों का मत है। इनमेंसे प्रत्येक पियों के लिए बीस वर्ष मानते हुए श्रीकृष्णका काल ई.स.पूर्व ३०८० ($93८ \times 20 = २७६० +$ समुद्रगुप्त का वर्ष ३२०) साबित होता है। यह बिलकुल स्थूल स्वरूपका गणित है। परंतु वह परंपराके अनुसार श्रीकृष्णके समधुसे पुरी तरहसे मेल खाता है। परंपराके अनुसार श्रीकृष्णका जीवन १२५ वर्ष था, और ई.स. पूर्व ३९०२ में कलियुगकी शुरुवातमें उन्होंने इहलोक का त्याग किया। इसके अनुसार उनका जन्मवर्ष इस पूर्व ३२२७ हो जाता है। इसप्रकार ई.स. पूर्व ३०२ में मेगॅस्थनीसके लिखनेके अनुसार कलियुगारंभ ई.स. ३९०२ में हुआ यह साबित हो जाता है।

मेगॅस्थेनिसका लिखा सभी विश्वासपात्र है ऐसी बात नहीं है। 'हेरेक्लीस' केवल 'कृष्ण' अथवा "हरिकृष्ण" का अपभ्रंश नहीं है। वह ग्रीक पुराणोंमें आनेवाली एक व्यक्तिरेखा है, मेगॅस्थनीस शायद भारतीय पुराणोंमें आनेवाले किसी व्यक्तिके साथ उसकी तुलना करते होंगे। वे लिखते हैं कि भारतीय हेरॅक्लीसने अपनीही सात सालकी बेटी के साथ शादी की, और राज्य को वारस देने के लिए प्यार से उसे प्रौढत्व प्रदान कर उससे संतति निर्माण की। ग्रीक लेखकोंको भी यह समाचारसे घृणि आती है। मेगॅस्थनीस की लिखावत में, ऐसी अतिशयित मनोरंजनपूर्ण और झूठे विधानोंको स्थान दिया गया है।

परंतु यहाँ मेगॅस्थनीसका संदर्भ केवल यह दर्शाने हेतु किया है कि, उनके समय पर भी (अंदाजन ई.स. पूर्व उत्तर में) महाभारतके कृष्णके बारे में ज्ञात था, और कृष्णका काल ई.स. पूर्व अंदाजन ३१०० था। इस वर्षका समर्थन करनेवाला एक उत्कीर्ण लेखभी उपलब्ध है। कर्नाटक के ऐहोल गाँवमें यह लेख प्राप्त हुआ,

त्रिशंत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः

सहाब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पंचसु

पंचाशत्सु कलौ काले शत्सु पंचशतासु च

समासु समतीतासु शकानापि भूभुजाम्

"महाभारतीय युद्धके बाद ३२३६ (३०+३०००+९००+९+९००+४) वर्ष बीत चुके हैं, शक राजासे ५५६ (५० +६+ ५००) वर्ष बीत चुके हैं, यह गणना कलियुगके अनुसार हैं।"

ऐसा प्रतीत होता है कि, यह गणना कलियुग ई.स. पूर्व ३९०९ में शुरू हुआ, इस धारणापर आधारित है। यह साधारण धारणा है, और ई.स. पूर्व ३७०३ (फरवरी २०) सूक्ष्म समयको प्रत्यक्षमें शायद नजर अंदाज कर दिया गया। कलियुगके उह वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध हुआ। इसलिए यह कवी ई.स.पूर्व ३९३० (३९०९+३ शुद्ध वर्ष मानते हैं। परंतु युद्धसे कुलमिलाकर कलिवर्ष ३२३६ गिननेकी वजहसे उत्कीर्ण लेखोंका वर्ष ई.स. ९९ (३२३६- ३१३७) आता है। इसलिए इसमें उल्लेख किया हुआ 'शकवर्ष' ई.स. पूर्व ४५७ (५५६-९९ बन जाएगा। अरबके यात्री अल्बेरुनीके अनुसार उज्जैनके राजा हर्षने शकराजापर विजय प्राप्त कर यह शकका आरंभ किया था। अल्बेरुनी लिखते हैं कि, "यह हर्ष शक मथुरा और कनोज प्रदेशमें प्रचलित है, श्रीहर्ष और विक्रमादित्यके बीच चारसौ वर्षका अंतर होनेकी बात उस प्रदेशवासियोंने उन्हें बताई। विक्रमादित्य शक ई.स. पूर्व ५७ में शुरू हुआ, इसलिए

वह श्री हर्षशक ई.स. पूर्व ४५७ (४०० + ५७) में शुरू हुआ।

परंतु (अल्बेकनीपर विश्वास न रखते हुए बृहत्तर कहते हैं कि, वह हर्ष अर्थात् बाणभट्टके 'हर्षचरित' काव्य का नायक, जिकी चीनी यात्री ह्यू एन चांग हर्षवर्धन अथवा शिलादित्य कहते हैं, वह होना चाहिए। पर

उस हर्षवर्धनने शक शुरू किया था ऐसा संदर्भ कहीं पर भी नहीं मिलता। प्लीट भी (उज्जैन के हर्ष को अस्वीकार कर) उन लेखोंमें 'सहाब्द' की जगह 'सप्ताब्द' और 'शतेषु' के स्थानपर 'गतेषु' रखते हुए कुलमिलाकर वर्ष ३२३६ के स्थान पर ३७३५ की गिनती करते हैं, और उस आधारपर ई-स ६३४ (३७३५ - कलियुग वर्ष ३९०९) उन लेखका और बदामी के विक्रमी चालुक्य राजा पुलकेशिन 'द्वितीय का समय तय करते हैं। इस गणना के अनुसार शिलालेखोंमें उल्लेखित शक ई.स. ७८ में (६३४ - ५५६) आरंभ होने वाला शालिवाहन शक है।

लेखके मूल पाठके अनुसार लेखका वर्ष उपर बतानेके मुताबिक ई.स ९९ बनता है और यह सिद्ध हो जाता है कि ई.स. ९९ के दरमियाँ महाभारत युद्ध ई.स. पूर्व ३१३७ के आसपासका माना जाता था। ई.स. ९९ हो अथवा ६३४ हो दोनों गणना के अनुसार कलियुग ख्रिस्तपूर्व ५९०९ में शुरू हुआ, इस विधानको कोई हानी नहीं पहुँचती ।

प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्रज्ञ वराहमिहिर ईसा पूर्व ५७ में संवत् शुरू करनेवाले शकारीय विक्रमादित्यके दरबारमें थे। अपने 'बृहत्संहिता' ग्रंथमें बृद्धगर्गके आधारपर वे लिखते हैं -

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपती

पद्मिक पंचद्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च ॥ १३-३

“राजा युधिष्ठिर जब पृथ्वी पर राज्य कर रहा था, त्व सप्तर्षि मघा नक्षत्रमें थे, और उस राजाके शककाल + २५२६ " वर्ष बीत चुके थे। "

परंतु डॉ. काणे इस द्वितीय पंक्ति का अर्थ ऐसा बताते हैं, 'और उस राजाका काल शककाल + २५३६ वर्ष इतना है। पर फिर यह कौनसा शक है? वह 'शक' युधिष्ठिरके राज्य कालमें ई.स. पूर्व ३०७६ में आरंभ हुआ (और काश्मिर में आजभी प्रचलित) 'सप्तर्षि शक' अथवा 'लौकिकाब्द शक' कहने से उसके २५२६ वर्ष बित गए ऐसा इस विधान का अर्थ होगा- बृद्धगर्गने वह विधान ई.स. पूर्व ५५० (३०३७ - २५२६) में किया था। काणे वह शक ई.स. ७८ में प्रारंभ हुआ शालिवाहन शक मानते हैं । और उसके अनुसार युधिष्ठिरका काल ई.स.पूर्व २४४८ (२५२६-७८) हो जाएगा।

कल्हण राजतेर गिणीमें कहते हैं "

शतेषु पसु सार्धेषु व्याधिकेषु च भूतले

कलेगतेषु वर्षाणाम् भवत् कुरुपाण्डवः ॥ १-५१

"इस धरती पर कलियुग के ६५३ वर्ष बितनेपर कुरुपाण्डव युद्ध हुआ। मजे की बात यह है कि, कल्हण कलियुग का आरंभ ई.स.पूर्व ३९०९ में मानते हैं। पर वराह मिहिरका उपर दिया गया वचन आधार भूत मानकर वे महाभारत का युद्धवर्ष ई.स.पूर्व २४४८ मानते हैं। यह खुले आम गलत है। वस्तुतः उपर का श्लोक उसके आगे दिए हुए श्लोकसे असंगत है

कक्षात् ऋक्षं शतेनाब्दैः यात्सु चित्रखंडिषु

तच्चारे संहिताकरैः एवं दत्तो अत्र निर्णयः ॥ १-५५ ॥ १-५५

एक नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें जाने का समय सौ साल है, यह जोतिषीय ग्रंथकारका विधान है, और उसे मैं प्रमाणमानता हूँ। "यह लिखनेके बाद कल्हण वराहमिहिरके बृहत्संहितासे वह श्लोक १३-३ उद्धृत करते हैं। वराहमिहिर जिसे मानते हैं वे वृद्धगर्ग कहते हैं कि, युधिष्ठिरके राज्य कालमें सप्तर्षि मधामे थे। "कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते "पितृदैवतम् (कलि और द्वापरके संधिकालमे सप्तर्षि "मघा नक्षत्रमें थे।") सभी पुराण कहते हैं कि, ई.स.पूर्व १३३९-३८ में युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके समय सप्तर्षि मधानक्षत्रमें थे। यह सब देखने पर ज्ञात होता है, कल्हणका मत भी वृद्धगर्गके समान ही होना चाहिए। इसप्रकार बृहत्संहिताके श्लोक १३-३ का उपर दिया हुआ अनुवाद ही सही है। 'राजतरंगिणी का श्लोक १-५१ प्रक्षिप्त प्रतीत होता है।

बुहलर खुद कहते हैं कि, सप्तर्षी संवत् ई.स.पूर्व ३९७६ में शुरू हुआ, और इसलिए वे आगे दिया हुआ श्लोक उद्धृत करते हैं,

कलेर्गतैः सायकनेत्रवर्षैः युधिष्ठिराद्यः त्रिदिवं प्रयाताः

लोके हि संवत्सरपत्रिकायां सप्तर्षिमानं प्रवदन्ति सन्तः॥

कलियुग के २५ वर्ष बितनेके बाद युधिष्ठिर स्वजनोंके साथ स्वर्गमें चला गया, काश्मिरी पंचांगमें इस संवत् का प्रयोग किया जाता है, और ज्योतिषपंडित इस वर्ष से सप्तर्षि संवत् गिनते हैं।"

यह अबाधित परंपरा निःसंदिग्धता से दर्शाती है कि, युधिष्ठिरादि पांडवोंने कलियुगके २५ वे साली, अर्थात् ई.स. ३०७६ (३१०१-२५), में इहलोकका त्याग किया।

वराहमिहिरका समय ई.स.पूर्व ५७ के आसपास का है, और वृद्धगर्गने युधिष्ठिरके समय सप्तर्षि मघा में स्थित थे, ऐसा ई.स.पूर्व ५५० के आसपास लिखा। अर्थात् उन दोनों को भी ई.स. ७८ में शुरू होनेवाला 'शक काल' ज्ञात होना असंभव है। इसलिए डॉ. काणे का उपर दिया हुआ अनुवाद व्यर्थ है।

सप्तर्षि एक नक्षत्रमें सौ वर्ष रहते हैं इस बारेमें कोई वाद नहीं है और यह सभी पुराणों में कहा गया है। विष्णु पुराण में कहा है।

तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्

ते तु पारीक्षिते काले मधास्वासन् द्विजोत्तम ॥५-२५-१०६

"सप्तर्षि एक नक्षत्रमें सौ मानवी वर्ष रहते हैं (अर्जुन का पोता) परिक्षितके समय वह मघा नक्षत्र में थे।" उसी पुराण में कहा है-

यावत्परीक्षितो जन्म यावत् नंदाभिषेचनम्

एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचशतोत्तरम् ॥४-२४- १०४

"परीक्षितके जन्मसे नंदाभिषेक तक १५०० वर्ष बित गए। महाभारतके अनुसार परीक्षित का जन्म महायुद्धके बाद जल्द ही (ई.स.पूर्व ३१३८ में) हुआ। इसलिए नंदाभिषेक का वर्ष ई.स. १६३८ (३१३८-१५००) है। और लगभग सौ साल बाद नंदके उद्दोदन के बाद अर्थात् इ.स.पूर्व लगभग १५३८ में चंद्रगुप्त मौर्य सिंहासन पर बैठे अर्थात् वह (ई.स. पूर्व ३२६ के) अलेक्झांडरका समकालीन होना असंभव है। अलेक्झांडरका समकालीन चंद्रगुप्त केवल गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त प्रथम (4. स. पूर्व 3२७ से ३२०) ही हो सकता है।

इसलिए महाभारत युद्ध ई. स. पूर्व ३१३९-३८ में हुआ यही कल्हणका प्रतिपादन होना चाहिए। पाश्चिमात्य विद्वान स्मिथभी कल्हणके 'राजतरंगिणी' के एक ऐतिहासिक ग्रंथके रूपमें प्रशंसा करते हैं। कल्हणने यह ग्रंथ इ.स. ११४८ में लिखा। जिसमें उन्होंने कहा है,

"दृष्टं दृष्टं नृपोदित बध्ना प्रमयमिपुषाम्

अविकाल भवैर्वार्ता यतप्रबन्धेषु पूर्यते

दाक्ष्यम् किंचिदिदं तस्मादयस्मिभूतार्थवर्णने

सर्व प्रकारां स्कलिते योजनाव ममोद्यमः"

'तत्कालीन पंडितोंने समकालीन राजाओंके चरित्र प्रत्यक्षदर्शी जानकारीके आधारपर लिखे हैं; बादमें आनेवाले लेखकोंने सुनीसुनाई जानकारी और अनौपचारिक संभाषण द्वारा एकसाथ और सिलसिले जोड़ दिए हैं पर उसमें पर्याप्त खबरदारी नहीं बरखी है। इसलिए मैंने उनकी गलतियाँ और असंगति दूर करने का प्रयास किया है। इसलिए कल्हणने, उन्हें उपलब्ध पूर्वक समाचार, दानपत्रिका, उत्कीर्ण लेख आदि का

निरीक्षण करनेके बाद यह इतिहास लिखा है। वे कहते हैं कि पुराने ऐतिहासिक ग्रंथ सिलसिलेवार थे, और सुव्रत नामक विद्वानने 'राजकथा' शीर्षकद्वारा उसका संक्षेप किया है। कल्हणने काश्मिरके इतिहासपर आधारित 'नीलमत पुराण' भी पढ़ा था। इससे भारतीयोंने इतिहास का कितना जतन किया था यह दिखाई देता है। परंतु इन ग्रंथोंमें से बहुत से ग्रंथ आज नष्ट हो चुके हैं।

कल्हणने पुरी तरहसे अध्ययन कर यह इतिहास लिखने पर भी बृहतीर (और विलसन आदि अन्य पाश्चिमात्य लेखक भी) इस ग्रंथकी महत्ता नकारते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि महाभारत युद्ध वे केवल एक पौराणिक कथा मानते हैं; और इसलिए वे राजवंशावलीको पिछेकी ओर लाते हुए उस युद्धतक याने युधिष्ठिरके हस्तिनापुरमें हुए राज्याभिषेकतक दिखाई जाती है, उस वंशावलीको वे अविश्वसनीय ठहराते हैं। और कल्हण वह युद्ध एक ऐतिहासिक सत्य मानते हैं। पर विलसन स्वीकारते हैं कि, "After the date of the Great War, the Visnu Purana, common with other Puranas, which contain similar lists, specifies kings and dynasties with greater precision, and offers political and chronological particulars, to which on the score of probability there is nothing to object. In truth, their general accuracy has been incontrovertibly established." (ऐसीही राजवंशावली बताने वाले अन्य पुराणोंके समान विष्णुपुराणमें महाभारत युद्धवर्षके बाद राजा और वंश सूक्ष्मता से बताए हैं, उसमें आनेवाले राजनैतिक और कालगणनात्मक सिलसिलेमें संभाव्यताके नजरियेसे कुछ भी आक्षेपार्ह नहीं है। वास्तवमें उनका पुरी तरहसे बराबर होना निर्विवादसे प्रस्थापित हुआ है।")

स्वयं मैक्समुल्लर कहते हैं, "During the last twenty years, however, I have had some excellent opportunities of watching a number of native scholars under circumstances where it is not difficult to detect a man's character, I mean in literary work, and more particularly in literary controversy.I feel bound to say that with hardly one exception they have displayed a far greater respect for truth, and a far more manly and generous spirit than we are accustomed to even in Europe and America.....There has been with few exceptions, no quibbling, no special pleading, no untruthfulness on their part....." (पिछले बीस सालों तक मुझे बहुत भारतीय विद्वानोंको देखने का अवसर प्राप्त हुआ कि, जब साहित्यके क्षेत्रमें और चर्चामें व्यक्तिके चरिका परीक्षण करना कठिन नहीं होता मैं यह कहनेके लिए मजबूर हूँ कि कभी कभी एकाद अपवाद को छोड़कर उन्होने, युरोप और अमेरिकामें आमतौर पर दिखाई देती है उससे अधिक सत्यके बारेमें निष्ठा और उदारता

दर्शाथी बहुत थोड़े अपवादों को हटाकर उन्होंने कभी टालमटोल हठीलापन या सत्थापलाप नहीं दिखाया।") परंतु मैक्समूलरको यह एहसास बड़ी देरसे हुआ; और पाश्चिमात्य विद्वानोंकी बड़ी गलतियाँ सुधारनेका कभी प्रयास नहीं किया।

अस्तु । अब हम एक ऐतिहासिक रचनाके तोरपर महाभारतकी विश्वसनीयता साबित करने वाले अन्य प्रमाणोंको देखते हैं।

परीक्षितपुत्र सम्राट जनमेजयके दानपत्रका एक लेख प्राप्त हुआ है और जिसमें कहा है,

"श्री कुरुवंशावतंस भी जनमेजय भूपालानां दानशासनपत्रं स्वस्ति श्री जयाभ्युदये युधिष्ठिर शके प्लवङगाख्यं एकोणवति वत्सर-"

"यह कुरूकुलोत्तम सम्राट जनमेजय का दानपत्र होते हुए सम्राटने जयाभ्युदय युधिष्ठिर एक के ८९ वे वर्ष प्लवंग नामक संवत्सरके अवसर पर यह भूमिदान किया है।" यह गणना कलियुग के प्रमाथि नामक प्रथम वर्षसे की जाने से यह वर्ष ई.स. पूर्व ३१०२ (३१०१-८९)) हो जाता है। यह दानपत्र 'मुनि वृंदारमठ' की तुंगभद्राके किनारे श्रीराम और सीताके पूजनार्थ बनवाया था। उसी साल दानपत्र उत्तर हिमाचलमें रहने वाले श्री केदार - नाथजी के पूजा हेतु उषा मठीके श्री गोस्वामी आनंदालिंग जंगमको दिया है और उन्होंने उस मठीमें आजतक उसे जतन किया है।

वेदव्यासने महाभारत लिखनेके लिए कलियुगके प्रथम वर्षसे आरंभ किया इसलिए उस साल प्रारंभ होता है वह जथाभ्युदय युधिष्ठिर शक है। इस महाकाव्यको प्राथ 'जय' नाम प्रदान किया था। वेदव्यास उसका प्रारंभ ऐसा करते हैं, "जयी नाम इतिहासोऽयम् (यह 'जय' नामक इतिहास है।)

परंतु पाश्चिमात्य विद्वान, इसमें आनेवाले प्रथम दानपत्रमें राजधानी का नाम 'किष्किंधा और द्वितीय में 'इन्द्रप्रस्थपुरम्' कहा है और पहलेमें बुधिष्ठिरको परदादा कहाँ है, बल्कि दुसरेमें उसका नाम नहीं दिया है, यह कारण बताकर, इन उत्कीर्ण लेखोंको बनावटी कहा है। परंतु अगर वह बनावट होता तो उसके (फ़र्जी) लेखकने ऐसी सामान्य भूल न की होती। जनमेजय पुरे भारतके सम्राट थे: और किष्किंधा दक्षिण दिशाके प्रांतकी राजधानी होगी। इसलिए प्रथम दानपत्रमें साँत तो दुसरेमें चार श्लोक है। दोनों दानपत्रोंकी शैली लगभग एकसमान ही है फिरभी ब्योरेमें छोटेमोटे बदलाव है। प्रथम दानपत्र का स्थान भारतवर्षके दक्षिणपश्चिम की ओर है, तो दूसरे का स्थान उत्तर की सीमामें है। इसलिए उन दोनोंमें यत्रतत्र शब्द में फर्क है।

इस दानपत्रके खिलाफ़ और एक आक्षेप यह है कि वे देवनागरी लिपिमें है, यह लिपि ई.स. पूर्व ३००० के समयपर प्रचलित नहीं थी। पर अब उपलब्ध होनेवाले मूल लेखोंकी यह नकल हो सकता है। मूलमजमूनमें

दान का जो स्वरूप था वैसे ही इसमें लिखा है। और इसमें कोई असत्यता हो ने की वजह नहीं है। इस दानपत्र का महत्त्व यह है कि यह सबसे पुराना उत्कीर्ण लेख उपलब्ध है और उसमें कलियुगारंभ और जनमेजय के परदादा युधिष्ठिर का संदर्भ दिया है और महाभारत युद्ध के बाद जल्द ही 'जय' नामक इतिहास लिखा गया यह भी दिखाई देता है।

कलियुगारंभके बारेमें प्रत्यक्ष महाभारतमें बहुतसे संदर्भ मिलते हैं। आदिपर्वमें कहा है (गीता प्रेस आवृत्ति)

अंतरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वारयोरभूत्

समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ २-१३

"द्वारपर और कलि के संधिसमयपर कुरुक्षेत्र पर कौरवपाण्डव सेनाके बीच युद्ध हुआ। वनपर्वमें हनुमान भीमसे कहता है, "एतद् कलियुगं नाम अचिरात् यत् प्रवर्तते" यह कलियुग है और जल्द ही आरंभ होगा।" और भीम ने गदायुद्धमें दुर्योधनको गिराकर उसे लाथ मार दी, तब क्रोधित बलरामको शांत करते हुए श्रीकृष्णने कहा, "प्राप्त कलियुग विद्धि" (शल्यपर्व ६०-२५) "कलियुग प्राप्त हो रहा है इस बात को ध्यान में लो"

अल बेरूनी लिखते हैं कि, ई.स. १०३१ में कलियुगारंभ होकर ४१३२ साल बित चुके थे। अर्थात् कलियुग ४१३२ - १०३१ = ३१०१ ई.स.पूर्व के साल शुरू हुआ। गुप्तवंशके समयके दानपत्रोंमें महाभारत युद्ध से आरंभ हुआ काल गिना जाता है। बुचानन उत्तर कन्नरासे बाजाबसी गाँवमें मधुकेश्वर मंदिरमें एक उत्कीर्ण लेखके बारेमें संदर्भ देते हैं, उसका वर्ष युधिष्ठिर शक १६८, अर्थात् ई.स. पूर्व २९०८ (३०७६-१६८) है।

ई. स. पूर्व ३०७६-१६८

कर्नाटकके बेलगाँवके उत्कीर्ण लेखोंवर युधिष्ठिरके राज्यकालका वर्ष दिया है।

महान गणितज्ञ और ज्योतिषवेत्ता आर्यभट्ट संवत् ५५६ अर्थात् इ.स. ४९९ (५५६-५७) के सालमें २३ वर्षके थे। वे कहते हैं, कलियुगारंभ ३६०० वर्षपूर्व अर्थात् संवत्पूर्वी ३०४४ (३६०० - ५५६) में हुआ था। वे भी कलियुगारंभ ई.स. पूर्व ३९०९ (३०४४+५७) में हुआ, ऐसा मानते हैं।

ऐसा आक्षेप लिया जाता है कि, आर्यभट्टसे पूर्व कलियुगवर्षका कहींभी संदर्भ नहीं है, आर्यभट्टने सर्वप्रथम गहरे अध्ययन के बाद कलियुगारंभ ई.स. पूर्व ३९०९ में होने का दावा किया। उपर देखते हुए यह

कहना सही नहीं है। क्योंकि उनसे पूर्व वृद्धगणने ई.स. पूर्व ५५० में उसका संदर्भ दिया था। और इसके अलावा, बृहलरने खोजे हुए क्रमांक उसके उत्कीर्ण लेख के नुसार नेपालके राजा अंशुवर्माका अभिषेकवर्ष कलियुग ३००० याने ई.स.पूर्व १०१ (३१०१ – ३०००) दिखाई देता है। उसमें कलियुगका आरंभ वर्ष नहीं दिया है ऐसा कोई कह सकता है। परंतु ई.स. पूर्व ३१०१ में कलियुगारंभ मानकर उस नेपाली राजवंशका अन्य सब सिलसिला सहीसे मेल खाता यह देखते हुए उस आक्षेपमें कोई मतलब नहीं है।

पर कलियुगारंभका वर्ष आर्यभट्टने प्रथमखोज निकाला, ऐसाभी कहा है, तो उसमें क्या गलत है? प्रचलित ख्रिश्चन सन भी ई.स. ८७९ से पूर्व प्रचलित नहीं था पर फिरभी उस सनके अनुसारकी गई वर्षगणनाको विद्वान पूरी तरह से विश्वसनीय मानते हैं।

अमेरिकन, पुरातत्त्ववेत्ताओं को 'गीता' में आनेवाला “**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृण्हाति नरोऽपराणि**” नामक श्लोक ईजिप्टके पिरॅमिडके उत्खननके बाद एक शिलापर कुरेदा हुआ नजर आया, उसका काल ई.स.पूर्व ३००० है।

महाभारतका युद्ध कुरुक्षेत्र पर चालीस लाखसे अधिक सेनाके बीच हुआ था। इस बातको जादा ही बढ़ा चढ़ाकर बताया है, ऐसा हो सकता है, किंतु वही अठरहवीं शताब्दीमें मराठा-अफगाण युद्धमें उभय पक्षी सेनाके पास लाखोंमें सैन्य था। महाभारतमें संदर्भ दिए हुए शहरोंके एवं यात्रास्थलोंके नाम आज भी वही है। केवल हिंदु नहीं, बल्कि बौद्ध और जैन परंपराभी महाभारतको इतिहास मानते हैं। चीनी यात्री ह्यूएन च्वांग ने कुरुक्षेत्रपुर हड्डियोंके बहुत अवशेष देखे। ग्रीक लेखक डि.खिसोस्टीम (ई.स. ५०) महाभारत का उल्लेख करते हैं (देखिये चि. वि. वैद्य 'महाभारतका उपसंहार')

संक्षेप में कहा जाए तो अलेक्झांडर - मौर्य समकालीनत्व छोड़कर महाभारत युद्ध ई.स. पूर्व ३१३९-३८ में हुआ, इस बारेमें विद्वानोंका बहुमत है। पर पाश्चिमात्य विद्वान महाभारत-युद्धको ऐतिहासिक घटना नहीं मानते थे। एन्.भास्कराचार्य लिखते हैं, "The writings of many of these orientalist are often characterized by an imperfect knowledge of Indian literature, philosophy and religion and of Hindu traditions and a contemptuous disregard for the opinions of Hindu writers and Pandits. Very often facts and dates are taken by these writers from the writings of their predecessors or contemporaries, on the assumptions that they are correct, without any further investigation by themselves. इनमेंसे बहुतसे प्राच्यविद्याविशारदोंका लेखन भारतीय साहित्य, दर्शनशास्त्र, धर्म और हिंदु परंपराके संबंधमें अधूरे "ज्ञानसे भरा हुआ, और हिंदु लेखन और विद्वानोंके बारेमें तिरस्कृत भावनापूर्ण होता है। बहुतबार तथ्य और कालगणना

विषयक जानकारी अपनेसे प्राचीन अथवा समकालीन लेखकों के विधान से वह सत्य है ऐसा "मानकर और स्वयं के बारे में कोई भी जाँचपड़ताल के बिना ग्रहण करते हैं।)

नेपाली राजवंशावली का प्रमाण:

नेपाल के ई.स. पूर्व ४१५९ से ई.स. १७६८ की राजवंशावली उपलब्ध है। श्री भगवानलाल इन्द्रजीने नेपाली राजवंश के समाचारों पर रोशनी डाली है। परंतु बुहलर उसमें से केवल उतना ही अंश विश्वसनीय मानना चाहते हैं, जिसे लेख सिक्के आदि द्वारा प्रबल किया जा सके। परंतु कभी कभी अन्य प्रमाण भी विश्वसनीय नहीं होते हैं, लेख में 'शक' (संवत्) का पुरा नाम नहीं होता, सिक्कों पर राजा की सिलसिलेवार जानकारी और राज्यकाल स्पष्ट नहीं मिल पाता। इसलिए केवल प्रबल प्रमाण न होने पर लिखित वंशावली को नकारना अनुचित है।

नेपाल वंशावली का आरंभ ई.स. पूर्व ४१५९ में शुरू हुआ ऐसा मानकर उसमें विविध वंश के भारतीय राजाओं के काल दिए हैं। प्राचीन भारतीय कालगणना के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण प्रमाण है। पर बुहलर काश्मीर कालगणना के समान नेपाली वंशावली को भी नकारते हैं। वे कौरव-पांडव-कथा केवल पौराणिक मानते हैं, और इसलिए जिन राजवंशावलीयों में पांडवी तक (के राजवंशावली, के) साथ संबंध दिखाई देता है उन्हें बुहलर अविश्वसनीय मानते हैं।

उस वंशावली को अस्वीकार करने हेतु बुहलर और कुछ कारण बताते हैं। उसमें उल्लेखित 'मातातीर्थ' नामक प्रथम वंश में आँत राजा हुए, उनके नाम और शासन वर्ष ऐसे दिए हैं- (१) भूक्त मंगल गुप्त, ८८ साल (२) उसका पुत्र-जयगुप्त, ७२ साल, (३) उसका पुत्र परम गुप्त-८० साल, (४) उसका पुत्र- हर्ष गुप्त, ९३ साल (५) उसका पुत्र भीमगुप्त, ३८ साल, (६) उसका पुत्र - मणि गुप्त, ३७ साल, (७) उसका पुत्र- विष्णुगुप्त, ४२ साल, (८) उसका पुत्र यक्ष गुप्त, ७२ साल: कुलमिलाकर ५२२ साल है। ऐसा दिखाई देता है कि, इस राजा का शासनकाल दीर्घ होते हुए उनके वारिस अर्थात् पुत्र उन्हें बड़ी उम्र में हुए होंगे। तथापि क्र. ४ और क्र. ५ के बीच और एक राजा हो सकता है, अथवा क्र. ४ का वर्ष बुहलर के कहने के मुताबिक ९३ न होते हुए ३३ होगा। येड़ वंशावलियाँ बहुत प्राचीन और सदियों से पुरानी (वैशावालीयाँ) देखकर लिखी होगी, जिसमें यत्रतत्र असंगति हो सकती है। पर उस वजह से पुरी वंशावली को नकारा नहीं जा सकता। तिसरे वंश का नाम 'किरात' (क्षत्रिय) है, उनके २९ राजाओं का कुलमिलाकर काल १११८ वर्ष (अर्थात् लगभग ३९ १/४ वर्ष) है। बुहलर की आयुर्मर्यादा आधुनिक भारतीय विमा कंपनी के अनुसार लगभग २६ वर्ष है, इस हास्यजनक वजह से दोनों वंश के राज्यवर्षों को नकारा जाता है, और 'किरात' वंश के केवल छहसौ, सातसौ वर्ष बताते हैं! आधुनिक आयुर्मर्यादा के सहारे वे पाँच हजार वर्ष पूर्व के आयुर्मर्यादा का पता लगाना चाहते हैं! और वस्तुतः आज भी (सन

१९९०) भारतीय विमान निगमके अनुसार खोजा हुआ आयुर्मान लगभग ६० वर्षोंका है। बृहलर का इन वंशावलीयोंमें हस्तक्षेप अत्यंत निषेधार्ह है।

इसके अलावा, दो हजार वर्षपूर्व कुछ भारतीयों का आयुर्मान १२०, २३० अथवा १५० व ८९ वर्ष है और कुछ लोग तो दो सौ वर्ष जिते थे, ऐसा ग्रीक लेखक कहते हैं। व्हिन्सेंट स्मिथ भी कहते हैं, "The inhabitants were believed to attain the age of hundred and thirty years" (Early History of India, p.100) आधुनिक भारतीय इतिहासमें भी कुरुक्षेत्रपर महंमद घोरी के खिलाफ पृथ्वीराजके पक्षमें लड़नेवाले राजा गंगा सिंह ९० सालके थे: और सन १४६८ में तालिकोटमें मुसलमानोंके खिलाफ लड़ाईमें शहीद हुए विजयनगरके राम राजा ९६ साल के थे। भारतीय और अन्य अनेक ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं। यह वर्ष सरकारीय अनुमान नहीं है। भारतीय कालगणनाके क्षेत्रमें बृहलर का और एक विचित्र तर्क देखिए। वंशावलीके अनुसार ठाकुर वंशके आद्य राजा अंशुवर्मा ई.स. पूर्व १०१ में गद्दीपें बैठा। किंतु बृहलर यह वर्ष ई.स. ६३७ मानते हैं, और इसलिए ह्युएन च्वांग का आगे दिया हुआ विधान उद्धृत किया जाता है, "Lately, there was a king called An-Shu-fa-ma who was distinguished for his learning and ingenuity. He himself has composed a work on sounds (Sabda-Vidya); his esteemed learning and respected virtue and his reputation was spread everywhere. ("आधुनिक कालमें विद्वत्ता और चातुर्य के लिए जाने माने "राजा अंशु-फा-मो नामक राजा होकर गए: उन्होंने शब्द विद्यावर ग्रंथ रचा है, श्रेष्ठ विद्वत्ता और सम्माननीय सच्चारित्र्यके लिए उसकी कीर्ति फैली हुई थी। ") इसपर बृहलर भाष्य करते हैं, Now it cannot be doubted that the king referred to by Hicun-Tsang is the prince of this name whom the Vamshavali places in Kali Yuga 3000 or 101 B.C. and whose inscriptions are dated Samvat 34, 39 and 45. For the Vamshavali and the inscription know of one Amshuvarman only. (ह्युएन त्संगने उल्लेख किया हुआ वह राजा निःसंदेह इसी नामके वह राजा है, जिसका काल वंशावलीमें कलियुगवर्ष ३००० अर्थात् ई.स.पूर्व १०१ बताया है और उस बारेमें उत्कीर्ण लेखों पर संवत् वर्ष ३४, ३९ और ४५ दिए हैं। क्योंकि वंशावली और वह उत्कीर्ण लेख दोनोंमें एक ही अंशुवर्मन ज्ञात होता है।") बृहलर और आगे कहते हैं कि, ह्युएन त्संगकी यात्रा उत्तर हिंदुस्थानसे ई.स. ६३७ से शुरू हुई। इसलिए अंशुवर्मनका कालभी इ. स. ६३७ होना चाहिए, और उनके अनुसार उस उत्कीर्ण लेखमें आनेवाले वर्णाक्षरभी उसी कालके हैं। और इससे बृहलर अनुमान लगाते हैं कि: वंशावलीके लेखकने उस राजाका काल सात सौ वर्षसे अधिक प्राचीन "दिखाया है। ऐसा कहना उपरि देखते हुए गलत है। ह्युएन त्संगने इ.स. ६३७ में वह उत्कीर्ण लेख देखा। इसका अर्थ

अंशुवर्माका कालभी ६३७ है, ऐसा मानना कितना हास्यजनक है यह सुझोंको कहने की कोई जरूरत नहीं है।

बुहलर यह इसलिए कहते हैं कि, किसी विक्रमादित्यने ई.स. पूर्व ५७ में नेपालकी यात्रा की थी। और वंशावली में कहे गए के अनुसार) उसने उस साल खुद के नामसे संवत आरंभ किया था, इस बातपर उन्हें भरोसा नहीं है। अंशुवर्मा के उत्कीर्ण लेख उसके राज्यकाल के ३४, ३९ और ४५ वर्ष के होते हुए वंशावलीके मुताबिक वह इ.स. पूर्व ३३ में गुजर चुके थे। उस उत्कीर्ण लेख में कलियुग शक ई.स. पूर्व ३१०१ में गिना है।

हुएन त्संग कहते हैं कि, यह राजा अंशुवर्मा जानेमाने वैयाकरणी होते हुए उनकी कीर्ति दूरतक फैली हुई थी। इससे यह प्रतीत होता है कि वह हुएन त्संगके कुछ शतक पूर्व का हो सकता है और हुएन त्संग का यह विधानभी सुनीसुनाई बातोंसे किया हुआ है, और उसमें भी उस राजाको स्पष्ट रूपमें समकालीन न कहते हुए, केवल 'आधुनिक कालमें' (Lately) ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ ऐसा हुआ कि, ई.स. ६३७ से पहले वह राजा ही गुजरा। वह (Lately) शब्द वस्तुतः formerly ऐसे अर्थ में भी हो सकता है। हुएन त्संगके मूलचीनी शब्द का Beal ने किया हुआ (Lately) यह अनुवाद (जो बुहलर उद्धृत करते हैं) गलत हो सकता है। केवल इस नजरियेसे सोचनेपर ही तीन उत्कीर्ण लेख जिसका समर्थन करते हैं वे सब वंशावलीसे संबद्ध विधान ठीकसे स्पष्ट किए जा सकते हैं। और वंशावलीके कर्ता विक्रम संवतके ३४, ३९ और ४५ वर्ष उपयोजित किए हैं यह बुहलर का कहना भी गलत है। भारतमें प्राचीन कालसे परंपरा है कि राजदरबारमें कवी प्रत्येक आश्रयदाता राजाओं का समाचार करते थे। इसलिए वे ३८, ३९ और १५ अंक स्वयं अंशुवर्मोंके राज्यकालके हो सकते हैं।

इसके अलावा, विदेशी यात्रियोंने बहुतेसे विधान सुनीसुनाई और अनुमानोंके आधारपर होनेसे वे गलत या अशुद्ध होना संभव है। कनिंगहॅम कहते हैं कि, हुएन त्संगके समाच में कुछ हिस्सा अधूरा और गलत है।

इसप्रकार प्राचीन ग्रीक राजदूत मेगस्थनीसके कुछ विधान अवास्तव और हास्यजनक माने गए हैं। और श्री. के. वेंकटाचलम कहते हैं कि, अलुबेरूनी के भारतवर्षपर ग्रंथ का अनुवाद करते वक्त डॉ. सौचाने उनके मूल नाम भास्कराचार्य और महादेव से बदलकर उस स्थानपर विट्श्वर और भदत्त के नामों को स्वयं ही घुसेड़ा है। यह नाम weber के History of Indian Literature में नहीं दिखाई देते। वेंकटाचलम कहते हैं, " (these names) are not at all found in the original work of Alberuni. This he had done as he could not understand how Bhaskaracharya who according to Western historians belonged to the 12th Century A.D. could have been the author of a work

translated in the 9th century A.D. It has been proved in our Kali Saka Vijnana (Part 1, pages 73-75) that Bhaskara belonged to the 5th century A.D. The same might not have been proved by the time of Saucha. But a historian or translator of History must be open-minded and leave the readers freedom of further research but should not close further chances of certain riddles being solved." ("यह नाम अलबेरूनीके मूल ग्रंथ में नहीं है। श्री सौचाने यह इसलिए किया कि, पाश्चिमात्य इतिहासकारोंके अनुसार भास्कराचार्य ई.स. बारहवे शतकमें होनेसे, वह ईस नौवे शताब्दीमें अनुवादित ग्रंथका कर्ता कैसे हो सकता है, ऐसा सोचको संदेह हुआ। इफिर भी? हमारे Kali-Saka - Vijnana में सिद्ध किया है कि भास्कराचार्य पाँचवे शतकमें हुए थे। वह सौचके समयतक साबित नहीं हुआ था। परंतु कोई भी इतिहासकार अथवा इतिहासके अनुवादक खुले दिलके होने चाहिए, और वे वाचकों को अधिक संशोधनकी स्वतंत्रता देकर कुछ रहस्थों को आगे जाकर खोजने का मार्ग बंद न करें।*)

इसलिए अपने देशका इतिहास लिखते समय विदेशीनयोंके विधानों पर विश्वास करनेसे पूर्व विशेष सावधानी बरखनी चाहिए और चिकित्सापूर्ण दृष्टिसे देखना बहुत जरूरी है।

महाभारत के युद्ध का इतिहास:

भारतवर्षके इतिहासमें महाभारतका युद्ध एक युगप्रवर्तक घटना है, उसे भारतीय ऐतिहासिक कालखंडका आरंभ माना जा सकता है। पर विद्वानोंने इस बारेमें भिन्न भिन्न मतोंको प्रकट किया है। पाश्चिमात्य विद्वान कुछ पुराणोंके आधारपर कहते हैं कि पांडवोंके पोता परीक्षितने नंदवंशके अंततक (अर्थात् चंद्रगुप्त मौर्यतक) १०१५ अथवा १०५० वर्ष बीत चुके थे और इसलिए, अलेक्झांडरके भारतके सवारी का वर्ष ई. स. पूर्व ३२८ होने से, वह महाभारत युद्धवर्ष ई.स. पूर्व लगभग १३७६ (३२६ + १०५०) मानते हो। पर इसपर अधिक सोचनेसे पूर्व कुछ विद्वानोंके मत दिखते हैं।

पुरातत्त्ववेत्ता श्री सरकार और सांकलिय स्पष्ट रूपमें कहते हैं कि, महाभारत महाकाव्य एक इतिहास नहीं बल्कि केवल काल्पनिक कथा है, और उसमें वास्तविकता हो तो वह बहुत कम है। उनके अनुसार वह तथाकथित महायुद्ध दो ग्राम्य टोलीयोंके बीचका छोटासा संघर्ष हो सकता है, क्योंकि महाभारतके समर्थनके लिए कोईभी उत्कीर्ण लेख अथवा अन्य पुरातत्त्वीय प्रमाण मौजूद नहीं है।

पर रामायण महाभारत और पुराण ये सब ऐतिहासिक ग्रंथ हैं, इस बातके बहुतसे अंतर्गत प्रमाण हैं यह उपर हमने देखा है। इतिहास शब्द की व्याख्या ऐसी है, "धर्मार्थकाममोक्षाणां उपदेशसमन्वितं पूर्ववृत्तं कथारूपं इतिहासं प्रचक्ष्यते." ("धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों) पुरुषार्थ प्राप्त करने हेतु संतुलित जीवन

कैसे बिताया जाए, इस बातके उपदेशके साथ भूतकालीन घटनाओं का कथारूपमें समाचार 'इतिहास' कहलाता है।)

महाभारतादि ग्रंथोंमें कहा 'स्थानों पर अतिशयोक्तिपूर्ण अथवा अद्भुत वर्णन मिलते हैं यह सच है। पर साधारण लोगोंके मनमें नैतिक, सांस्कृतिक अथवा दार्शनिकतत्त्व और अच्छी तरहसे बैठ जाए इस हेतु वे वर्णन मूल अवसरके साथ मिलाए गए हैं। और इस ग्रंथ में वर्णित मांधाता, भगीरथ, रघु, युधिष्ठिरादि राजा महान होने पर भी कालवश चुके हैं, मानव सदाचारपूर्ण नियमित जीवन बिताएँ यह उपदेश वाचकोंके अंतःकरणको स्पर्श कर सके इसलिए इस ग्रंथ में उन राजाओंके निजी जीवन का बारिकीसे कोई सिलसिला नहीं बताया है। पर उस कारण इस ग्रंथका प्रमुख ऐतिहासिक स्वरूप नष्ट नहीं हो सकता।

महाभारत युद्धकी एक खास विशेषता थी। वह युद्ध अर्थात् धर्म और अधर्म, न्याय और अन्याय, के बीचका एक भीषण संघर्ष था। इस महान घटनासे भारतीयोंके मन में और साहित्यमें हमेशा के लिए घर बनाया है। ई. स. पूर्व पाँचवें और चौथे शतकमें वायु और मत्स्य- आद्य पुराण इस युद्धको द्वापर और कलिके बीच का विभाजन रेखा कहते हैं। कौटिल्य और उनसे पूर्व पाणिनी इस युद्धको सत्य घटना मानते हैं। सांख्यायन और आश्वलायन (जो प्रचलित धारणा के अनुसार ई.स.पूर्व ८०० से पूर्व बन चुके थे) ग्रंथोंमें भी इस युद्धको सत्य घटनाके रूपमें स्वीकार किया है। सांख्यायन कुरुकुलके दुर्भाग्यको कारणभूत एक याज्ञिक गलती का संदर्भ देते हैं, और आश्वलायन वैशंपायन को भारताचार्य का शिष्य कहते हैं। प्रारंभ के वैदिक साहित्यमें कौरव-पांडवोंसे संबद्ध अनेक व्यक्तियोंका संदर्भ मिलता है।

श्री.बी.बी लालूके अनुसार महाभारत युद्धकी घटनाको प्रबल करनेवाला अप्रत्यक्ष पुरातत्त्वीय-प्रमाण है। हस्तिनापूरमें घोड़ोंकी हड्डिया और अश्वमेध यज्ञके कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा परीक्षित छठे राजा निचक्षुके समयपर हस्तिनापूरमें आए महापौरके पौराणिक वर्णनको प्रबल बनाने के लिए कुछ भूस्तर विषयक प्रमाण भी वहां प्राप्त हुए हैं।

डॉ. सांकलिया कहते हैं कि पुरातत्त्वीय प्रमाणोंके अनुसार महाभारतकालीन युद्धमें लोहेका उपयोग ज्ञात नहीं था, और लोहे का तंत्र ई.स. पूर्व लगभग ११०० में प्राप्त हुआ, इसलिए अगर वह युद्ध हुआ होगा तो बहुत प्राथमिक स्तरके हथियारोंके साथ लड़ा गया होगा। परंतु इसके विपरित श्री बी.पी. सिंह कहते हैं कि, लोहेके उपयोगका यह सबसे प्राचीन 'ज्ञात' काल है और वह उनके उपयोग का सर्वप्रथम काल है ऐसी बात नहीं है। उस युद्धभूमीपर लोहेके शस्त्र और विशाल वास्तुरचनाके अवशेष आज मौजूद नहीं हैं इसके कारण हवामानविषयक अथवा भूगर्भ विषयक हो सकते हैं।

भारतवर्ष में ई.स.पूर्व ११००, कमसे कम १९००, से पूर्व लोहा मौजूद नहीं था, इस बातपर जोर दिया जाता है। किंतु भारतमें खदान से लोहा बहुत जादा मात्रामें प्राप्त हुआ है) और ईजिप्त एवं मेसोपोटेमिया में ई.स. पूर्व तिसरे सहस्रकमें लोहेके आयुध कभी कभी उपयोगमें लाए जाते थे, फिर भी लोहे को पिघलाना बहुत कठीन होने से उनके शस्त्र बनाना बहुत परिश्रम का और खर्चा बढ़ाने वाला काम था। ऐसा हो तो भारतवर्षमें भी बहुत पुरातन कालसे लोहायुधों का उपयोग किया जाता होगा विशेषतः की इस लिए कि, सरस्वती-सिंधु संस्कृति और सुमेरियन संस्कृतिके बीच निकटतम संबंध था, और तो और वे लगभग एकसमान ही थी। भारतवर्षमें वेदकालसे खेतीके बारेमें जानकारी थी, और स्थूलतासे भी लोहेके अवजारोंके बिना खेत की जुताई करना संभव नहीं है। यजुर्वेद और बादमें आनेवाले प्राचीन साहित्यमें लोहेका ('शामायस') का संदर्भ मिलता है।

वैदिक साहित्यमें खड्ग, आयुध, धनुष-बाण, कवच आदि शब्द आते हैं। इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन ऐसे शस्त्र वगैरा तैयार करने का तंत्रज्ञान विकसित था। उत्खननमें उनके अवशेष प्राप्त नहीं हुए इससे पुराणादि साहित्यिक प्रमाणको अस्वीकार करना उचित नहीं है। लोहा खराब हो जाता है, इसलिए वह जल्दी नष्ट होता है। आजके समान शुद्ध लोहा तत्कालमें उपलब्ध नहीं होगा। पर उसी तरहका लोहा अगर ख्रिस्तपूर्व १९०० सालमें भारतमें और उससे पूर्व २००० वर्ष मेसोपोटेमिया ईजिप्तमें मौजूद था, तो भारत में भी होना चाहिए इसमें कोई शक का कारण नहीं है। आजभी संपूर्ण कुरुक्षेत्र महाभारतके व्यक्तिविशेष और घटनाओंसे जुड़े हुए तीर्थस्थलों से व्याप्त है। हिंदुओंमें शव जलाने की परंपरा होनेके कारण उनके अवशेष शायद मौजूद नहीं हो सकते।

कुछ अपवादोंको छोड़कर बहुतसे भारतीय विद्वान महाभारत युद्धको एक ऐतिहासिक घटना मानते हैं। पर दिनेशचन्द्र सरकार कहती है कि, यह युद्ध एक 'पारिवारिक क्लेश' था, और उसमें द्वंद्वयुद्धके बिना और कुछ नहीं हुआ। पर इस घटना का अखिल भारतीय महत्व होना, यह दर्शाता है कि, यह केवल एक छोटासा स्थानिक क्लेश नहीं था।

डॉ. प. वि. वर्तक कहते हैं कि, महाभारतमें कलियुगके प्रारंभ का कोई संदर्भ नहीं है। उसमें द्वापारके सायंकाल का अर्थात् द्वापार और कलिके बीचकी संध्यासमय का संदर्भ (आदि पर्व २-१३, सभापर्व १-५३, वनपर्व १४९-३९ शल्यपर्व ६०-२५) मिलता है। कुछ ज्योतिषीय सिलसिलेके आधारपर वर्तक महाभारत का युद्धारंभ ई.स.पूर्व ५५६२ के अक्तूबर १६ का दर्शाते हैं। परंतु उपर हन देख चुके हैं कि, अधिकांश विद्वान प्रतिपादन करते हैं कि. कलियुगारंभ अंदाजन ३६ वर्ष पूर्व युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके बारेमें महाभारतमें स्पष्टता

से कहा है। और कलियुग ई.स. पूर्व ३१०२ को शुरू हुआ यह सर्वसम्मत है। इसलिए महाभारत युद्ध ई.स. पूर्व ३१३९-३८ में हुआ ऐसा 'इतिहासतज्ज्ञों' का बहुमत स्वीकार करना ही उचित दिखाई देता है।

श्री. के. राघवन ज्योतिषीय आधारपर ही युद्धवर्ष ई.स. पूर्व ३०७६ मानते हैं, वह साहित्यिक प्रमाणों से प्रस्थापित ई.स. पूर्व ३१३९-३८ वर्षके आसपास है।

परंतु फिर भी कुछ लोग आक्षेप उठाते हैं कि, आर्यभट्ट ने कलियुगवर्ष प्रथम निश्चित किया और उससे पूर्व उसका कहीं भी संदर्भ नहीं मिलता है। इसके लिए उपर उत्तर दिया ही है। यह विद्वान ऐसा कहना चाहते हैं कि, आर्यभट्ट ने कलियुग खोज निकाला? वे केवल उन्हें ज्ञात परंपराके बारेमें ही लिखते थे। कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओंको और एक आक्षेप ऐसा है कि, महाभारत युद्धारंभ के लिए ई.स.पूर्व ३१३९ - ३८ वर्ष मानना दौलतपूर, कर्णक का किला आदि स्थलोंपर प्राप्त हुए हरप्पा कालीन उत्तरार्धकी वस्तियों के (ई.स.पूर्व २०००-१५००) बारे में हुए संशोधन से असंगत है। मुद्दे की बात यह है कि संशोधकोंके मतके अनुसार वेदकाल सरस्वती- सिंधु संस्कृतिके बाद का है। यह विधान पूरीतरह से बेबुनियाद और काल्पनिक है। ई.स. पूर्व १५३ से १२ वे शतक के राजाओंके बताए वर्ष, महाभारत युद्ध और पुराण के वंशावली में आनेवाले राजा उदयनके बीच हर पीढ़ीके लिए नियुक्त किए गए वर्ष, इससे विपरित है। पुर पुराणमें प्रत्येक राजाका प्रत्यक्ष शासनकाल दिया हुआ है, इसलिए ऐसे काल्पनिक अनुमान की क्या जरूरत है? जहाँ साहित्यिक प्रमाण किसी भी अन्य पुरातत्वीय वा लिखित प्रमाणसे विसंगत नहीं होता, वहाँ ऐसी काल्पनिक गणनाओंपर क्यों विश्वास किया जाए?

सरस्वती- सिंधु सभ्यता वेदपूर्वकालीन है, यह पुरातत्त्ववेत्ताओंकी धारणा भारतवर्षके वाङ्मयीन परंपरा के विरोध में हैं, और वाङ्मयीन प्रमाण गलत होने का कोई भी सबूत नहीं है।

श्री. रॉय (और कुछ अन्य) ज्योतिष विषयक और स्मारक लेखोंपर आधारित प्रमाणके अनुसार महाभारत युद्धवर्ष ई.स.पूर्व १४२४- १४१४ मानते हैं, इसमें अलेक्झांडर और चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीनत्व ग्राह्य मानते हुए यह काल निश्चित किया जाता है। और यह गलत है ये बात उपर दर्शायी गयी है।

प्रायः सभी विद्वान कहते हैं कि शुरुवातके भारतीय इतिहासकी पुनर्चनाके लिए बौद्ध और जैन परंपरा निरूपयुक्त हैं, और वे एतनाही दर्शाती हैं कि, महाभारत युद्ध महावीर और बुद्ध इससे पूर्वके समयके थे। इसलिए महाभारत युद्धोत्तर भारतीय राजाओंकी कालगणना निश्चित करते समय पुराणोंमें आनेवाली वंशावली का सहारा लेना आवश्यक है। पार्गिटर स्वीकारते हैं कि, इस प्राचीन ग्रंथमें भारतका अधिकृत इतिहास है। वुडल्यम जोन्स मैक्स मुल्लर, फ्लूट, बुहलर आदि अन्य पाश्चिमात्य विद्वानभी पुराणोंमें

आनेवाली वंशावलीयोंको ही मानते हैं, पर वे उस कालगणनामें हेराफेरी करते हैं और चंद्रगुप्त मौर्य को (ई.स. पूर्व १५३४) अलेक्ज़ांडर (ई.स.पूर्व ३२६) का समकालीन मानते हैं।

१.५ सरस्वती- सिंधु सभ्यता और महाभारत:

महाभारत युद्ध निश्चित करने के हेतु 'कार्बन-१४' कसौटी अधिकतर उपयुक्त नहीं है, यह बात ध्यान में लेनी चाहिए। इस कसौटीसे निश्चित किए गए पुरातत्त्वीय अवशेषोंके कालका महाभारतमें आने वाली घटनाएँ वास्तुओंके काल का संबंध दर्शाते समय सावधानी बरखना जरूरी है। क्योंकि ऐसी विशिष्ट वस्तु मूल महाभारत काल की ही होगी ऐसी कोई बात नहीं है। महाभारत का अंतिम पुनर्लेखन ई.स.पूर्व ५०० में हुआ है, और ऐसा करने से उसमें कुछ संदर्भ दिए गए हो सकते हैं जिनका संबंध प्रत्यक्ष युद्धकालसे, न हो। हस्तिनापूर के पास प्राप्त हुई वस्तुओं का 'कार्बन-१४' परीक्षण करके पुरातत्त्ववेत्ताओंने महाभारत युद्धवर्ष ई.स.पूर्व १४०० निश्चित किया है, पर ऐसा निश्चित नहीं कहा जा सकता। उससे अधिक से अधिक यह साबित होगा कि, उस युद्धसे संबद्ध कुछ उपलब्ध अवशेषोंका वह सबसे आधुनिक काल हो सकता है पर वह सबसे प्राचीन होगा ऐसा नहीं है।

सिंधुघाटी उत्खनन में प्राप्त हुए अवशेषोंमें महाभारतीय वीरोंका विक्रम चित्रित किया गया दिखाई दे सकता है। हेरॉस कहते हैं कि, सुमेरियन लोगोंके मूल देशके अर्थात् महाभारतवर्षके (उनके मतके अनुसार सुमेरियन लोगोका आद्यदेश भारत ही है।) सिंधुघाटीमें प्राप्त हुई कुछ मुद्राओं पर एक वीर पुरुष नग्रावस्थामें दो शेरोंके साथ संघर्ष करते हुए एक दृश्य में दिखाया है, वह महाभारत का भीम है। पर महाभारत के वनपर्वमें आया हुआ वर्णन द्रविड संस्कृति का संस्कृत वाङ्मयपर प्रभाव दर्शाता है, ऐसा उसका मानना है। और वह द्रविड संस्कृति आक्रमक आर्योंने नष्ट की ऐसा प्रतिपादन करना चाहते हैं।

इस प्रकार सुनीतिकुमार चॅटर्जी लिखते हैं, "The idea of karma and transmigration, the practice of yoga, the religious and philosophical ideas centering round the conception of the divinity as Shiva and Devi and as Vishnu, the Hindu ritual of Puja as opposed to the Vedic ritual of homa all these and much more in Hindu religion and thought, would appear to be non-Aryan in origin; a great deal of Puranic and epic myth, legend and semi-history- is pre-Aryan; much of our material culture and social and other usages e.g. the cultivation of some of our most important plants like rice and the coconut etc., the use of betel leaf in Hindu life and Hindu ritual,

more of our popular religion, most of our folk crafts, our nautical crafts, our distinctive dress (the Dhoti and the Sari), our marriage ritual in some parts of Indian and many other things -- could appear to be legacy from our Pre-Aryan ancestors. ("कर्म और पुनर्जन्मविषयक धारणा, योगसाधना, देवोंके बारेमें शिव-देवी और विष्णु स्वरूप संकल्पनाके अनुसार धार्मिक और दार्शनिक विचार वैदिक होम विधिसे असंगत हिंदू पूजाविधि - यह सब और हिंदु धर्म और चिंतनमें आनेवाले और भी बहुतसे मूलमें अनार्थ प्रतीत होते हैं पुराणोंमें और महाकाव्योंमें अनेक कथा, दंतकथा और अर्ध-इतिहास आर्यपूर्व हैं, हमारी बहुत सी भौतिक संस्कृति और सामाजिक एवं अन्य प्रथाएँ, उदा.- चावल और नारियल जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण वनस्पतियों की खेती, हिंदू दैनंदिन जीवनमें और धार्मिक विधियोंमें बीडेके पत्तोंका उपयोग, अपने लोगोंमें प्रस्तुत धर्मका अधिकसा हिस्सा, हमारी कुछ लोककलाएँ, हमारी नौकानयन कलाएँ, हमारा विशेष पहनावा (धोती और साड़ी), भारतके कुछ भागोंके हमारे विवाह विधि, और भी बहुत कुछ चीजें - हमारे आर्यपूर्व पूर्वजोंसे हमने प्राप्त की ऐसा कहा जा सकता है।"),

इसका अर्थ यह होगा कि, वेदोंके साथ हमारा संस्कृत साहित्य मानो तथाकथित जंगली आर्योंको भारतवर्षमें पूर्वकालसे प्रचलित संस्कृति की रची गई झूठी आवृत्ति है! पर पाश्चिमात्य (और कुछ भारतीय) विद्वानोंके कल्पनासे भरी उड़ान के अलावा इसे कोई भी आधार नहीं है। हेरास प्रभृती संशोधकों का सिंधुसंस्कृति आर्यपूर्व है, ऐसा कहना है। उसके साथ ही साथ इस संस्कृतिमें महाभारतकालीन अवशेष प्राप्त होते हैं, ऐसा भी कहना चाहते हैं। इसका अर्थ ऐसा हो सकता है कि महाभारत निश्चित द्रविडियों का ग्रंथ है। ऐसा स्पष्ट न कहते हुए वे बस इतनाही कहते हैं कि, सिंधु सरस्वती आर्यपूर्व संस्कृति थी और उसे आर्यों ने नष्ट कर दिया

भारतीय ऐतिहासिक आधार और परंपरा, महाभारत युद्धवर्ष ई.स. पूर्व ३१३९-३८ में बताते हैं, और इसलिए सरस्वती- सिंधु वेदोत्तरकालीन साबित होती है। आर्य अथवा द्रविड ऐसे अलग अलग वंश न होने से, इनमें से एक ने दुसरे को नष्ट करने का सवाल ही नहीं पैदा होता।

एक बार महाभारत युद्धवर्ष निश्चित होने पर उसके बाद का ऐतिहासिक भारतीय कालगणना का सिलसिला निश्चित किया जा सकता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और अलेक्झांडर:

भारतीय संस्कृति के आधुनिक विवेचक चंद्रगुप्त मौर्यको (जिसका पुराणोंके अनुसार काल ई.स. पूर्व १५३४ है) अलेक्झांडर का (ई.स.पूर्व ३२६) समकालीन मानते हैं। इस गलत धारणाके कारण प्राचीन भारतीय

इतिहासा की पुरी कालगणना को विपरित कर रखा है। हम इस बारेमें कोई उत्कीर्ण लेख और अन्य कुछ प्रमाणोंके आधारपर चिकित्सापूर्वक परीक्षण करते हैं।

आगे दिए हुए कुलमिलाकर २६ उत्कीर्ण लेख अशोक मौर्य के बताए जाते हैं। यह अशोक मौर्य बिंदुसार का पुत्र और चंद्रगुप्तका पोता था।

१) शिला-आदेश:

प्रमुख शिला - आदेश साँत है और उनके स्थान ऐसे हैं, - गिरनार, कलसी-डेहराडून जिला, शहजगड - पेशावर के पास, मानसेहरा (पाकिस्तान), धौली (ओरिसा), जयगड (तमिलनाडू) और सोपारा (मुंबई के पास)।

इस प्रत्येक स्थानपर लगभग एकसमान मजमून वाले चौदह उत्कीर्ण लेख हैं, जिनमे से छह से तेरह धौली और जयगड में नहीं हैं: उस स्थानपर दो अलग आदेश हैं और उसमें न्याय अधिकारियोंने पूरी प्रजाको पुत्रवत मानना चाहिए ऐसे कहा है। सोपारामें केवल ८ वे क्रमांकका कुछ अवशेष बचा है बाकि सब नष्ट हो चुका है।

यह आदेश बताते हैं कि, वे 'देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी राजा के हैं, पर वहाँ कही भी राजा का नाम नहीं है।

२) स्तंभ- आदेश:

ये छह हैं और उनके स्थान ऐसे हैं- टोप्रा (हरियाणा), मेरठ, लौरीया आरोराज और लौरिया नंदनगड़ (बिहार), रामपुरा (बिहार) और कौशांबी (इसे बाद में अलाहाबाद-प्रयोग में स्थलांतरित किया गया।)

इनमेसे टोप्रा (हरियाणा) और मेरठ (उत्तर प्रदेश) में स्थित स्तंभ फिरोज़ शहा (ई.स. १३५७- ८३) दिल्ली में ले आए, इनमेसे पहलेपर सात और दूसरे पर छह लेख हैं। इसी तरह चंपारन जिलेके लौरीया आरोराज और (बेलिया जिलेके) लौरिया नंदनगड़ और (चंपारन जिलेके) रामपुराके स्तंभ पर केवल छह लेख हैं। कौशांबीमें भी इनमेसे केवल छह लेख ही हैं; पर 'रानी का आदेश' और "कौशांबी आदेश" ऐसे वहाँ पर और दो आदेश हैं। इस स्तंभपर गुप्तवंशीय महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का एक लेख है, (अकबर के दरबार के) बिस्बल और अकबर-पुत्र जहांगीर के भी कुछ छोटे लेख हैं।

उपर दिए हुए दो प्रकारके शिला और स्तंभ- आदेश महत्वपूर्ण हैं, उनमेंसे केवल देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी राजा इतनाही संदर्भ है। वह पाटलीपुत्रसे होगा; अथवा यह केवल शिला लेख क्र. पाँच 'पाट' शब्दसे खोजा गया अनुमान है।

इन उत्कीर्ण लेखों से यह पता चलता है कि, इस राजाने राज्यारोहणके आठ वर्ष पूरे होने के बाद कलिंग प्रदेश जिता (शिला आदेश तेरहवा) और दुस वर्ष के बाद संबोधी (बोधगया) को जा पहुँचे। नैतिकता के आदेश स्तंभ क्र. छह में है और वे राज्यारोहण के बारह साल बाद खोजे गए। राज्यारोहण के तेरह साल बाद एक आदेशमें (शिलालेख-पाँच) महामंत्रियोंने न्यायके अधिकारी पर नज़र रखे, और पूरी प्रजा नैतिकता का पालन करे और संतुष्ट हो, इस बात पर ध्यान दें, ऐसा लिखा है।

शिला आदेश पाँच और तेरहसे इस राजा का पुरे भारतपर स्वामीत्व दिखाई देता है। इसमें कंबोज, गांधार, ऋष्टिक, भोज, पेटेनिक, आंध्र, चोल, पांड्य लोगोमें और ताम्रपर्णी नदीतकके प्रदेशमें नैतिकताके पालनपर महामंत्रियों को नजर रखनी पड़ती थी। इस राजाके उज्जैन और तक्षशिलामें भी प्रांताधीश थे। कलशी के (क्र. तेरह) शिला- आदेशमें से क्र. 'आर' पंक्ति में कहा है कि इस प्रदेशमें "देवानाम् प्रिय" राजाके नैतिक आदेशका पालन किया जाता था। उसमें आनेवाली 'क्यू' पंक्तिमें कहा है। नैतिकता से यह विजय पश्चिम सीमासे छह योजन (सम्भवतः राजधानी से १२०० से २४०० मेल) दूरी पर रहने वाले लोगों को भी, जहाँ 'योन' राजा अन्तियोग (अन्तियोक) है, प्राप्त हुए है। विद्वानोंने इस 'अन्तियोग राजाको सीरिया के अन्टिओकस थिओस (ई.स.पूर्व २६-२४६)

के साथ जोड़ा है।

अशोकने इस अन्टिओकसके सीमाके कुछ राजाओं परभी यह नैतिकता का विजय प्राप्त किया था। उनके नाम और पाश्चिमात्य विद्वानोंने किया हुआ मेल (हमारे आक्षेपों के साथ) यह है -

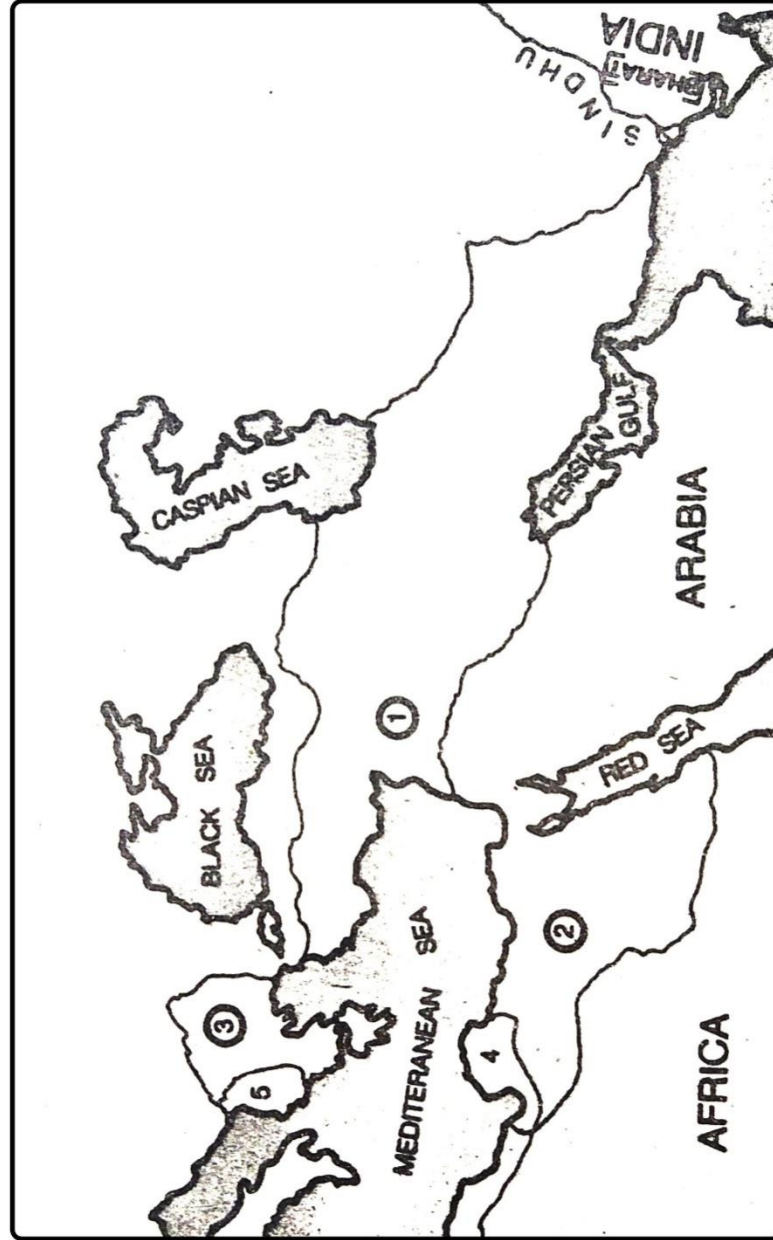
- (क) तुलमय:- इजिप्तके टॉलेमी (ptolemy) द्वितीय फिलाडेलफस ई.स. पूर्व २८३-२४७। (कुछ आदेशोंमें यह नाम 'तुरमया' है। टॉलेमी तुलमय नहीं हो सकता!)
- (ख) अंटिकिना:- मॅसिडोनिया अँटिगोनस गोनोटेस इ.स.पूर्व २७६-२३९ (पर अँटिकिना का अर्थ अँटिगोनस कैसे हो सकता है ? अगर अशोकका उत्कीर्ण लेख लिखने वाले 'अन्तियोक' सही तरह से नहीं लिख पाए तो उन्होंने 'अँटिगोनस' के लिए 'अँटिकिनी' क्यों लिखा होगा ?)
- (ग) मक:- सीरिनके मग ई.स. पूर्व ३००-२५० । (सीरिन लीबियाके पश्चिमकी ओर एक ग्रीकोंकी बस्ती थी, वह भारतसे हजारों मैल दूरीपर थी, यह देखते हुए 'मक' अर्थात् सीरिन के 'मग' ऐसा कहना ठीक नहीं लगता।)

(घ) अलिकशुदर:- एपिरसके अलेक्ज़ांडर, ई.स.पूर्व २७२-२५० (इन नामोंमें भी उच्चारणकी समानता नहीं है।)

ऊपर दिए गए मेल गलत है। राजाके महामात्य 'योन' प्रदेशमें उसकी नैतिकताके बारेमें होनेवाले आदेशोंके पालन पर नजर रखनेवाले थे। ऐसा होनेसे, ये महामात्य इराण, इराक, लीबिया और तुर्कस्तान के यह देश लांघकर नैतिकताके प्रचारार्थ और दूर दूर के देशोंमें जा सके यह कल्पना असंभव है। उपर दिए गए मेल का अर्थ यह होता है कि उस राजाका आसपास के देशोंपर कुछ प्रभाव न होते हुए उनके उस पारके राज्यों पर था। पर नक्शेसे पता चलता है कि, उस कालमें ईजिप्ट अथवा सीरियाको जाना भी बहुतही कठीन था। फिर उससे आगे मॅसिडोनिया(ग्रीस), सीरिन और एपिरसमें जाने की बात भूल ही जाइए और ग्रीस जैसे दूरके देशके स्वतंत्र राजाओंने अशोकके आधीन न होते, तो उनके आदेश नहीं मानते पर ग्रीक साहित्यमें इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

इसके अलावा आदेशमें कहा है वैसे यह राजा अशोकके राजाके सीमापर भी नहीं थे। भांडारकर निश्चित तोरपर कहते हैं कि, उन उत्कीर्ण लेखों में उल्लेखित थे 'योन प्रदेश "formed part of Ashoka's empire and had therefore nothing to do with the dominions of his Greek neighbors. There was a Greek colony of the pre-Alexandrian period on the North-Western confines of India and it was established between the rivers of Kophen and the Indus") ("अशोकके साम्राज्यमें थे इसलिए उनका ग्रीकके पड़ोसमें होनेवाले प्रदेशोंसे कोई संबंध नहीं था: भारतके उत्तरपश्चिम सीमापर अलेक्ज़ांडर से पहले ही एक ग्रीक बस्ती काफन और सिंधु नदीके बीच हुआ करती थी। ")

**Dominions of the five Western Kings named by Asoka
(Western scholars' view point)**



- (1) Antiochus II-Theos of Syria 264-264B.C. (2) Ptolemy Philadelphos of Egypt 285-247 B.C.
(3) Antigonus Gonatus of Macedonia 276-239 B.C. (4) Magas of Cyrene 300 B.C.-250 B.C.
(5) Alexander of Epirus 277-235 B.C.

‘इसलिए ऊपर दिए गए मेलमिलाप सही नहीं है। पर यह स्पष्ट है कि इस राजाने केवल अपनी प्रजामें नहीं बल्कि अपने राज्यसे बाहर भी, जो राजा उसका सार्वभौमत्व स्वीकार कर उससे मित्रतापूर्ण संबंध रख सकते हैं उनके प्रदेशमें भी नैतिकताको प्रचार किया था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अंतियोक, मक आदि नाम राजाओंके न होते हुए राज्योंके प्रतीत होते हैं। लेखमें प्रत्यक्ष ये शब्द आते हैं, “यत्र अंतियोक नामयोन राजा”, इसका अर्थ ऐसा होगा, ‘यत्र अंतियो को नामयवन “राज्यम्” इससे आगे यह पंक्ति है, “परं च तेन अंतियोकेन चत्वारि राज्याणि”, इसका अर्थ ‘उस अंतियोक राज्यसे ठीक नजदिकी राज्य’ ऐसा है। राजा एक दुसरेके पास के प्रदेशोंके कैसे हो सकते हैं? उनके देश एक दूसरेके पास हो सकते हैं। यह अर्थ अगली पंक्तियोंके साथ मेल खाता है, “निक चोला पण्डएवं तंबपनीय,” याने उनके निचले दक्षिणके प्रदेशोंमें चोल, पांड्य और ताम्रपर्णी राज्य हैं। अशोकके साम्राज्यके सीमा पर ‘योन’ लोगोंने गांधार और कंबोज प्रदेशोंके साथमें इकट्ठा संदर्भ दिया है। इसलिए ये सब उस प्रदेशके उत्तर, पश्चिम सीमाके आसपासके राज्य हैं।

के. वेंकटाचलम इन राजाओंकी सूची इस प्रकार देते हैं अभिसार, उरग, सिंहपूर, दिव्यकटक और उत्तर जोतिष । पर इन नामोंकी लेखोंमें आनेवाले नामोंके साथ कोई उच्चारण की समानता नहीं है। वे अंतियोक जैसे शब्दोंको राज्यके राजाओंके नाम कहते हैं। पर उनका आगे दिया हुआ यह विधान उचित प्रतीत होता है। “Only if we identify the Bharatiya Yavan states of the inscriptions, the length of the entire range of Buddhist religious influence on the north of Ashoka's Empire mentioned in the inscription will work out from modern Afghanistan to the east coast of China nearly 800 yojanas as mentioned in Ashoka's inscriptions.” (“हम उन लेखोंमें आनेवाले भारतीय यवन राज्योंके बारेमें ठीक तरहसे सोचने पर यह प्रतीत होता है उल्लेखित अशोकके साम्राज्यके उत्तर की ओर बुद्ध धर्मके प्रभाव का पुरा विस्तार-आधुनिक अफगाणिस्तानसे चीन देशके पूरबके किनारेतक, अशोकके लेखमें कहनेके अनुसार लगभग ८०० योजन - ठीकसे स्पष्ट होता है।)

अशोकके नैतिकता का प्रचार बुद्धधर्मीय था यह वेंकटाचलम का कहना सही नहीं है। क्योंकि अशोकने स्वयं बुद्ध धर्म का स्वीकार नहीं किया था। वे आगे लिखते हैं, “So Antiyoka was a Bhartiya Yavan Prince not an Iono Greek or Greek prince. He was the contemporary of Ashoka. His age was 1472-36 B.C.” (“इसलिए अंतियोक आयोनियन ग्रीक राजा नहीं बल्कि भारतीय यवन राजा थे वे अशोकके समकालीन थे और उनका राज्यकाल ई.स. पूर्व १४७२-३६ का था।”)

श्रीमती Rhys Davids लिखते हैं, “Megasthenese in his account of India has not said a word about Buddha or his system”) (“मॅगेस्थनीस अपने भारत विषयक समाचारोंमें बुद्ध

अथवा उनके संप्रदायके बारेमें मौन धारण करते हैं।") उसके आगे वे कहते हैं, "Ashoka's claim that he had persuaded a few Greek kings to embrace Buddhism is to say the least very tall and displays his egoistic nature. He had not sent any religious ambassador to Greek countries. The Greeks themselves were highly civilized. They would not embrace religions and welcome ethical teachings from an uncivilized and barbarous king. This clearly raises a doubt that the names of foreigners in Ashoka's edicts refer not to any king from other countries." (Ibid P.198) ("कुछ ग्रीक राजाओंको बुद्ध धर्म स्वीकारनेके लिए प्रेरित करना। यह अशोकका बढ़प्पन बेबुनियाद है और केवल उसका अहंकार दर्शाता है। उसने ग्रीक देशमें कोई भी धार्मिक प्रचार करनेवालोंको नहीं भेजा था, ग्रीक स्वयंबहुत सभ्यतापूर्ण थे और उन्हें नैतिकता एवं धर्म की शिक्षा देने की उस जंगली अशोकमें क्षमता नहीं थी; अशोकके लेखमें आनेवाले परकीय नाम भारतवर्ष के बाहरके राजाओंके नहीं थे।) इसमें श्रीमती डेव्हिडस बुद्धधर्म स्वीकारनेवाले दूसरे अशोकके 'अशोक वर्धन चरित्रमें आनेवाले उसके प्रारंभिक क्रौर्यपूर्ण जीवन का यह संदर्भ हो सकता है। वहाँ उस अशोकको मनुष्योंकी बिनावजह हत्या करनेवाला दुष्टता पूर्ण दर्शाया गया है। उपर दिए गए आदेश लेखोंमें आनेवाले अशोकने बुद्धधर्म का स्वीकार नहीं किया था। श्रीमती डेव्हिडसने उत्कीर्ण आदेश- लेखोंके खिलाफ कही गई बातोंसे हम सहमत नहीं हैं। पर यह बात स्पष्ट है कि, उन लेखोंमें आनेवाले राजा अथवा राज्योंके नाम दूर रहने वाले ग्रीकों के नहीं बल्कि अशोकके प्रभावमें आए हुए उसके आसपास के प्रदेश के कुछ म्लेच्छ अथवा यवन राजाओं के हैं।

संस्कृतमें 'अंतियोक' का अर्थ 'सीमापर रहनेवाला' ऐसा है और उस लेखमें उसका अर्थ 'अंतियोक का राज्य' अथवा 'सीमा पर राज करने वाला एक राजा' इतना ही हो सकता है, 'मक' (मग) अर्थात् आधुनिक बलुचिस्तान कह सकते हैं, वह उसका प्राचीन नाम था। 'तुरमय' अर्थात् 'तुराण' (तुर्वस और उसके वंशजोंने स्थापित किया हुआ इराण और अफगाणिस्तानकी सीमा का एक राज्य) ऐसा अर्थ हो सकता है। ऋग्वेदमें ययातिपुत्र यदुके साथ तुर्वसु वंशका हमेशा संदर्भ मिलता है। ऋग्वेद में (१-५३-१०) 'तुर्वयन' नामसे उस अन्य वंश का संदर्भ है और उसका भी सिंधुनदीके उस पार के 'योन' प्रदेशमें राज्य था। इसलिए उस लेखमें आनेवाला 'तुरमय' शब्द का अर्थ 'तुराण' और 'तुर्वयाना' समझा जा सकता है। अंतिकिनि का अर्थ 'अन्ति किन्नरे' में, (तिबेट के भारत का) 'सीमाके पासके किन्नर राज्य में ऐसा भी लगाया जा सकता है। इस राज्यके लोगोंको यक्ष अथवा किन्नर कहा जाता था। और 'अलिकशुदल' याने संस्कृत 'अलेख्यसुंदर' अर्थात् सर्वाधिक सुंदर राज्य ऐसा है और वह काश्मीर हो सकता है। वहाँपर उस समय गोनंदी वंश का एक अन्य अशोकराजा राज करता था।

इससे पूर्व विद्वानोंने किए हुए तर्कोंसे ज्यादा उपर बताए गए तर्क ज्यादा योग्य है। यह अशोक के सीमा पर स्थित राज्य और उनके मांडलिक अथवा मित्रता रखनेवाले होते हुए निष्ठापूर्वक पालन करनेवाले थे।

यह अशोक शांतिसे और प्रेमपूर्वक नैतिकता का प्रचार और प्रसार करनेवाला था।

अशोक मौर्यने बुद्ध धर्म का स्वीकार नहीं किया था, यह उसके अगले तिसरे प्रकार के लेखों से ज्ञात होता है।

3) गौण शिला आदेश :

इसमें दो लेख (मध्य प्रदेशके) सांची और (बनारसके पास) सारनाथ में है, और दो नेपालतराई मेंरुमिंडी अथवा लुम्पिनी और (उसके पास) निगलिसागर, इन स्थानों पर हैं।

सांचीके स्तूपलेखोंमें बुद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों को 'संघा की एकता कायम रखे अन्यथा संघसे बहिष्कृत किया जाएगा ऐसा आदेश है। सारनाथमे भी वही आदेश है जिसमे कहा है कि, 'देवानाम प्रिय' से वह दिया है। चिनी यात्री च्वांगने सारनाथ को एक स्तूपके सामने 'अशोकराज' ने खड़ा किया हुआ ७० फूट ऊँचा एक पाषाण - स्तंभ देखा था, अब वह स्तंभ मौजूद नहीं है। यह 'अशोकराज' मौर्य नहीं बल्कि काश्मीर के गोनंद वंश के (राजतरंगिणी में दिए गए सूची के अनुसार) ४८वे राजा अशोक सकते हैं, इसने बुद्ध धर्मका स्वीकार किया था।। अन्यथा वह अश्वघोष भी हो सकता है। सारनाथके लेखमें राजा अश्वघोष का एक छोटा सा लेख भी कुरेदा गया है। सांची और सारनाथके दो स्तंभलेख बुद्धधर्मीय अशोक नामक काश्मीरी राजा के हो सकते हैं।

नेपालतराईके दो स्तंभलेखोंमेंसे एक ने कहा है कि, “देवानां प्रिय” अपने राज्याभिषेकके बीस वर्षोंके बाद बुद्ध का जन्मस्थल लुम्पिनी में गया और उसने खंबा खड़ा कर गाँवको लगानसे मुक्त किया। दुसरे लेखमें कहा है कि इस राजाने अपने अभिषेक के चौदह वर्षोंके बाद इस स्थलमें जाकर बुद्ध कनकमुनीकी मूर्तकको दुगने आकार का बनाया। अशोक मौर्यने स्वयं बुद्धधर्म न स्वीकारने की वजह से वह भगवान बुद्ध के जन्मस्थलपर अपने राज्याभिषेक के बीस वर्षोंके उपरांत गया।

4) द्वितीय स्तर शिलालेख :

इनमेंसे पाँच लेख रूपनाथ (मध्यप्रदेश) सहस्रम् (दक्षिण बिहार) बैराट (राजस्थान) भाबरू (बंगाल) और मस्की (कर्नाटक) के स्थानपर हैं। इन पाँचों पर मजमून लगभग एकसमान है। रूपनाथ और सहस्रम् के लेख में कुछ है कि, “देवानां प्रिय” राजाने ढाई साल बुद्धकी पूजाकी और बादमें उसने बुद्धधर्मके स्वीकार

का ऐलान कर पाषाणपर वह बात कुरेद दी। यह लेख बेशक कश्मीरके गोनंद वंशीय अशोकके है। राजतरंगिणीके अनुसार उसने बुद्ध धर्म स्वीकृत किया था। अशोक मौर्यके बुद्धधर्मको स्वीकारनेका संदर्भ कहींभी नहीं मिलता।

बैराट का लेख उपर बताए गए दोनों के समान ही हैं।

भाबू लेखका आरंभ **"प्रियदर्शी राजा मगधे संघ अभिवादे"** ('प्रियदर्शी राजा मगधमें संघ को अभिवादन करता है।) ऐसा है। इसका अर्थ हूलट्झ और अन्य पुरातत्त्ववेत्ता वह राजा मगध था ऐसा करते हैं। पर 'मगधे' शब्द सप्तमी विभक्ति में होते हुए उसका अर्थ 'मगधके' नहीं बल्कि 'मगधमें' ऐसा है। बुद्धने संघकी प्रथम स्थापना मगधमें की थी। यह कश्मीरी अशोक मगधमें आनेके बाद वह बुद्ध से मिले, इस बातका संदर्भ है।

मस्कीके पाँचवे लेखमें राजा अशोक का नाम होते हुए उसके बुद्ध धर्म स्वीकारने का संदर्भ है। यह स्पष्टतासे काश्मीरके अशोकके बारेमें है। क्योंकि मौर्य अशोक के राज्याभिषेक के २/३ साल बाद बुद्ध धर्म स्वीकारने का कहीं भी संदर्भ नहीं दिखाई देता। उसने कलिंगके साथ युद्ध ही राज्याभिषेकके आठ साल बाद किया है और बीस साल बाद बुद्ध जन्मस्थल पर जा पहुँचे।

इन पाँचों के अलावा तीन दुसरे स्तरके शिलालेख सिद्धपूरके पास तीन टेकरियों पर हैं और उसपर लिखित मजमून उपरोक्त रूपनाथ और सहस्रम् लेखों के समान हैं और दक्षिण बिहारमें गयाके पासके टेकरियों पर भी कुछ दुय्यमस्तरके लेख हैं, जिसमें कहा है कि, 'प्रियदर्शी राजा ने अपने अभिषेक को चौबीस वर्ष पूरे होने के बाद बनियन गुंफा आजीवकों को दी। बिहार में तीन शिलालेख अर्थात् मौर्य अशोकने अपने राज्याभिषेक के चौबीस वर्ष पूरे होने पर आजीवक याने जैन पतियों को रहने के लिए योग्य गुफाएँ बनाईं। काश्मीरी अशोकको राज्याभिषेक के उपरांत ४/५ वर्षों के बाद कुशाणोंने उसपर आक्रमण कर राज्यसे बहिष्कृत कर दिया। आगे उसका पुत्र जलौकने यह राज्य शिव की कृपासे पुनः प्राप्त किया। यह जलौक बुद्ध धर्मीय नहीं था।

इस प्रकार इन उत्कीर्ण लेखों पर राजा का नाम, **'देवानां प्रिय प्रियदर्शी'** इतनाही दिया है; केवल मस्कीके लघुलेखमें 'अशोक' का नाम है, और एक अन्य शिलालेखमें पाटलीपुत्र शहर का नाम दिखाई देता है। और केवल उस लघु और संदिग्धता पूर्ण संदर्भको बड़ा पहाड़ बनाकर प्राच्यविद्याविशारद प्रतिपादन करते हैं कि, इन सभी लेखों के कर्ता अशोक मौर्य थे: और उसके दादा चंद्रगुप्त मौर्य ई.स. पूर्व ३२६ अर्थ में भारत की सीमापर आए ग्रीक अलेक्झांडर के समकालीन थे। Hultzsch इस मतके महत्वपूर्ण प्रतिपादक है।

वस्तुतः अलेक्झांडरके समकालीन चंद्रगुप्त मौर्य नहीं बल्कि गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त थे। **'देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा'** एक साधारणसा आदरदर्शक संबोधन है। बाणके हर्षचरित्रमें यह शब्द प्रयोग इसप्रकार दो बार आया है। जैन और बुद्धोंके साहित्यमेंभी वह इसी अर्थ में आया है। दीपवंश नामक बुद्धोंके ग्रंथमें यह उपाधि लंकाके तिसरे राजा तिसा को प्रदान की गई है। इसलिए केवल इस संबोधनसे उन आदेशोंके कर्ताके बारेमें निश्चित निर्णय नहीं किया जा सकता।

उपर दिए गए २६ लेखोंमेंसे **रूपनाथ, मस्की आदि द्वितीय स्तरके शिलालेख** और कर्नाटकमें सिद्धपूरके पास की टेकरियोंके उपरि तीन लेख (मस्कीके लेखमें कहे गए नुसार) राजा, अशोक के हैं। उसमें ऐलान किया है कि, राजा अशोकने इन लेखोंके अंदाजन ढाई वर्ष पूर्व बुद्ध धर्मका स्वीकार किया और बाद में 'संघ'-स्थान पर चले गए। उन्होंने २५६ रातें प्रार्थना करनेमें बिताई। उसकी इस शांत प्रवृत्ति के कारण वे राजपदसे हाथ धो बैठे।

दुय्यम स्तरके स्तंभ लेखोंमेंसे केवल **साँची और सारनाथके** लेखों का ऊपर बताए गए के मुताबिक राजाका भिक्षु - भिक्षुणीको अनुशासन पालन करने का आदेश है। विद्वान सारनाथके लेख का एक भाग अशोक का और एक अश्वघोष का मानते हैं। परंतु वस्तुतः पुरा लेख संपूर्णतः एक स्थानपरही कुरोदा गया है और उसमें कोई विभाजन नहीं किया है। वह पुरा लेख अश्वघोष का है।

रुमिंडी और निगलि सागरके स्तंभलेख अशोक मौर्य के हैं: उसमें राजाने अपने अभिषेकके बीस वर्षोंके बाद मगधके दो प्रमुख बुद्ध तीर्थस्थलोंमें जाने की बात कही है। बुद्ध धर्मके साहित्यके अनुसार अशोकने राजा बनने के बाद चौथे वर्षपर बुद्धके धर्म का स्वीकार किया। यह देखते हुए, उस स्तंभलेखके राजा स्वयं बुद्ध धर्म ग्रहण करता तो सोलह साल बुद्धोंके तीर्थका दर्शन करने के लिए राह नहीं देखता है। इससे यह स्पष्ट है कि, अशोक मौर्यने इन दो स्थलोंपर जाके उनके स्मरणार्थ यह लेख बनाए।

दीपवंश, महावंश और समन्तपसदिक बुद्ध ग्रंथके अनुसार अशोक अपने राज्याभिषेकके चार वर्षोंबाद बुद्ध बने, और आगे तीन वर्षोंमें उन्होंने बहुत शहरोंमें ८४ हजार विहारों की स्थापना की। परंतु Fleet, Buhler, Hultzsch आदि कहते हैं कि अशोकने ३७ वर्ष राज्य किया; और रूपनाथके वा अन्य संबंधित द्वितीय स्तरके शिला आदेश राजा के बुद्धापाके कालके मानकर निष्कर्ष करते हैं कि अशोक ने अपने राज्यकाल के अंतिमकुछ वर्षोंमें बुद्ध धर्मको स्वीकारकर सर्वसंगपरित्याग किया। यह निष्कर्ष बुद्ध साहित्यके उपरोक्त कथनके विरोधमें हैं।

प्रमुख शिलालेख और स्तंभलेखोंमें अशोकने बुद्धधर्म स्वीकारा था, ऐसा कुछ संदर्भ नहीं मिला। उन लेखोंसे इतनाही ज्ञात होता है कि,

1. उसने राजा बनने के बाद आठ साल बाद कलिंगसे लड़ाई की,
2. दस वर्षोंके बाद 'बुद्धगयामें' गए,
3. बारा वर्षोंके बाद अपनी प्रजा सात्विकतासे रहती है इसके निरीक्षणार्थ अधिकारियोंको आदेश दिए,
4. तेरह साल बाद उन अधिकारियोंपर नजर रखनेके लिए श्रेष्ठ अधिकारियों को नियुक्त किया,
5. चौदह वर्ष बाद निगली सागरको कनकमुनि बुद्धका स्तूप बढ़ाया,
6. उन्नीस साल बाद बाराबर टेकरीपर एक आश्रयस्थान बनाया,
7. बीस साल बाद लुम्बिनी और कनकमुनि बुद्धके स्तूप तीर्थोंको गए,
8. छब्बीस वर्षोंके उपरांत नैतिकताके बारेमें और आदेशों का प्रसार किया, और
9. सत्ताइस वर्षों के बाद और एक स्तंभलेख खड़ा किया।

इस सिलसिले से यह दिखाई देता है कि, यह प्रमुख लेख और कुछ थोड़े द्वितीय स्तरके लेख बनाने वाला यह राजा स्वयं बुद्धधर्मीय होना जरूरी नहीं है। पर यह स्वीकारने की जगह बुहलर प्रतिपादन करते हैं कि पाँच द्वितीय स्तर के शिलालेख और सिद्धपूरदके पाके टेकरीलेख राजा अशोकने बुढ़ापेमें बुद्धधर्म स्वीकारने के बाद बनाए होंगे, और इसलिए वे रूपनाथ लेखमें आनेवाला 'अधतिय्यनि (ढाई साल), शब्द 'अधितिस्सनि' (साडेबत्तीस वर्ष) ऐसे पढ़ते हैं। ओल्डेनबर्गने दिखाया कि, वह शब्द 'अधतिय्यनी' ऐसाही है। यह देखने पर हुलट्झने अपनी भूमिका बदलकर कहा कि, रूपनाथ और सहस्रमके लेख सबसे शुरुवातमें बनाए गए और उसमें निर्दिष्ट शिला एवं स्तंभ लेख पहले से बनाए हुए नहीं बल्कि आगे बनाए जाएंगे ऐसा कहा है। ऐसी कुलाटी कुदी का कोई भी आधार नहीं है।

अशोकने बुढ़ापेमें बुद्धधर्म का स्वीकार किया यह बुहलरका मत (उपर बताया गया) बुद्ध साहित्य के साथ असंगत है, इतना ही नहीं बल्कि, कलिंगाकी सवारी के कारण अशोक धर्माचरण की ओर बढ़ा, यह उनका प्रतिपादन 'महावंश' (५-१८९) में आने वाले अगले विधानसे नहीं मिलता- 'पूर्वकालमें उसके दुष्कृत्यों के कारण उसे चंड (भीषण) अशोक कहते थे, पर बादमें उसके सत्कृत्य की वजहसे उसे धर्माशोक कहने लगे। इसमें कलिंगयुद्धका कोई भी संदर्भ नहीं यह महत्वपूर्ण है।

इसके अलावा अशोक कलिंगयुद्धके कारण बुद्धधर्म की ओर बढ़ा यह मत, अशोक ने अपने अभिषेकसे चार साल बाद बुद्ध धर्म का स्वीकार किया और अभिषेकको आठ वर्ष होने के बाद कलिंगयुद्ध किया यह बुद्ध परंपरासे मिलताजुलता नहीं है। और इसलिए बुहलर कहने लगे कि उत्कीर्ण लेख और बुद्ध परंपरामें सुसंगति नहीं है।

इसके विपरित बुहलरके मतोंपर आक्षेप लेकर हुलटझ निष्कर्ष करते हैं कि, अशोक अभिषेकके बारह साल बाद बुद्ध बने होंगे, और उसके बाद तुरंत रूपनाथ आदि स्थानोंके लेख बनाए गए होंगे, और प्रमुख आदेशालेख उनके बुढ़ापेमें बनाए गए होंगे। पर इन अनुमानों का कोई आधार नहीं है। क्योंकि शिला आदेश क्र. चार (पंक्ति 'के') से ज्ञात होता है कि, यह लेख 'देवानाम् प्रियदर्शी' राजाने अपने अभिषेक के बारह साल बाद बनाया। इसलिए रूपनाथ का (द्वितीय स्तर का) लेख बारहवें वर्षमें माना जाए तो सह (प्रमुख) लेखभी उसी साल का होगा। पर यह रूपनाथ के लेख अशोकने जवानीमें और प्रमुख शिलालेख बुढ़ापे में बनवाए, उसीके इस प्रतिपादनसे विपरित हैं।

पर सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि, हुलटझ कहते हैं, “from Buddhist literature we learn that Ashoka adopted religion of Jina (i.e. Buddha) and built many stupas” हमें पता चलता है कि, अशोक ने 'जिन' याने बुद्धधर्म का स्वीकारकर बहुत से स्तूप खड़े किए।”); और इसके आधारार्थ वे राजतरंगिणी का अगला श्लोक १-१०२ बताते हैं

"यः शान्तवृत्तिनो राजा प्रपत्रो जिनशासनम्

शुष्कलेत्र वितस्तात्रौ तस्तारस्तूपमण्डलैः ॥

“उस शान्त स्वभाववाले राजाने 'जिन' (बुद्ध) धर्म का स्वीकार किया, और वितस्ता (झेलम) नदीके किनारे शुष्कलेत्रमें बहुत स्तूप स्थापित किए।” पर कल्हणने उल्लेख किया हुआ यह अशोक काश्मीरके गोनंदवंशी है, मौर्य नहीं! उस काश्मीरीय अशोकने बुद्धधर्मका स्वीकारकर (बुद्ध साहित्यमें कहे गए नुसार) बहुत विहारों का निर्माण किया। राजतरंगिणी के अनुसार काश्मीर के गोनंदवंशमे सुवर्ण (ई.स. पूर्व १५५७ से १५२८), बादमें जनक और शचिनार राजा हुए। शचिनार निपुत्रिक था, और बादमें उसके चाचा शकुनि का पोता अशोक ई.स.पूर्व १४४८ में राजा बना। वह गोनंदवंशका ४८वा राजा था।

हुलटझ राजतरंगिणी के श्लोक १-१०२ का संदर्भ देते हैं, पर उससे पूर्व के श्लोकमें उस अशोक की उपर दी हुई वंशावली को अनदेखा करते हैं! वह श्लोक ऐसा -

प्रपौत्रः शकुनेः तस्य भूषतेः प्रपितृव्यजः

अथाक्यत् अशोकारव्यो सत्यसंध्यः वसुंधराम् ।।

इसमें स्पष्ट कहने के अनुसार वह राजा अशोक शचिनार का चाचा, शकुनि का पोता था। राजतरंगिणी के अनुसार इस अशोक को बुद्ध धर्मगुरु 'बुधावतार' कहते थे। उसी ने श्रीनगर बसाया। विजयेश्वर और अशोकेश्वर ये दो शिवमंदिर स्थापित किए। उसके राज्यपर म्लेच्छों ने आक्रमण किया, और अपनी शांतिप्रियता के कारण वह राज्य का त्याग कर वन में भाग गया। पर बादमें उसके पुत्र जलौकने म्लेच्छों को पराभूत कर राज्य फिरसे प्राप्त किया। वह एक श्रेष्ठ शासक है जिसने 'ज्येष्ठवर' मंदिर स्थापित किया।

राजतरंगिणीमें इस 'धर्माशोक' के बारेमें दी गई जानकारी -थोड़े बहुत अंतरसे बुद्ध साहित्य के साथ मिलती है। श्रीसेनभी राजतरंगिणीके इस अशोक को अशोक मौर्य मानते हैं। पर ये दो अशोक परस्पर भिन्न हैं, यह सूरज की रोशनी जितना सत्य है।

पियादसी शिलालेख :

कुलमिलाकर उत्कीर्ण लेखों के स्थूलतः दो वर्ग हैं

(१) प्रमुख शिला आदेश, दो अलग कलिंग आदेश, साँत स्तंभलेख, और 'रानीका आदेश'

(2) द्वितीय स्तर के शिला आदेश, द्वितीय स्तर के स्तंभलेख और बारबरा गुफा लेख!

इनमेंसे प्रथम वर्ग के पूर्णतः अ-बुद्ध हैं। दूसरे वर्ग के (उपर उल्लेखित दो द्वितीय स्तरके स्तंभ लेखोंको छोड़कर) निश्चित बुद्ध धर्म के हैं। इसके अतिरिक्त इन दो वर्गों में कोई भी समानता नहीं है।

बहुतसे विद्वान कहते हैं कि, उत्कीर्ण लेखमें आनेवाले अशोक मौर्यने बुद्धधर्म का स्वीकार किया था, ऐसा नहीं दर्शाता। "We shall not treat of his public religion which he sought to present before his people negatively. We may say that it was to be identified with all of the then prevailing faiths of the country. It was certainly not Buddhism, his own religion."166) "We have here from him nothing concerning the deeper ideas or fundamental tenets of that faith, the chain of causation, the supernatural quality

of Buddha, the world and the idea of difference which occupied several sects are like-wise ignored" (Cambridge History of India, 1.P.505) इसलिए प्रमुख आदेश लेख बुद्ध धर्मीय अशोक के नहीं है ऐसा कहनेमें कोई संदेह नहीं है। बुद्ध साहित्य के अनुसार अशोक एक निष्ठापूर्ण धर्मप्रचारक था। अगर ये लेख उसके होते, तो उसने अपने प्रमुख आदेशोंमें बुद्ध धर्मके बारेमें कुछ भी नहीं कहा, यह कैसे हो सकता है? इन लेखों का कर्ता बुद्ध अशोक होता, तो उसने इन सार्वजनिक घोषणाओं का उपयोग अपने धर्म प्रसार के लिए न किया होता? श्री मानकड ठीक ही लिखते हैं, "Ashoka is known, from traditions, to have sent out missions to different countries for the propagation of Buddhism. Is it then believable that such a staunch Buddhistshould in the general broadcast (by means of these inscriptions) to his subjects and others, studiously avoid all references to Buddhism?" (D.R. Mankad, Puranic Chronology). (परंपराके अनुसार बुद्धधर्मके प्रचारार्थ बहुत से देशोंमें प्रचार करनेवालोंको भेजा था। फिर ऐसा पक्का बुद्ध अपनी प्रजा और अन्यो के लिए (इन उत्कीर्ण लेखाद्वारा) जाहीर घोषणाओंमें बुद्धधर्मका संदर्भ प्रयत्नपूर्वक संपूर्णतः टाल सकता है, इस बात पर कैसे विश्वास किया जाए।

चंद्रगुप्त मौर्यने म्हेसूर तक का प्रदेश जित लिया था। बादमें अशोकने केवल कलिंगप्रदेश को उनके साथ जोड़ कलिंग एक छोटासा देश था। पर फिर भी आदेश लेखामें कहा है कि, उस लड़ाईमें एक लाख लोगोंको बंदी बनाया गया और बहुत लोगों का नाश हुआ।

सीलोनी परंपराके अनुसार उसने अगले देशोंमें प्रचारकों को भेज दिया - "काश्मीर और गांधार, महिष्मंडल (म्हेसूर), बनवासी (उत्तर कॅनरा), अपरान्त (उत्तर मुंबई किनारा), महारट्ट (महाराष्ट्र), योन प्रवेश (उत्तर पूर्व प्रदेश), हिमवंत (हिमालय प्रदेश), सुवर्णभूमि और लंका (सीलोन)।" पर क्र. तेरहके शिलालेखमें प्रचारकों का अगले प्रवेश में भेजा गया, ऐसे कहा है। यवन, कांबोज, नमक, नभम्पति, भोज, पिन्निक, आंध्र और पुलिंदा और उसके राज्यके उत्तरके ओर के अतियोक्स और चार यवन राजा, और दक्षिणकी ओर के पांड्य, चोल, ताम्रपर्णी के संदर्भ प्राप्त होते हैं। इसमें यवन राज्यों को उत्तर की ओर दिखाया गया है, प्राच्यविद्याविशारद जिन्हें ग्रीक राज्य कहते हैं वे भारतवर्ष के पश्चिम की ओर हैं।

इससे प्रतीत होता है कि, पारंपारिक सूची में अंतियोक्स, ग्रीक राज्य और तमिल राज्योंका कोई संदर्भ नहीं है, और आदेशलेखोंमें हिमवंत, सुवर्णभूमि और लंकाका संदर्भ नहीं है।

व्ही. स्मिथ पारंपारिक सूचेमें ग्रीक राज्यों का संदर्भ क्यों नहीं मिलता इसका हास्यजनक कारण बताते हैं कि, वह सूची बनाने से बहुत सदियोंके पूर्व के राज्य नष्ट हो चुके थे। पर अगर परंपरा कालक्रमके

अनुसार बढ़ते हुए उस सूच में अंतर्भूत हुई तो यह महत्वपूर्ण संदर्भ वहाँ से कैसे लुप्त हो सकता है? तथापि उस सिलोनी सूची में तमिल राज्यों के अनुल्लेख के बारे में स्मिथ कहते हैं कि, सिंहली और तमिल के बीच की दुश्मनी के कारण हम पर जुल्म करने वाले पूर्वज हमारे धर्मबंधु थे यह स्वीकारना सिंहली लोगों के लिए कठिन हुआ होगा। परंतु तमिल और सिंहली लोगों के बीच की शत्रुता आधुनिक काल से शुरू हुई, उसका दो हजार वर्ष पूर्व बनाई गई सूची के साथ क्या संबंध? यह सिंहली भी कौन है? तीन-चार हजार वर्षों के पूर्व बिहार आदि भारतीय प्रांत से लंका में गए हुए भारतीय ही तो थे? उस समय बिहारी, सिंहली और तमिल ऐसा कोई फासला नहीं था।

पुराणों के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य ने आर्य चाणक्य की सहायत से अंतिम बार नंद को पराभूत कर मगध पर ३४ वर्ष राज्य किया। उसका राज्यकाल ई.स. पूर्व १५३४ से ई.स. पूर्व १५०० ऐसा है। वायुपुराण में (३-११-३३) कहा है-

चन्द्रगुप्तनृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति

चतुष्रिंशत् समाः राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ।।

और भी कहा है कि, उसका पुत्र बिंदुसार ३८ वर्ष और बिंदुसार का पुत्र अशोक २६ वर्ष राज करेगा। इन तीन राजाओं ने मगध पर कुल मिलाकर ८८ वर्ष राज किया। कुछ पुराणों में इनके राज्यकाल क्रमशः २४+३८+३ = ८८ ऐसे दिये हैं। हलट्ज़ भी इसे दूसरा राज्यकाल मानते हैं। इसके अनुसार यह तीन मौर्यों के राज्य वर्ष आगे बताए गए हैं:

चन्द्रगुप्त मौर्य - ई.स. पूर्व १५३४ से ई.स. पूर्व १५१० तक

बिंदुसा - ई.स. पूर्व १५१० से ई.स. पूर्व १४८२ तक

अशोक - ई.स. पूर्व १४८२ से ई.स. पूर्व १४४६ तक

इस प्रकार अशोक मौर्य के राज्यकाल के लगभग अंतिम समय पर ई.स. पूर्व १४४८ में काश्मीरी अशोक का राज्यकाल शुरू हुआ। उस काश्मीरी अशोक ने बुद्ध धर्म का स्वीकार किया था, उसने रूपनाथ और अन्य द्वितीय स्तर के शिलालेख बनाए। प्रमुख शिला और स्तंभ लेखों के कर्ता ख्रिस्त के लगभग देड़ हजार वर्ष पूर्व मगध पर राज करने वाले मौर्य वंश का अशोक था।

भारतीय इतिहास के विवेचनकार इन दो अशोकोंके बारेमें उलझ जाते हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। अशोक मौर्य बहुत विक्रमी और महत्वाकांक्षी राजा था, उसने कलिंगके साथ युद्ध किया, उसमें हुए भीषण संहारके कारण उसने बादमें शांति का मार्ग स्वीकृत कर अन्यौलोंके नैतिकताके मार्गसे अपनी ओर खींचने का प्रयास किया। पर उसने बुद्धधर्म का स्वीकार नहीं किया था। उसने किसीके साथ भी युद्ध नहीं किया, और अपनी शांतिप्रियता के कारण राज्य गवा दिया। ऐसा राजा अपनी सीमासे सेकड़ों मील दूर विदेशी राजाओं को नैतिकता और प्रजापालन का उपदेश का खुलेसे किए गए ऐलानों का पालन हो इसलिए वह अधिकारी कैसे नियुक्त कर सकता है?

बुद्ध लेखकोंने चंद्रगुप्त मौर्यका पोता और बिंदुसारका पुत्र अशोक का विक्रम और उसके नैतिकताविषय के आदेश इन सबके बारेमें कुछ जानकारी श्रवण करने पर उसे बुद्धधर्मीय माना। इसलिए बुद्ध-समाचार विश्वसनीय नहीं है। तथापि अशोक पहले बहुत क्रूर था और बाद में धार्मिक बना यह भी बुद्ध लेखकोंकी केवल कल्पना है। 'अशोकावदान' नामक बुद्धग्रंथ में केवल मौज के लिए हररोज सेकड़ों बेगुनाह लोगोंकी 'चंड गिरिक' के हाथों यह अशोक हत्या करवाता था, ऐसी कथा है। उस ग्रंथके संपादक स्वयं लिखते हैं कि, सत्यकथा न मानते हुए अतिक्रूर मनुष्यभी बुद्धधर्म के प्रभावसे कैसे दयालु बन जाता है यह दर्शन के लिए एक कल्पित कथा है, ऐसे स्वीकारना चाहिए। इस कथामें कुछ विशेषता नहीं है, क्योंकि आगे ऐसभी कहा है कि, इस अशोकने बुद्धधर्म स्वीकारनेके बावजूद (महावीरके शिष्योंको) हजारों आजीवकों को केवल इसलिए भेज दिया क्योंकि उन्होंने एक चित्रमें बुद्धको महावीर के आगे सिर झुकाते हुए दिखाया है। और इसका यह केवल एक ही उदाहरण नहीं है।

इसके अलावा, "अशोकावदान" में अशोक का जन्म बुद्धके निर्वाणके सौ वर्षों बाद का दिखाया है, उसकी वंशावली भी दी है। उसमें विभिन्न वंशोंकी मिलावट है, और चंद्रगुप्त मौर्य का उसमें बिलकुलभी नाम नहीं है। यह बुद्ध-वंशावली ऐसी: बिंबिसार-अजातशत्रू - उदयी मुंडा-काकवर्णी- सहली कुलकशी- महामंडल - प्रसेननित-नंद-बिंदुसार-सुशीम और अशोक (ब्राह्मणवर्ण की रानीसे जन्मा बिंदुसार नामक क्षत्रिय सम्राट का पुत्र) पौराणिक वंशावली बिंबिसार - उदयन - नंदिवर्धन - महानंदि- महापद्म नंद - आठ नंद - चंद्रगुप्त - बिंदुसार - अशोक ऐसे हैं, और विद्वानोंने यह स्वीकार कर लिया है। और एक बात ऐसी है, बुद्ध के वृत्तांत में कहा है, *"यदा पुष्यमित्रां राजा प्रघातितस्तदा मौर्यवंशः समुच्छिन्नः"* इसमें शुंभ वंशीय पुष्यमित्र को अंतिम मौर्य दिखाया है, परंतु पुराणों के अनुसार वह अंतिम मौर्य राजा का सेनापति था, और उस राजा का वध करने के बाद वह स्वयं राजा बन गया।

इस कथामें कलिंगके युद्ध का कोईभी संदर्भ नहीं है।

'महावंश' ग्रंथमें सिलोनके 'तिसा' को 'देवानाम्' 'प्रिय' ऐसे कहा है, अशोकका संदर्भ होते हुए भी उसे "देवानाम् प्रिय नहीं कहा है। स्मिथ और विंटरनिट्ज़ इस सिंहली बुद्ध साहित्यको अत्यंत अविश्वसनीय मानते हैं।

"महावंश (६-२४) में कहा है कि, अशोकने २५ साल की उम्रमें बुद्ध धर्म का स्वीकार किया, और (७-२७) वह पुर की उम्र में राजा बना। इसका 'अर्थ यह के बुद्धधर्म स्वीकारने के २९ साल बाद वह राजा बना। 'दीपवंश' (६-१) में कहा है कि, बुद्ध निर्वाण के २१८ सालों बाद अशोक राजा बना; अशोकावदन वह अशोक अपने वर्षका दर्शाता है। इसमें ऐसे भी कहा है कि, अशोक अपने सौ भाईयों को मारकर राजा बना, और ऐसेभी असंभाव्य विधान किए हैं कि, उस वक्तपे वह बीस सालका था और उसके पुत्र की उम्र चौदह साल थी।

और इस अविश्वसनीय समाचारों पर विश्वास कर भारतीय इतिहासके विवेचक दलील करते हैं कि, दूर लंकामे रहनेवाले इन समाचारों के लेखकों को बुद्ध के समकालीन राजा और बुद्धधर्मीय अशोक का कार्य ज्ञात था। वस्तुतः यह बुद्ध धर्मीय अशोक काश्मीरी था यह बात उन्हें ज्ञात न होने के कारण उन्होंने अशोक मौर्यकी वंशावली दी; पर वह भी सही से न देते हुए मौर्य वंश-संस्थापक चंद्रगुप्त का नाम निष्कासित कर दिया, और उन्होंने अपने मनचाही नामों को उस वंशावली में घुसेड़ दिया।

किसीभी बुद्ध समाचारों में कलियुद्ध अथवा अशोक के पस्तावे के बारेमें एक शब्द भी नहीं है। फिरभी वह दुष्ट था और बौद्ध धर्म स्वीकारने के बाद भी दुष्ट ही रहा ऐसा कहना बेबुनियास है। 'दीपवंश' में भरत राजाओं की वंशावली बिलकुल विपर्यस्त है। श्रीमती डेव्हिड्स अशोकावदान दीपवंश, महावंश और बुद्धबोधके समाचारों के बारेमें इस कहते हैं, " "They have worked only on popular legends. The main theme is to depict the national idol Dushta Gamini, as the Ceylonese hero conquering the invading hordes of the Tamils. What they say of other kings and Ashok amongst them, is only by way of introduction or of epilogue to the main story." (Buddhist India, p.186). (उसमें केवल लोगोंमें प्रचलित दंतकथाओं पर आधारित लिखा गया है। उसमें मुख्य विषय राष्ट्रीय पूज्य व्यक्ति 'दुष्टगामिनी' में आक्रमक तमिल टोलियोंके विजेताके रूपमें चित्रित करना है। जहाँ खास अन्य राजाओं का और उसमें अशोक का संदर्भ मिलता है वहाँ केवल वह मुख्य कथाके प्रास्ताविक अथवा समारोपात्मक स्वरूपमें होता है।")

१.६ यह सँझाकोट्टस कौन था?

अलेक्झांडरके बारेमें भी इतिहासकार 'सँझाकोट्टस' भारतीय राजाका संदर्भ देते हैं। उसके समाचार से यह स्पष्ट है कि, यह सँझाकोट्टस गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त है।

यह चंद्रगुप्त आंध्र राजा चंद्र श्री शातकर्णिके सेनापति और शालक ('राष्ट्रीय शालक') थे। उस राजाका अल्पवयस्क पुत्र पुलोमा तृतीय इस चंद्रगुप्त की देखरेमें था; पर उसने राजा की पत्नी के अनुमतिसे राजा चंद्र श्री को हटाकर अल्पवयस्क पुलोमा को मगधका राजा बनाया। आगे, चंद्रगुप्तने पुलोमाको अपने रास्ते से हटाकर ई.स. पूर्व ३२७ में खुदको राजा घोषित किया। यह चंद्रगुप्त अपने राजा का सिंहासन छिनने की वजहसे वह लोगोंके क्राधित होने के लिए कारण बना। उसका साम्राज्य लड़खड़ान लगा। आंध्र साम्राज्य के कुछ हिस्सों पर अधिकार बनाई रखने के लिए वह हमेशा संघर्ष करता रहा। उसने स्वयंको 'महाराजाधिराज' पदवी धारण कर 'विजयादित्य' कह के घोषित किया। उसका पुत्र समुद्रगुप्त बहुत विक्रमी था, और पुरे भारत पर उसने अधिकार जमाया।

अलाहाबाद के स्तंभलेखमें समुद्रगुप्त का अमात्य हरिसेन उसे 'पराक्रमांक' (साक्षात् पराक्रम) कहता है। उसने भारतमें केरल, कलिंग, दक्षिणापथ आदि बहुत प्रदेश और सिंहलद्वीप के लोगों को भी जिता था। नेपाल को छोड़ वह पूर्व के कामरूपसहित पुरे भारतवर्षका सम्राट था। व्हिन्सेंट स्मिथ उसे भारतीय नेपोलियन कहते हैं, और लिखते हैं, "By a strange irony of fate this great king -- warrior, poet and musician -- who conquered nearly all India and whose alliance extended from the Oxus to Ceylon, was unknown even by name to the historians of India. His lost fame has been slowly recovered by the minute and laborious study of inscriptions and coins during the last seventy years, and... it is now possible to write a long narrative of the events of his memorable reign." ("चमत्कृती पूर्ण रोक ऐसा कि जिसने लगभग सभी भारत वर्ष जिता और जिसकी मित्रता ऑक्सिससे श्रीलंकातक फैली हुई थी, ऐसा महान राजा योद्धा, कवि और संगीतज्ञ भारतवर्षके इतिहासकारों को नामसे भी अज्ञात था। उसकी लुप्त हुई कीर्ति अब पिछले सत्तर वर्षोंमें उत्कीर्ण लेख और सिक्को के सूक्ष्म एवं परिश्रमपूर्वक अध्ययन से धीरे धीरे खोजी गई, और ... अब उनके संस्मरणीय शासनकाल के अवसरों पर विस्तारको समाचार लिखना संभव हुआ है।") पर स्मिथ का कहना पूरी तरह से सत्य नहीं है। 'कलियुवाराजसमाचार' पुराणमें इस समुद्रगुप्त का बड़ा कधी पूर्ण वर्णन दिया है।

'स्वयं स्मिथ पुराणों के बारेमें कहते हैं, "The most systematic record of Indian Historical tradition is that preserved in the dynastic lists of the Puranas" (The Early History of India, P.4) ("भारतकी ऐतिहासिक परंपरा का अत्यंत शितिपूर्ण समाचार पुराणोंकी वंशावली सूचीचीमें लिख रखा है।") इसके साथ ही वे शिकायत करते हैं, "Modern European writers have been inclined to disparage unduly the authority of the Puranic lists, but closer study finds in them much genuine and venerable, inexhaustible, historical tradition" (p. 12). (आधुनिक युरोपीय लेखकोंके पौराणिक सूचीयोंकी प्रमाणता अनुचित तरिकेसे नकारने की तरफ झुकाव रहता है, पर सूक्ष्म अध्ययनसे उसमें बहुत वास्तविक, आदरणीय अभय, इतिहासिक परंपरा ज्ञात होती है।")

अर्थशास्त्र के कर्ता कौटिल्य (आर्य चाणक्य) नंद को पराभूत करनेमें और उसकी जगह चंद्रगुप्त मौर्य को स्थानापन्न करनेमें अग्रणी रहे। पुराणों के अनुसार यह घटना ई.स.पूर्व १५३४ में घटी। पर पाश्चिमात्य विद्वान इस चंद्रगुप्त को अलेक्ज़ांडर का समकालीन मानकर उस समय ई.स.पूर्व ३२६ तक आगे खिंचते हैं। और वे इस आधारपुर कि अलेक्ज़ांडर के साथ आए ग्रीक इतिहासकारोंसे उल्लेखित झंझामस, सँझाकोट्टस और सँझासायपटस ऐसे तीन एक के बाद एक हुए राजाओंमेंसे सँझाकोट्टसको वे चंद्रगुप्त मौर्य कहते हैं।

वुड्ल्यम जोन्सने पहली बार इस बात का जिक्र किया। परंतु इस बात का कोई भी आधार नहीं है। 'झंझामस के उच्चारण से चंद्रगुप्त मौर्य के पिता नंद धनानंद (महापद्मानंद) के उच्चारण के साथ कोई समानता नहीं है, और 'सँझासायटस' का 'बिंदुसार' के साथ कोई समानता नहीं है। इसके विपरित 'झंझामस' (गुप्तवंशके चंद्रगुप्त का राजा और शालक) चंद्रबीज अथवा चंद्रश्री के साथ उच्चारण समानता है, 'सँझासायटस और समुद्रगुप्त के बीच भी साम्य है। परंतु इन सब विधानों को स्वीकारने की जगह मैक्सम्युलर ने भी स्पष्टतापूर्वक कहा कि, सँझाकोट्टस और सँझासायटस यह एक ही राजाके नाम हैं और वह चंद्रगुप्त मौर्य है।

यह बुद्ध और पुराणोंके समाचारोंसे असंगत और कुछ विद्वानों को अस्वीकार है, इस बात का मुल्लर को एहसास था, पर फिरभी उन्होंने अपनी जिद नहीं छोड़ी। ग्रीक इतिहासकाराने सँझाकोट्टस और सँझासायटस नामक दो अलग अलग राजाओं के बारेमें संदर्भ दिया है, इस बात को भी अनदेखा कर दिया, और सँझाकोट्टस याने चंद्रगुप्त मौर्य इतनाही प्रतिपादन कर सँझासायटस नामक दूसरे राजा को अनदेखा करने का कोई भी कारण नहीं दिया है। यहाँ यह बात भी बतानी होगी कि, ग्रीक इतिहासकार चंद्रगुप्त मौर्यको मगधके सम्राट पदपर बिठाने वाले कौटिल्य के बारेमें कोई बात नहीं करते।

इस प्रश्नका निर्णय सैंड्राकोट्टस , चंद्रगुप्त मौर्य और गुप्तवंशीय राजाओं के बारेमें ग्रीक और पौराणिक प्रमाणों के आधारपर संभव है, इस बारेमें गौतम बुद्ध का काल निश्चित करना महत्वपूर्ण है।

१.७ बुद्धका काल:

बुद्धकाल के निर्णय हेतु हमें पुराणोंमें आनेवाली राजवंशावलीयों को देखना चाहिए। महाभारत युद्ध का दिन ई. स. पूर्व ३१३९ अक्टूबर आठ ही था, और युधिष्ठिर को हस्तिनापूरमें उस साल १७ दिसंबर को राज्याभिषेक हुआ यह हमने देखा है। गणना की सुविधा के लिए हम इसके बाद तुरंत शुरू होनेवाला ई.स.पूर्व ३१३८ महाभारत युद्धका और युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का वर्ष मान लेते हैं।

युधिष्ठिरने ई.स.पूर्व ३१०१ में (निश्चित दिन कालप्रारंभ के बाद फरवरी ई.स. पूर्व ३१०२ के बाद तुरंत आनेवाला हो सकता है।) राजत्याग के उपरांत परीक्षित राजा बना। उसने ६० वर्ष राज किया, और उसके बाद उसका पुत्र, जनमेजय सिंहासनपर विराजमान हुआ। इस वंशके आद्यपुरुष पुरुरवा थे इसलिए इसे पौरववंश कहा जाता है। इसबार उत्तर भारतमें तीन प्रमुख राजवंश थे। इक्ष्वाकु का सूर्यवंश, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। दुसरा पौरव वंश तिसरा (पौरव वंश की शाखा में) नहुषने आरंभ किया हुआ काशी-वंश नामक तिसरे वंश को महाभारत युगके बाद बहुत महत्व प्राप्त हुआ। उसकी राजधानी काशी (बनारस) थी; पर शिशुनागने (जिसके नामसे शिशुनागवंशका प्रारंभ हुआ) राजधानी वहाँ से मगध (आधुनिक बिहार) में गिरिव्रज को स्थलांतरित की। मत्स्य पुराण के अनुसार इन तीन वंश की वंशावलीयाँ आगे दी गई हैं। वायु, मत्स्य, भागवत, ब्रह्मांड, विष्णु और भविष्य पुराणमें भी थोड़ी बहुत फर्क से यह वंशावलीयाँ ऐसी ही दी हैं। पार्गिटर और जयस्वालने इन सूचीयोंका परिश्रमपूर्वक संकलन किया है।

१.८ पौरव वंश:

विष्णुपुराणमें परीक्षितको वर्तमान राजा कहा है। उसके बाद उसके पुत्र जनमेजय और बादमें क्रमशः अश्वमेघदत्त, अधिशीमकृष्ण और निचक्षु नामक राजा हुए। निचक्षु के समय हस्तिनापुर की गंगा में प्रलय आया, और उसने राजधानी कौसांबीको स्थलांतरित की। निचक्षु छठे क्रमांक का राजा था, इसलिए यह प्रलय ई.स. पूर्व २८०० के आसपास अर्थात् ई.स. पूर्व ३१०१ में परीक्षित के राज्याभिषेक के बाद उसके तीन सौ साल बाद, आया होगा। इसकी निश्चित स्वरूपकी कालगणना आगे दी है।

राजा परीक्षित के समय पुराणों के रचना की शुरुवात हुई ऐसा दिखाई देता है। वायु-पुराणमें अधिसीमकृष्ण को वर्तमान राजा दिखाया है, इससे वायुपुराण के रचनाकी शुरुवात उस राजा के समय शुरू हुई होगी।

निचक्षु के बाद इस वंशमें और अठरह राजा होने के बाद उदयन राजा बना। इस राजा पर अनेक कथाएँ हैं। महाकवि कालिदास सुप्रसिद्ध काव्य मेघदूत में कहते हैं, आज भी ज्येष्ठ लोग अपने पोता पोतियों को इन वीर राजाओंकी दिलचस्प कथाएँ इस प्रकार बताते हैं कि, जैसे वह अभी अभी गुजरा हो। यह राजा आगे उल्लेखित प्रद्योतका समकालीन हो सकता है। उदयन के बाद वहिनार दण्डपाणि और निरा मित्र राजाओंके बाद क्षेमक राजा हुआ। वह इस वंशका अंतिम राजा था। शायद इसके बाद उस वंशका कौशांबीका राज्य मगधके गिरिव्रजमें राज करने वाले वंश के राज्यमें समाविष्ट हुआ होगा।

परीक्षित के बाद कुलमिलाकर चौबीस राजा ओके बारेमें इस वंश की सूची में बताया है।

१.९ इक्ष्वाकूका सूर्यवंश :

महाभारत के युद्धमें राजा बृहत्बलके मारे जानेके बाद, इस वंशमें और चार राजा होने के बाद (बृहत्क्षय - उरीक्षय - वत्स वायु - प्रतिव्योम) दिवाकर राजा हुआ। इसके समयमें वायुपुराण की रचना हुई। यह पौरव वंश के अधिसीमकृष्ण के समकालीन था।

उसके बाद सहदव और पंदरह राजा (बृहदाश्व - भानुरथ - प्रतिताश्व - सुप्रतिक - मरुदेव - सुनक्षत्र - किन्नराश्व - अंतरिक्ष - सुशेन - सुमित्रा - बृहद्भ्रज - धर्मी - कृतंजय - रणांजय - संजय) हुए और बादमें शाक्य - शुद्धोधन - सिद्धार्थ - राहुल - प्रसेनजित - शुद्रक - कुलक - सुरथ और सुमित्र वंशजों के बाद (कुलमिलाकर तीस राजाओंका) यह वंश समाप्त हुआ। इसमें शुद्धोधनका पुत्र सिद्धार्थने प्रत्यक्ष सिंहासन पर बैठने की जगह वनमें निष्क्रमण किया और भगवान बुद्ध के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

१.१० मगध सम्राट :

बुद्धका काल निश्चित करने से पूर्व मगध राजवंश की सूची देखना आवश्यक है। वे अंदाजन दो हजार वर्ष पूर्व, (ई.स. पूर्व अंदाजन २१०० से ८२) भारतवर्ष के सम्राट थे।

इन मगध राजाओंमेंसे प्रथम वंश 'बार्हद्रथ' था। इसका आरंभ महाभारत युद्ध से कुछ शतकपूर्व राजा बृहद्रथ से हुआ। वह उपरिचर वसुका पुत्र था। इस वंशके जरासंधने श्रीकृष्णके समय मथुरा पर आक्रमण

किया। उसका पुत्र सहदेव महाभारतके युद्धमें मारा गया, उसने राजधानीको गिरिव्रजमें स्थलांतरित किया। वायुपुराणमें इस राजाका शासन काल ऐसे दिया है - सोमधि-५८, श्रुतश्रवा - ६४, अयुतायु (इसे मत्स्यपुराणमें अप्रतीप कहा है) - ३६, नरमित्र-४०, सुक्षेत्र-५८, बृहत्कर्मा - २३, सेनजित-५० कुल मिलाकर २७९ वर्ष।

सेनजितके समय इस वंशमें श्रुतजय (४०), विभु (३५), शुचि(५८), क्षेम (८३), विश्वजीत (३५) और रिपुंजय (५०) इतने राजा हुए। इनका यह शासनकाल वायुपुराण के अनुसार है।

सभी पुराण कहते हैं कि, इस वंशके कुल मिलाकर बाईस राजा हो चुके थे और उन्होंने मगधपर अंदाजन एक हजार साल राज किया। यह संख्या अंदाजन है, विभिन्न पुराणोंमें दी गई निश्चित, संख्याके बारेमें सोचने पर कुल मिलाकर १००६ वर्ष होते हैं। इस प्रकार महाभारत युद्धके बाद मगध का यह प्रथम राजवंश ई.स. पूर्व (३१३८-१००६) = २१३२ में समाप्त हुआ।

पौरव इक्ष्वाकु वंशका प्रभाव लुप्त होनेके उपरांत यह मगध वंश सर्वशक्तिशाली बना और मगधराजा भारतवर्ष के सम्राट कहलाने लगे।

विष्णुपुराण में कहा है-

“यः अयं रिपुंजयो नाम बार्हद्रथो अन्त्यः तस्य अमात्यः सुतिकः नाम भविष्यति।

स च एव स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रं प्रयोत नामानं अभिपेक्ष्यति” (४-२४-१,२)

इस के अनुसार बार्हद्रथ वंशके अंतिम राजा रिपुंजय की सुनीक नामक अमात्यने हत्या करके अपने पुत्र प्रयोत को (गिरिव्रज राजधानीमें) सिंहासन पर बिठाया। यह प्रद्योत बहुत विक्रमी राजा था और उसने अन्य राजाओं पर विजय प्राप्त किया। पुराणों के अनुसार अवंती (उज्जैन) को कीर्तिहोत्र नामक एक दुसरा प्रसिद्ध राजवंश था, प्रद्योतने उसेभी पराभूत किया। इसके वंशको 'प्रद्योत' वंश कहते हैं। इसके वंशमें प्रद्योत, पालक, विशाखयूप, सूर्यक और नंदिवर्धन राजा हुए, जिन्होंने मगधपर कुलमिलाकर १३८ वर्ष, इ.स. पूर्व (२१३२ - १३८ =) १९९४ तक राज किया।

नंदिवर्धनको काशी के उसके आधीन रहनेवाले प्रांतपति शिशुनागने पदच्युत किया; और स्वयं गिरिव्रजमें राजा होकर अपने पुत्र को काशीमें नियुक्त किया। मत्स्यपुराणमें कहा है

हत्वा तेषां यशः कृत्रनं शिशुनागो भविष्यति

वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम् ॥

“इस राजवंशकी प्रतिष्ठाको नष्ट कर शिशुनाग आएगा और स्वयं गिरिव्रजमें राजा बनकर अपने पुत्र को बनारस का अधिपति बनाएगा।” (पुराणोंमें भूतकालीन घटना भविष्य- रूपमें कथन करने की प्रथा है।) इस वंशको शिशुनाग कहते हैं।

शिशुनाग के बाद इस वंशमें काकवर्ण, क्षेमधर्म, क्षत्रोज, बिंबिसार, अजातशत्रू, दर्शक उदयन, नंदिवर्धन और महानंदि राजा बने। इन दस राजाओंने कुलमिलाकर ३६० वर्ष राज किया ऐसा वायु और विष्णु पुराण में कहा है। इसमें आनेवाले उदयन राजा अपने शासनकालके चौथे वर्ष पर गंगाके दक्षिण तटपर कुसुमपूर नामक भव्य नगर स्थापित करेगा, ऐसा पुराणोंमें कहा है। यह पाटलीपुत्र शहर है और इसका वर्तमान नाम पटना है।

कुछ पुराणों में बिंबिसार का नाम विधिसार बताया है। इस तरहसे यह वंश ई.स.पूर्व १६३४ में (१९९४-३६०) खत्म हुआ। इसे विष्णुपुराणमें आनेवाले अगले वचन से प्रबल किया जाता है। -

यावत्परीक्षितो जन्म यावत् नंदाभिषेचनम्

एतद् वर्ष सहस्रं तु ज्ञेयं पंचशतोत्तरम् ॥ (४-२४-१०४)

इसमें कहा है कि परीक्षितके जन्म से शिशुनाग वंश के बाद आनेवाले नंदवंश के नंद राजा के अभिषेक तक पंधरासौ वर्ष बीत चुके थे। पार्गिटर इसमें 'पंचशतोत्तरम्' के स्थानपर 'पंचाशतोत्तरम्' पढ़ते हैं, इससे वर्ष-संख्या १०५० बन जाती है। यह प्राचीन भारतीय कालगणना पाचसौ वर्षोंसे कम करने का अनुचित प्रयास है। इसके अलावा इस कालखंडके वंशके और राजाओं के शासनकालों को एकसाथ जोड़कर वह संख्या १०५० नहीं बल्कि १५०० प्राप्त होती है। इस प्रकार शिशुनाग वंशका समाप्ति वर्ष ई.स. पूर्व १६३८ (३१३८-१५००) ऐसा है। यह पंधरासौ वर्ष यह एक उपरि संख्या होते हुए उसके कारण दिखनेवाला चार वर्षोंका फर्क (१६३४ की जगह १६३८) अनदेखा करने योग्य है।

इक्ष्वाकु वंशावली से दिखता है कि, सिद्धार्थ (जो बाद में बुद्ध बना) बृहत्त्वलसे क्रमशः चौबीसवा था। यह बृहत् महाभारत युद्धमें मारा गया था। बुद्ध धार्मिक साहित्यभी समर्थन करता है कि बुद्ध वंशके तेईसवे राजा शुद्धोधन का पुत्र था।

जब विश्वसम्मत शाक्यमुनि पुरा ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे, तब देवोंने आकाशवाणी की, "शुद्धोधन - पुत्रने परिवार का त्याग करके ज्ञानपंथ का अनुसरण करनेके कारण अब वह सात दिनोंमें बुद्ध बन जाएगा; 'प्रत्येक बुद्ध' ने देवों की वह वाणी सुनी और निर्वाण प्राप्त किया। इससे यह दिखाई देता है कि, बुद्धका शांतिपथ भारत में स्मरण से परे प्राचीन काल से प्रचलित था। पर जब बुद्धके नामपर उनके शिष्योंने एक नूतन धर्म की स्थापना की, तब वह (शांतिपथ) भारतमें जैसे बुद्धाने सर्वप्रथम प्रतिपादित किया ऐसा दर्शाकर उस शांतिपथको एक अलग अस्तित्व प्रदान किया। इस संप्रदायके पूर्व प्रचारकों को 'प्रत्येक बुद्ध' कहा है; और जब उन्हें प्रतीत हुआ कि, एक अन्य 'ज्ञानप्राप्त 'बुद्ध' उनकी सीख अधिक रीतीपूर्ण और नियमसे बद्ध हुई प्रतिपादित करने हेतु इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, तब उन्हें परमशांतिरूप निर्वाण प्राप्त हुआ। यह 'प्रत्येक बुद्धने निर्वाण प्राप्त किया' ऐसा अर्थ है।

इस बुद्धका पुत्र राहुल उस वंशमें पच्चीसवा है।

बुद्धके समाचारसे हमें यह ज्ञात होता है कि 'अजातशत्रू' (मगधके) सिंहासन पर बैठा तब (गौतम) बुद्ध ७२ वर्ष के थे, पर फिरभी उसकी प्रतिभा उज्ज्वल एवं स्पष्ट प्रकाशित थी।

हम यह भी देख चुके हैं कि, अजातशत्रू शिशुनाग वंशके (क्र. ४ के) क्षत्रोज (कुछ पुराणों के अनुसार क्षेमजित) का पोता और बिंबिसार का पुत्र था। शिशुनाग अपने राजा महानंदी को हटाकर ई.स. पूर्व १९९४ में मगध सिंहासन पर बैठा। उसके वंश में से कुल मिलाकर दस राजाओं का काल कुछ पुराणों में भले ही ३६२ वर्ष दिया हो, फिर भी अधिकतर पुराणों में ३६० वर्ष बताया है। इसप्रकार कुल मिलाकर ३६० वर्ष का काल मानते हुए विभिन्न पुराणोंमें दस राजाओं के जो शासन काल प्रतिपादित किए हैं, उनसे अगले अंक बताए हैं। १. शिशुनाग - ४० वर्ष; २. काकवर्ण - ३६ वर्ष; ३. क्षेमधर्मा - २६ वर्ष; ४. क्षत्रोज (क्षेमजित) - ४० वर्ष; ५. बिंबिसार ३८ वर्ष; ६. अजातशत्रू - २७ वर्ष; ७. दर्शक - ३५ वर्ष; ८. उदयन - ३३ वर्ष; ९. नंदिवर्धन - ४२ वर्ष; १०. महानंदि - ४३ वर्ष।

पुराणोंके हस्तलिखित अंदाजन पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्थात् कलियुगके प्रारंभसे हमतक पहुँचे हैं। उसमें कलियुग की शुरुवातके बाद भारतमें राज करनेवाले विभिन्न वंशों के समयपर पुनर्लेखन कर आवश्यकता के अनुसार कुछ चीजे जोड़ी गई हैं।

इसके अलावा प्राचीन ग्रंथों की नकल करते समय कुछ लेखनमें गलतियाँ भी हुई हैं। पर महत्वपूर्ण बात यह है कि, इन सबके बावजूद पुराणोंमें एक स्पष्ट श्रृंखला है। राजा और राजवंशों के नाम, उनके शासनकालमें कुछ अपवादों को छोड़कर आश्चर्यजनक एकता है। और ये अपवादजनक असंगतियाँ जादा महत्वपूर्ण नहीं हैं, नकल उतारनेके कारण हुई यह गलतियाँ हैं, यह बात जायज है।

बुद्धकाल विषयक निष्कर्ष:

हमारे सामने यह स्पष्ट स्वरूपकी जानकारी है, शिशुनाग वंश का छठा राजा अजातशत्रू जब सिंहासनपर बैठा तब बुद्ध की उम्र ७२ साल थी। अजातशत्रू - से पूर्व इस वंश के पाँच राजाओंने कुल मिलाकर १८० साल राज किया, और इस वंश की शुरुवात ई.स.पूर्व १९८४ में हुआ। इसके अनुसार बिंबिसार का अंतिम वर्ष ई.स. पूर्व (१९९४ - १८० =) १८१४ है; और उसका पुत्र अजातशत्रू ई. स. पूर्व १८९३ में सिंहासन पर विराजमान हुआ। उस समय बुद्धकी उम्र ७२ साल थी। इसके अनुसार बुद्ध जन्मका वर्ष ई.स. पूर्व (१८१३ + ७२ =) १८८५ है। बुद्ध का साहित्य देखने पर यह ज्ञात होता है कि, बुद्ध का जीवन ८० साल का था। इसलिए उनका निर्वाण वर्ष ई.स. पूर्व (१८८५ - ८० =) १८०५ है। कुछ विद्वान बुद्धका जीवनकाल ई.स. पूर्व १८८७ से १८०७ का बताते हैं, यह दो सालोका फर्क शिशुनागवंश के पूरे वर्ष ३६० के स्थान पर ३६२ माननसे नजर आता है।

पुराणोंके स्पष्ट एवं निर्णयात्मक प्रमाणोंद्वारा बुद्धकाल इस प्रकार साबित होने के बावजूद, अनेक विद्वान वह प्रमाण नकारते हुए बेकार में अपने बेबुनियाद कल्पनाओंसे उलझनमें डालते हैं।

१.११ नंद वंश:

शिशुनाग के बाद नंदवंश आता है। विष्णुपुराण में कहा है –

"महानन्दिनः ततः शूद्रागर्भोद्भवो

अतिलुब्धो अतिबलो महापद्मो

नंद नामा परशुरामः इव अपरः

अखिल क्षत्रान्तकारी भविष्यति' (४-२४-२०)

शिशुनागवंश के अंतिम राजा महानंदी को शूद्र पत्नी से जन्मा पुत्र महापद्मनंद राजा बनेगा, वह अत्यंत लोभी और अत्यंत बलशाली होकर, जैसे द्वितीय परशुरामके समान सभी क्षत्रियोंका संहार करेगा। अन्य पुराणोंमें भी लगभग ऐसा ही कहा है। पुराणों के अनुसार यह नंद और उसके आठ पुत्रोंने कुल मिलाकर सौ साल (ई.स. पूर्व १६३४ से ई.स. पूर्व १५३४) मगधपर राज किया। विष्णुपुराण में आगे कहा है,

"महापद्मः तत्पुत्राव एकं वर्षशतं अवनिपतयः भविष्यन्ति ।

ततश्च नव एतान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति ।

कौटिल्यः एव चन्द्रगुप्तं उत्पन्नं राज्ये अभिषेच्यति" ।

"महापद्म (वायु और भागवत पुराणमें इनके राज्यवर्ष ५८ साल दिए हैं।) और उनके आठ पुत्र इस भूमीके सौ सालों तक राजा बनेंगे, कौटिल्य ब्राह्मण इन नौ नंदों को हटाकर चंद्रगुप्त को राज्याभिषेक करेंगे। 'इसमें आने वाले "उत्पन्न" शब्द पर श्रीधर स्वामी भाष्य करते हैं, "नन्दस्य एव भार्यायाम् मुरा संज्ञां संजातं इति" (महापद्मनंदका पत्नी मुरा से जन्मा)। इसमें मुरा शुद्ध थी, यह बात नहीं बताई है। पर महापद्म नंद के

अलग (अन्य पत्नी अथवा पत्नीयों से जन्मे) आँठ पुत्रों में से नंद राजा को अलग दिखाने के लिए, चंद्रगुप्त और उसके पुत्रपौत्रादियों को मौर्य नाम प्रदान किया गया।

उपर बताए गए उदाहरणों से यह स्पष्ट है, कि मुरा क्षत्रिय और महापद्मनंदकी विधिवत् विवाहिता थी, वह दासी अथवा शूद्र नहीं थी।

१.१२ मौर्य वंश :

बहुतसे पुराणोंके अनुसार मौर्य वंशमें बारह राजा हो गुजरे, और उनका काल कुलमिलाकर १३७ वर्षों का था। प्रत्येक राजा का काल फिरभी अलग अलग दिया है, जिन्हें मिलानेपर १३७ संख्या नहीं मिलती, उदा.- वायुपुराण के एक पाठ के अनुसार मौर्यवंशमें नौ राजे हुए और उस बात को कुलमिलाकर १३७ साल बित गए, पर उसी पुराण के अन्य पाठमें इन राजाओं की संख्या और उनके राज्यकाल आगे दिए हैं : १) चंद्रगुप्त - २४ साल; २) नंदसार (कुछ पुराणोंमें इसका नाम मद्रसार और कुछ पुराणोंमें बिंदुसार दिया है।) २८ वर्ष; ३) अशोक - ३६ साल; ४) कुलाल अथवा कुनाल (अथवा सुपर्श्व अथवा सुयश) - ८ साल; ५) बंधुपालित (अथवा दशरथ) - १८ साल; ६) दशोन - ७ साल; ७) दशस्थ - ८ साल; ८) सम्मति - ९ साल; ९) शालिशुक - १३ साल; १०) देव धर्म - ७ साल; ११) शतधर्मा - ८ साल; १२) बृहद्रथ - ७० साल। श्री. व्यं. केतकरके 'प्राचीन महाराष्ट्र' नामक ग्रंथमें उद्धृत किए हुए वायुपुराणके पाठानुसार इन बारह राजाओंने कुलमिलाकर २२६ वर्ष राज किया। पर इनमेंसे 'दशोन' नाम अन्य किसीभी पुराणमें नहीं मिलता। और तो और वहाँ भी प्रत्यक्ष शब्द ऐसे है **"दशोनः सप्त वर्षाणि"** इस वायुपुराणमें आनेवाले अन्य पाठमें उस स्थानपर **"दशमान इन्द्रपालितः"** (अर्थात् इन्द्रपालित दस वर्ष) ऐसा कहा गया है। और एक अन्य पाठमें **"दशसपजेन्द्र पालितः"** (इन्द्रपानित - सत्तर वर्ष) ऐसा बताया है।

इस पाठ में कहा है, **"चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति चतुर्विंशत् समाः राजा चन्द्रगुप्त भविष्यति"** ('कौटिल्य राजा चंद्रगुप्तको सिंहासन पर बिठाएगा और राजा चंद्रगुप्त चोबीस साल राज करेगा।") परंतु इसमें आनेवाला **'चतुर्विंशत्'** शब्द सही नहीं है, वह **'चतुर्विंशति'** अथवा **'चतुस्त्रिंशत्'** होना चाहिए इनमेंसे द्वितीय विकल्प कविताके बाद से सही मेल खाएगा। चंद्रगुप्तने उपर्युक्त उद्धरणोंमें कहे गए चोबीस सालोंके स्थान पर चौतीस वर्ष राज किया ऐसा दिखाई देता है।

यह सब ध्यानमें लेते हुए मौर्य वंशके राजा और उनका राज्यकाल आगे दिया हुआ है - १) चंद्रगुप्त - ३४ साल, २) बिंदुसार - २८ साल, ३) अशोक - ३६ साल, ४) सुयश - ८ साल, ५) दशरथ अथवा बंधुपालित - ८ साल, ६) इन्द्रपालित (मत्स्य और ब्रह्मांड पुराण के अनुसार) - ७० साल, ७) हर्ष - ८ साल, ८) संगति

अथवा संप्राप्ति: - ९ साल, ९) शालिशुक १३ साल, १०) सोमशर्मा अथवा देवशर्मा - ७ साल, ११) शतधन्वा - ८ साल, १२) बृहद्रथ (वायु और ब्रह्माण्ड पुराणके अनुसार) - ८७ साल; कुलमिलाकर ३१६ साल, इस प्रकार इस वंशने मगधके साम्राज्यापर ई.स. पूर्व ७५३४ से १२१८ तक राज किया।

कुमारी सी. मँबेल डफ ब्रह्माण्ड पुराणमेंसे एक पाठ का संदर्भ देती है जिसमें उपर बताए गए राज्य काल दिए हैं। पर इन्द्रपालिको छोड़ दिया है, चंद्रगुप्त के चोबीस और बिंदुसारके पचीस साल बताए हैं।

श्री एम. कृष्णमाचारीने इस कालगणनाको 'History of Sanskrit literature' नामक पुस्तकमें स्वीकृत किया है।

शुंग वंश:

विष्णुपुराणमें कहा है,

"तेषां अन्ते पृथिवीं दश शुंगा भोक्ष्यन्ति । (४-२४-३३)

पुष्यमित्रः सेनापतिः स्वामिनम् हत्वा राज्यं करिष्यति तस्य आत्मजः अग्निमित्रः।"

मौर्यके बाद दस शुंग वंशीय राजा पृथ्वी पर राज करेंगे, अंतिम मौर्य का सेनापति पुष्यमित्र अपने स्वामीकी हत्या कर राजा बनेगा और उसके बाद उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासनपर बैठेगा।' इस पुराणमें इस वंशके (राजाओंके) बादमें आनेवाले नाम आगे दिए हैं - सुज्येष्ठ, वसुमित्र, उदक, पुलिंदक, घोषवसु, वज्रमित्र, भागवत, देवभूति। इस सूची को सही बनाना जरूरी है। अग्निमित्रके दरबार में काम करनेवाले कवि कालिदासने अग्निमित्रके पुत्रका नाम वसुमित्र सूचित किया है। पर इस सूचीमें वसुमित्रके पूर्व राजा सुज्येष्ठ को दिखाया है। अन्य पुराणोंमें इन नामोंमें भी थोड़ा बहुत फर्क है, 'उदंक' के स्थानपर भद्रक अथवा आंधक नाम प्राप्त होता है। इस राजवंश के अन्य सिलसिलोंमें भी और ऐसे कुछ बदलाव हैं।

विष्णु और अन्य कुछ पुराणोंमें इस वंश का समय १३७ वर्षों का बताया है। पर मत्स्यपुराणमें वह तीनसो सालोंका बताया है। -

दशैते क्षुद्रराजानो भोक्ष्यान्तीमां वसुंधरां

शतं पूर्ण शते द्वे च ततः शुंगानामिष्यति॥ (२७०-३२)

इसमें शुद्ध शब्द स्पष्टतासे 'शुंग' के स्थानपर गलतीसे आयो है। और वैसे ही 'शुंगान' के स्थानपर 'कण्वान्' होना चाहिए। क्योंकि इससे अगले श्लोक में कहा है

अमात्यो वासुदेवस्तु प्रसह्य ह्यवनीं नृपः

देवभूमि अथ उत्साद्य कण्वस्तु भविता द्विजः ॥

'कण्व गोत्रका ब्राह्मण अमात्य वासुदेव ने राजा देवभूमी को हटाकर स्वयं वह इस भूमीका राजा बना।' इस प्रकार शुंग वंशका काल तीन सौ वर्ष (ई.स.पूर्व १२९८ में ई.स. पूर्व ९१८) है।

पुराणोंका सूक्ष्म अवलोकन करने पर इस वंशके अगले निजी राज्यकाल बता सकते हैं- १) अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ को हटाकर स्वयं मगध सम्राट बनने वाला उसका सेनापति पुष्यमित्र - ६० साल, २) अग्रिमित्र - ५० साल, ३) उसका वीर पुत्र वसुमित्र - ३६ साल, ४) सुज्येष्ठ - १७ साल, ५) भद्रक - ३० साल, ६) पुलिंदक - ३३ साल, ७) घोषवस्तु - ३ साल, ८) वज्रमित्र - २९ साल, ९) भागवत - ३२ वर्ष, (१०) देवभूति अथवा देवभूमि - १० साल।

इस प्रकार इस वंशका काल कुलमिलाकर तीन सौ साल, ई.स. पूर्व १२९८ से ९१८ तक का है।

शुंग वंशके अंतिम राजा देवभूमि मदिरा और मदिराक्षीके चक्करमें फँसकर कण्व ब्राह्मण अमात्य वासुदेवद्वारा पदभ्रष्ट किया गया। शुंगभी स्वयं (सामवेदीय) ब्राह्मण थे।

१.१३ कण्व वंशः

विष्णुपुराणके अनुसार इस वंशमें चार राजा हुए - वासुदेव, भूमिमित्र नारायण और सुशर्मा, इनका पुरा राज्यकाल ४५ वर्ष कहा गया है। “कण्वायनः चत्वारः पंचचत्वारिंशत् वर्षाणि भूपतयः भविष्यन्ति” पर उनके अन्य पाठमें कहा गया है- “एते चत्वारिंशत् कण्वायनः चत्वारः पंचचत्वारिंशत् वर्षाणि भविष्यन्ति”; इसके अनुसार उनका राज्यकाल $४०+४५ = ८५$ वर्षोंका था। भागवतपुराणमें कहा है (१-१-२१)

कण्वायनः इमे भूमिं चत्वारिंशत् च पंच च

शतानि त्रिणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥

इस श्लोकके दूसरे पंक्तिका अर्थ ऐसा है कि, कण्व ४५ + ४० = ३४५ साल राज करेंगे, यह स्पष्टतासे गलत है। इसलिए इस पुराणके 'पदरत्नावली भाष्यमें उन पंक्तियोंकी जगह पर ऐसी पंक्ति दी है, “चत्वारिंशत् च भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे” ('और कलियुगमें वे और चालीस वर्षोंतक राज करेंगे। इसका अर्थ यह है कि, कण्वका काल कुलमिलाकर भागवत पुराणके अनुसार $४५+४०= ८५$ वर्षका था। तीनसौ वर्षोंके संदर्भ की वह द्वितीय पंक्ति यहाँ गलतीसे जोड़ी गई है। वह तीनसौ सालों का शासनकाल स्पष्टतासे प्राचीन शुंग वंशीयों का था।

मत्स्यपुराण इस वंशके कुलमिलाकर ८५ साल बताते हैं, इसके उपरांत आंध्र आएँ ऐसा कहते हैं। मत्स्यपुराणमें आनेवाला इससे संबद्ध श्लोक ऐसा है

एते प्रणत सामन्ताः भविष्यन्ति सुधार्मिकाः

तेषां पर्याय काले तु भूमिः आन्धान्गामिष्यति ॥

इस वंशके राजाओंके शासन काल ऐसे है - १) वासुदेव - ३९ साल; २) भूमिमित्र - २४ साल; ४) नारायण - १२ साल; और सुशर्मा - १० साल।

"कलियुगराजसमाचारमें इन चार राजाओं के अलग अलग शासनकाल देते हुए कहा है कि, अंतिम कण्व राजा सुशर्माको उसका सेनापति मारकर खुद राजा बना। वह शातवाहन वंशका था और उसका नाम सिंहक (अथवा श्रीमुख) स्वातिकर्णी था। इसप्रकार कण्वोंने ई.स. पूर्व ९१८ से इ.स. पूर्व ९८३३ तक राज किया।

यह 'कलियुग - राजवृत्तान्त' भविष्योत्तर पुराणका एक छोटासा हिस्सा माना जाता है, और वह संदर्भग्रंथके तौर पर बहुत उपयुक्त है। उसमें विभिन्न पुराणोंमें आनेवाले विधान यथासंभव आपसमें मिलाकर महायुद्धके समाप्तीसे सभी राजाओंके बारेमें सुयोग्य समाचार दिये हैं। क.रा.वृ. विश्वसनीय है क्या ?

क्या "कलियुग - राजवृत्तान्त" (KRV) असली है ?

पर आंध्रवंशीय और उनके बादमें 'आनेवाले 'आन्ध्रभृत्य' उर्फ 'गुप्त' के वंशावलीयो पर सोचने से पूर्व वहाँ क.रा.वृ. के सच्चाई पर लिए गए आक्षेपके बारेमे बातचीत करना जरूरी है।

श्री. मुजुमदार कलियुगराज वृत्तांत में आने वाले एक "अनुच्छेद" को बनावट मानते हैं। वे उसके लिए कारण देते हैं कि, क-रा-वृ-में गुप्तवंशके बारेमें दिया हुआ सिलसिला गुप्तकालीन सिक्के और ताम्रपत्रों से इतना अधिक मिलता जुलता है कि, वैसा अन्य किसी भी पुराणोंमें आने वाले वंशावलीके बारे में नहीं नजर आता। पर यह आक्षेप विचित्र है। क.रा.वृ. में आनेवाले सिलसिले के बाह्य प्रमाणोंसे ठीक मिलता है, इसमें गलत क्या है? वह वैसा नहीं मिल पाता तो उसकी सच्चाई पर संदेह करना सही साबित होगा और यह बनावट रचना किसने और किस उद्देश्यसे की होगी उसके बारेमें पूछताच करनी पड़ती।

उपर देख चुके हैं कि, विभिन्न पुराणों के अलग अलग पाठोंके आधार पर एक सुयोग्य समाचार लिखने से पहले विभिन्न पौराणिक वृत्तांतोंका संशोधनपूर्वक समन्वय करना जरूरी है। इन सब समाचारोंमें आने यथासंभव एकसूत्रता प्रस्थापित कर अपने प्राचीन इतिहास का एक सुयोग्य समाचार खड़ा करने के लिए असंगतिक स्पष्टीकरण देकर आपसी विरोध दूर करना चाहिए। यही काम क.रा.वृ. के रचयिता ने किया है। विभिन्न पुराणों का अवलोकन करते समय उनके सामने भी अनेक परस्पर असंगत पाठ और उसके साथ पोथीन कलाकारों की गलतियाँ और खामियाँ उतरी होगी। उसने विभिन्न पुराणों के अलग अलग पाठों पर गहराई से सोच विचार कर 'कलियुगराज वृत्तान्त' नामक रचना का निर्माण किया।

श्री. के. वेंकटाचलम कहते हैं कि, क.श.वृ. के प्रथम प्रकाशनके बाद प्राप्त हुए सिक्कोंके प्रमाण उस वृत्तान्त की सच्चाई बताते हैं। वे उसमें आने वाला अगला श्लोक उद्धृत करते हैं

अष्टाविंशति वर्षाणि शकसेनो भविष्यति

यं आहुः मादरीपुत्रं शिवस्वातिं महाजनः ॥

'जिसे विद्वान शिवस्वाति' अथवा 'मादरीपुत्र' कहते हैं. "उस शकसेनने २८ साल राज किया।

इस बारेमें सन १९४० में नागपुर के डॉ. वा. वि. मिराशी लिखते हैं, there was an alternative name 'Shri Saka Satakarni', for king (of the name) 'Siva-Swati' was not known to us, till the discovery of the treasure trove" (1525 coins of the Satavahana kings discovered in the Akola district Maharashtra). "The name 'Saka-Satakarni' is not found in any of the Puranas. In the Kaliyuga Raja Vrttanta published by Shri. T. S. Narayana Shastry more than 25 years before the discovery of the treasure trove, we find the two other names of 'Śiva-Swati' namely 'Sakasena' and 'Madhariputra'. So the KRV published by T.S. Narayana Shastry could not be a fabrication. He must be in possession of the very ancient treatise." "On these seals we find 'saka' or (Sakas') Saatakanisa'. We have to examine the relation between these seals and the seals bearing the names 'Madhariputra', 'Śivalakura'. On the seals 'Saka śatakarni' we find the figure of the elephant usually found on the satavahana seals."(?)

(" शिवस्वाति राजाका श्री. शक शातकर्णी ऐसा दुसराभी नाम था। यह हमें खजिना (अकोला जिलेमें प्राप्त हुए सातवाहन राजाओं के १५२५ सिक्कों का संग्रह) प्राप्त होने तक ज्ञात नहीं था।

शक सातकर्णी नाम कौनसेभी पुराणमें प्राप्त नहीं होता! इस खजाने की खोजसे पचीससे भी अधिक वर्ष पूर्व श्री नारायण शास्त्रीने प्रकाशित किए हुए कलियुगराज वृत्तान्तमें हमें शिवस्वाती की शकसेन और मादरी पुत्र ऐसे और दो नाम प्राप्त होते हैं। इसलिए नारायण शास्त्री द्वारा प्रकाशित किया कलियुगराजवृत्तान्त बनावट नहीं हो सकता। उनके संग्रहमें एक बहुत प्राचीन ग्रंथ होना चाहिए।"

"इन मुद्राओं पर 'सक सातकनिस' प्राप्त होता है। इन मुद्राओं का 'माढरी पुत्र' 'शिवकुलर' नाम लिखे हुए मुद्राओं से क्या संबंध है यह देखना होगा। 'शक शातकर्णी' मुद्राओं पर प्रायः शातवाहन मुद्राओं पर दिखनेवाले हाथीका चित्र मिलता है।)

'लूडर सूची' के एक पत्थर पर उत्कीर्ण किए हुए लेख पर भी 'माधरीपुत्र' 'श्रीवीर' 'पुरिशदत्त' ऐसी पंक्ति, प्राप्त होती है। 'माधरीपुत्र सिवलकुर' ऐसे उत्तीर्ण की हुई एक मुद्रा भी प्राप्त हुई है; उस पर 'गौतमीपुत्र' ऐसा शब्द भी दिखाई देता है। इसके अनुसार 'लूडर सूची' और क.रा.वृ. के अनुसार शिवसातकर्णी, सकसातकर्णी, माधरीपुत्र ये सब शिवस्वाती के दुसरे नाम हैं, गौतमीपुत्र उसका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

मुजुमदारके अनुसार क. रा.वृ. में अगली दो गलतियाँ स्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं -

१) उसमें समुद्रगुप्तको पिता का कातिल कहा है, पर अलाहाबाद के स्तंभलेख से पता चलता है, कि उसे उसके पिताने राजा बनाने के लिए चुना था।

पर इसके विपरित एक मुद्दे पे ध्यान देना होगा! अगर यह एक आधुनिक बनावट रचना होती तो उसके लेखक ने तत्कालीन लिखित प्रमाण के खिलाफ ऐसा भ्रूषण आरोपयुक्त विधान न किया होता। इसलिए यह रचना बनावट नहीं है। इसके विपरित जिस समुद्रगुप्त की क.रा.वृ. का लेखक बहुत प्रशंसा करता है, उस राजा का केवल देशकी ही नहीं बल्कि विदेश के राजा भी सम्मान करते थे, उसीके बारे में इस लेखक ने घृणभरा विधान न किया होता। वह राजा संगीत, साहित्य और ललित कलाओं का आश्रयदाता था। इसलिए ऐसा दिखाई देता है, क. रा. वृ. के कर्ता के पास समुद्रगुप्त के बारे में ऐसा विधान करने के लिए पर्याप्त प्रमाण होना चाहिए, वह अब नष्ट हो चुका है। अलबेरीनी अपने ग्रंथ में कहते हैं कि, गुप्त राजा प्रबल और दुष्ट थे।

समुद्रगुप्त का पूर्व के समय पिताने सिंहासन पर अधिकार नकारने के बावजूद पिता के हुक्म के मुताबिक वह पिता के जीवितकाल में अथवा पिता के मृत्यु के बाद तुरंत सिंहासन पर विराजमान हुआ ऐसा लिखकर उस उत्कीर्ण लेखने समुद्रगुप्त के बड़े दुष्कृत्य को ढक दिया गया है।

अपने ऐलानों में भी समुद्रगुप्त अपनी प्रजा को बड़ों का सम्मान करने का आदेश देता है। लोगो पर भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपरा से प्रभावित करने का उसने पूरा प्रयास किया है। ऐसा भी हो सकता है, अपना ज्येष्ठ बंधु शासन चलाने के लिए असमर्थ देखने पर उसे सिंहासन से हटाने के लिए स्वयं समुद्रगुप्त को परंपरा से विपरित मार्ग स्वीकारना पड़ा होगा।

२) मजुमदार का दूसरा आक्षेप ऐसा है, "The authentic Puranas such as MATSYA, VAYU etc. mention Shri Parvatiya Andhras but regard them as different from the Guptas.

Shri Pravata is mentioned in the Puranas and is the name of a lofty rock which overhangs the river Krishna." (वायु आदि अधिकृत पुराणोंमें भी 'श्री पर्वतीय आन्ध्र' का संदर्भ मिलता है, पर उन्हें गुप्तोंसे भिन्न माना गया है। पुराणोंमें श्रीपर्वतका संदर्भ है और वह कृष्णा नदी के पास का एक बड़ा पत्थर है।") इसमें मजुमदार ऐसा सूचित करते हैं कि, 'श्रीपर्वतीय आन्ध्र' विशेष आन्ध्रप्रदेशके राजा थे और मगधमें शासन करने वाले सम्राट नहीं थे, वह आन्ध्रकृत्य अर्थात् आन्ध्र सम्राटों के मांडलिक थे। यह श्रीपर्वत याने आंध्र प्रदेशका श्रीशैल पहाड़ है; और इसलिए थे, 'आन्ध्रभृत्य' क-रा-वृ में कहा है वैसे गुप्तवंशीय नहीं हैं। मजुमदार जानते हैं, कि अग्निपुराणमें श्रीपर्वत कावेरी नदीपर है, ऐसा कहा है। परंतु उनका आंध्र प्रदेशमें स्थान देखते हुए मजुमदारा स्पष्टतासे मान लेते हैं कि, 'श्री पर्वतीय आन्ध्र' अर्थात् 'आन्ध्रभृत्य' है, वे आन्ध्रप्रदेशमें विशेष स्थानपर रहते थे। और आंध्रभृत्य गुप्तवंशीय नहीं हो सकते। यह मजुमदारका प्रतिपादन है।

पर इसमें गड़बड़ इसलिए हो रही है क्योंकि आंध्रभृत्य अर्थात् गुप्तोंको भी (नेपालके) श्रीपर्वतीय कहा जाता था। 'श्रीपर्वत' नामक पहाड़ आन्ध्रप्रदेश में होनेपर भी उस नामका 'श्रीपर्वत' नेपालमें भी है।

मजुमदारोंके अनुमान निराधार है। पुराण और क-रा-वृ में भारतके सम्राटके रूपमें मगधमें राज करने वाले आन्ध्र वंशको सातवाहन और शतकर्णी के नाम दिया गया है। परंतु भारतीय इतिहासज्ञ उन राजाओंका अस्तित्व अस्वीकार करते थे। बाद में जब उनके कुछ सिक्के अथवा उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए तब उन विद्वानोंको पौराणिक वचनों पर विश्वास करना पड़ा। इसलिए उसके बारेमें सिक्कोंके और उत्कीर्ण लेखोंके बाद वे पुराणों में और क. रा. वृ. में संदर्भ दिए गए,; ऐसा नहीं कह सकते और इस प्रकार इस बारेमें भी उत्कीर्ण लेख और सिक्कोंसे प्राप्त हुआ सिलसिला देखनेपर बादमें क-रा-वृ की बनावट रचना की गई ऐसान ही कहा जा सकता।

मत्स्य पुराणामें आन्ध्र सम्राटके वंशके बाद तुरंत आनेवाले एक राजवंश का संदर्भ है।

"आन्ध्राणां संस्थिता राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः ।

सप्तैवान्द्राः भविष्यन्ति दशाभिरःतथा नृपाः" (२७३-१७)

"आन्ध्र शातवाहन वंशके बाद साँत उनके भृत्य-आन्ध्रभृत्य राज करेंगे, तथापि दस अभिर राजा उनके अभिर राज्य में "शासन करेंगे।")

विष्णुपुराणमें भी ऐसा कहा है, "आन्ध्रभृत्याः सप्त अबभिरप्रभृतयः दश" आंध्रों के बाद साँत आंध्रभृत्य और दस अभिर राज "करेंगे।" मत्स्य पुराणमें और भी आगे कहा है,

"आन्धाः श्रीपर्वतीयः शते द्वे च शतं समाः", श्रीपर्वतीय आन्ध्र तीन सौ साल आन्ध्र प्रदेशमें राज करेंगे।

इस प्रकार ये पर्वतीय आंध्र आंध्रभृत्योंसे अलग हुए। क्योंकि आन्ध्रभृत्योंने भारतसम्राट के तौरपर मगधमें, राज करनेवाले आन्ध्रवंश का स्थान लिया। इससे विपरित श्रीपर्वतीय आन्ध्र प्रत्यक्ष आन्ध्र प्रदेशमें राज करते थे। इसलिए श्री पर्वतीय आन्ध्र और आन्ध्रभृत्य के बीचका भेद समझना होगा। आन्ध्रभृत्य 'गुप्त' थे, पर मगधमें राज करते थे। उन्हें भी श्रीपर्वतीय कहते थे, क्योंकि वे नेपालके श्रीपर्वत से आए थे। पर ये श्रीपर्वतीय गुप्त श्रीपर्वत आन्ध्र नहीं है।

मगधमें राज करनेवाले आन्ध्र शातवाहन सम्राटोंके 'मांडलिक के तौरपर 'श्रीपर्वतीय आन्ध्र' आन्ध्रप्रदेशमें राज करते थे।

इस प्रकार पुराणोंने मगध सम्राट 'आन्ध्रभृत्य' और वर्तमान महाराष्ट्र के 'प्रतिष्ठान' नामक स्थानपर राज करनेवाले "श्रीपर्वतीय आन्ध्र" के बीच स्पष्ट भेद किया है। यह सच है कि, पुराण आन्ध्रभृत्यों को प्रत्यक्षमें 'गुप्त' नहीं कहते, पर उन्होंने स्पष्ट ऐसा स्वीकृत किया है, इसमें कोई शक नहीं। यह विल्सनके अगले विधानसे स्पष्ट होता है। "Inscriptions on columns of stones, on rocks, deciphered only of late years have verified the names of races and titles of princes the Guptas and the Andhra Rajas mentioned in the Puranas." (आजकल जिन्हें पढ़ा गया है ऐसे पत्थर और शिला के उत्कीर्ण, लेखों पुराणोंमें निर्दिष्ट गुप्त कुलके और आन्ध्र राजाओंके वंशका और नामाभिधानों का समर्थन किया है। स्पष्टतासे समुद्रगुप्त और उसके बाद आने वाले राजाओं का संदर्भ है। और इस प्रकार 'क-रा-वृ' में गुप्त और आन्ध्रभृत्य एक ही है, ऐसा दर्शाया गया है।

एते प्रणतसामन्ताः श्रीमद्रुद्रकुलोद्भवाः

श्रीपर्वतीयान्ध्रभृत्या नामानः चक्रवर्तिनः ॥

'अन्य राज्यों द्वारा सम्मानित यह आन्ध्रभृत्य के नामसे जाने जानेवाले गुप्तवंशीय राजा भारत के सम्राट थे। यह गुप्त मूलतः नेपालके श्रीपर्वत से आए थे, और आन्ध्रप्रदेश के श्रीपतीय आन्ध्रसे वे अलग थे। पुराणों

के प्रचलित पाठों में गुप्त और आन्ध्र राजाओं की सिलसिलेवार जानकारी नहीं दी गई है और गुप्तों का संदर्भ सरलता से केवल गुप्तवंशजा: ऐसे किया है और उन्हें प्रयाग एवं गंगा के आसपास के छोटे छोटे राजा कहा गया है। यह देखते हुए विलसन ने गुप्त राजाओं के नामका किया हुआ उल्लेख स्पष्ट सूचित करता है कि वे क. रा. वृ. जानते थे।

पुराणों में गुप्तों के बारे में कम संदर्भ होने का एक कारण है। ज्यादातर सभी पुराणों का अंतिम लेखन आद्य शंकराचार्य के महाप्रयाण के बाद (ई.स. पूर्व ४७७-७६ के बाद) तुरंत समाप्त हुआ। आचार्यने बुद्धको जगत्पालक भगवान विष्णुका अवतार मानने का मार्ग खुला किया था। इस प्रकार भारत को प्राचीन धर्म की और संस्कृति की पुनःस्थापना हुई थी, और साधारण जनता को वैदिक चिंतन स्पष्ट करने की अधिक जरूरत भी नहीं बची। इसके बाद राजकीय इतिहास लेखन संबंधी दरबारियों के अधिकारियों पर सौंपा गया, और उस क्षेत्र में पुराणकारों के लिए कुछ कार्य शेष नहीं रहा। फिर भी शकारीय विक्रमादित्य से पूर्वका गुप्तवंश महत्वपूर्ण होने से उसे पुराणों में उल्लेखित किया गया है।

(3) मजुमदारका तिसरा आक्षेप ऐसा कि, का-रा-वृ में 'स्थित 'गुप्त' का संदर्भ उस रचना को बेशक बनावट साबित करता है। डॉ. मिराशी 'उस वृत्तान्त को वास्तव रचना मानते हैं, यह उपर बता चुके हैं, पर मजुमदार इस बात को अनदेखा करते हैं। इस आरोप पर सोच विचार करते हैं। क-रा-वृ गुप्तों की यह वंशावली देते हैं -

१) श्री गुप्त, २) घटोत्कच, ३) चन्द्रगुप्त प्रथम, 'विजयादित्य' जिसने ई.स.पूर्व ३२८-३२१ सात सालों तक राज किया: ४) समुद्रगुप्त 'अशोकादित्य', ई.स.पूर्व ३३१-२६१, इक्यावन साल, जिसने अश्वमेध यज्ञ कर खुद को भारत-न सम्राट घोषित किया। यह शुरुवात में कूर शासक था फिर भी बहुत प्रतिभासंपन्न राजा था, ५) द्वितीय चंद्रगुप्त 'विक्रमादित्य बहुत बलशाली था और उसने गांधार (वर्तमान अफगाणिस्तान) के पासका बाल्हिक देश जिता था। इसने ३६ वर्ष याने ई.स.पूर्व २६९ से २३३ तक राज किया। ६) कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य: ४२ साल, ई.स. पूर्व २३३ - १९१; ७) स्कंदगुप्त 'पराक्रमादित्य', इसने दणों का खात्मा किया और २५ वर्ष, ई.स. पूर्व १९१-१६६ तक राज किया, ८) उसे पुत्र न होने से, उसने अपने सौतेले भाई स्थिर गुप्त के पुत्र नृसिंहगुप्त को गोद लिया; नृसिंहगुप्त 'बलादित्य ने ४० सालों तक ई.स. पूर्व १६६-१२६ तक राज किया, ९) गुप्तसम्राट वंश का अंतिम कुमारगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य इसने ४४ वर्ष, ई.स. पूर्व १२६ - ८२ तक राज किया।

पुराण और क-रा-वृ में दिया हुआ यह प्रथम चंद्रगुप्त से सात राजाओं तक का सुयोग्य इतिहास है। इस सूचीमें से पहले दो श्रीगुप्त और घटोत्कच मगध सिंहासन पर नहीं बैठे थे।

मजुमदार ऐसा आक्षेप लेते हैं कि क-रा-वृ में बताई गई सुयोग्य हकीकत उन्निसने शताब्दी के उत्तरार्ध में खोजे गए उत्कीर्ण लेखों के कारण ज्ञात हुई। परंतु यह आक्षेप बेबुनियाद है। उपर देखे गए के अनुसार क-श-वृ एक असली लेख है। जिसमें कहा है कि, गुप्त राजा आन्ध्रभृत्य थे। फिर भी मजुमदार इस बात को नहीं स्वीकारते। और समुद्रगुप्त अपने पिता चंद्रगुप्त प्रथम और अक्षम बड़े भाई कच को हराकर सिंहासन पर बैठा। (इस बातको भी मजुमदार नहीं स्वीकारते)

पर मजुमदार सबसे बड़ा आक्षेप इस बात पर लेते हैं कि. सिक्के और उत्कीर्ण लेख साबित करते हैं (उपर दिया हुआ क्र. ८) नृसिंह गुप्त के पिता का नाम पुरुगुप्त था, पर उससे पूर्व सिक्कों के गलत वचनों के कारण विद्वान वह नाम स्थिरगुप्त मानते थे, और तदनुसार सन १८९३ से १९०३ तक विद्वान स्थिरगुप्त नाम का स्वीकार करते थे। इसलिए मजुमदार कहते हैं कि, विद्वानोंमें स्थिरगुप्त नाम प्रचलित था उस सन १८९३ से १९०३ के काल में क-रा-व 'रचा गया होगा। अब विद्वान इस स्थिरगुप्त नाम के बारे में क्या कहते हैं यह देखते हैं।

गुप्तों के सिक्को पर आनेवाले अपने अनुच्छेद में व्हिन्सेंट स्मिथ कहते हैं कि. बुहलरने मुद्रापर वह नाम "स्थिरगुप्त, ऐसे पढ़ा, और कनिंगहमने वह स्वीकार किया; पर हॉनले ने उस मुद्रापर सर्वप्रथम वह पुरुगुप्ता ऐसे पढ़ा, और बादमें प्रायः वह सर्वसम्मत होने के बाद स्मिथ ने १९०४ में प्रकाशित अपने पुस्तकमें उसे स्वीकारा और अभी अभी प्राप्त हुए नलंद के सिक्कों से ज्ञात होता है कि वस्तुतः वह नाम पुरुगुप्त था, स्थिरगुप्त नहीं। मजुमदार ने उस स्थिरगुप्त 'नामके बारेमें हकीकत बताई है। पर इसमें उन्होंने पुरा सिलसिला नहीं दिया है।

क. रा. वृ. में कहने के अनुसार कुमारगुप्त के पुत्र स्कंदगुप्त निपुत्रिक थे, इसलिए उसने अपने सौतेले भाई स्थिरगुप्तका पुत्र नृसिंह गुप्त को गोद लिया। यह नृसिंहगुप्त (बलादित्य) पिता स्थिरगुप्त के रहते पाटलीपुत्रका सम्राट बना। इस प्रकार पितापुत्र दोनों भी साम्राज्यपर शासन करने लगे, और स्थिर गुप्त ने स्वयंको 'प्रकाशादित्य' उपाधिसे उपकृत किया।

स्कंदगुप्त की माँ अनंतदेवी और स्थिरगुप्त की आनंददेवी थी। सम्राट कुलकी परंपरा के अनुसार स्थिरगुप्त मांडलिक बना रहा और उसका दुसरा नाम पुरुगुप्त था। कुमारगुप्त का बुधगुप्त नामक और एक पुत्र था, वह भी पिता के मृत्यु के बाद सम्राट गुप्तोंका मांडलिक बना। पुराणों के अनुसार केवल सात आन्ध्रभृत्य सम्राटों के बाद साम्राज्य नष्ट हुआ। पुरानो में आनेवाली वंशावलीयों का अनुसरण करते हुए क. रा. वृ. बुधगुप्त का संदर्भ नहीं देते।

परंतु इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि, कोईभी मोहौर या सिक्को से स्थिरगुप्तने प्रकाशादित्य' नाम धारण किया था ऐसी जानकारी नहीं मिलती है। केवल क-रा-वृ में मिलती है।

खुद मजुमदार कहते हैं, "As regards Sthiragupta's title Prakasaditya, Hoernle was the first to suggest (in JASB 1889 Part 1 page 93) that this probably belonged to 'Purugupta'. Other scholars have accepted this suggestion as reasonable, though definite evidence is lacking, but 'Allan' regarded it as highly improbable in his catalogue of Gupta coins published in 1913.

"इसमें मजुमदार के कहने के मुताबिक हॉर्नले सबसे पहले सन १८८९ में सुझाव दिया कि, स्थिरगुप्त की 'प्रकाशादित्य' नामक उपाधि शायद पुरुगुप्त की हो सकती है। पर इसपर सवाल यह खड़ा होता है कि, क-रा-वृ में से यह जानकारी लिए बिना हॉर्नले को अन्यत्र कहासे प्राप्त हुई होगी?

के. वेंकटाचलम कहते हैं, "An attempt was made centuries back in our country to study critically the accounts of the dynasties of the kings of Kali given in our Puranas, to detect and amend the errors due to ignorant scribes, and misreading and misinterpretations by malicious and biased interpreters, and to evolve a valid and authoritative account of the dynasties of the kings of Kali based on the maximum agreement among the varying texts of the different Puranas. The result of this exhaustive and critical enquiry was published in the Sanskrit language in the form of a treatise entitled Kaliyuga Raja Vrittanta. In this treatise a connected and consistent account of the history of our country down to the eighth century after Christ has been given in detail based upon our Puranas and in agreement with the references in them to the movement of the Great Bear (Saptarshi Mandal).

"बहुत सदियों पहले अपने देशमें पुराणों में वर्णित कलियुगीन राजवंश के समाचारों का अध्ययन कर, नासमझ प्राचीन ग्रंथकारों ने की हुई गलतियाँ और द्वेषपूर्ण पूर्वग्रह से ग्रस्त भाष्यकारों ने प्रचलित किए हुए अपपाठ और दोषपूर्ण स्पष्टीकरण खोजकर उन्हें सुधारने के पत्र विभिन्न पुराणों के अलग अलग पाठों के आधारपर यथासंभव एकसूत्रता कायम रखते हुए कलियुग काल के राजवंशका यथार्थ अधिकृत समाचार बनाने का प्रयास किया गया। इस विस्तृत और चिकित्सा पूर्ण संशोधन का अनुमान संस्कृत भाषा में

'कलियुग' राज वृत्तान्त नामक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया गया। इस ग्रंथ में अपने पुराणों पर आधारित और उसमें उल्लेखित सप्तर्षि मंडल के गती से मिलनेवाला, अपने देशका ख्रिस्तोत्तर आठवीं शताब्दी तक का सुसंबद्ध सुयोग्य इतिहास विस्तार से बताया है।)

ऐसा ग्रंथ बनावट नहीं हो सकता। अस्तु, हम, अब आन्ध्रवंश के कालगणना की तरफ फिरसे बढ़ते हैं।

आन्ध्र सातवाहन वंश :

ऊपर बताने के अनुसार अंतिम कण्व सम्राट सुरामकी उसके सेनापति शिमुखने स्थान से हटाया और शिमुख खुद राजा बना।

मगध के इन आन्ध्रवेशीय सम्राटों को पुराणों में सात वाहन और सातकर्णी कहा है। प्राप्त हुए उत्कीर्ण लेखों में भी यह नाम मिलते हैं और इससे पुराणों को समर्थन मिलता है। 'साँत' अर्थात् सिंह और 'सातवाहन' अर्थात् सिंहों को अपना वाहन बनाने वाला। उनके निशानी पर भी यह चिन्ह है।

इन राजाओं के नाम और उनके शासनकाल आगे दिए गए हैं - (१) शिमुख २३ साल, (२) कृष्ण, शिमुखका कनिष्ठ बंधु, इसे कान्हा भी कहा जाता था, १८ साल, (३) श्रीमल्ल १० साल, (४) पूर्णोत्संग १८ साल, यह कलिंग वंशीय खारवेलका समकालीन है। (५) श्री शातकर्णी, ५६ साल, (६) स्कंद स्तंभिन १८ साल, (७) लंबोदर १८ साल, (८) अपितक १२ वर्ष, (९) मेघस्वाती १८ साल, (१०) शतस्वाती १८ साल (११) स्कंदस्वातिकर्णी १८ साल, (१२) मृगेन्द्रस्वातिकर्णी, ३ साल (१३) कुन्तला स्वातिकर्णी ८ साल, (१४) सौम्यस्वातिकर्णी, १२ साल (१५) शतस्वातिकर्णी एक साल, (१६) पुलोम प्रथम, ३६ साल (१७) मेघ ३८ साल, (१८) अरिष्ट २५ साल, (१९) हल ५ साल, (२०) मंदालक, पाँचसाल, (२१) पुरिन्द्रसेन, २१ साल, (२२) सुंदर, एक साल, (२३) चकोर, छह महिने, (२४) महेन्द्र, छह महिने, (२५) शिव २८ साल, (२६) गौतमीपुत्र २५ साल, (२७) पुलोम द्वितीय, वसिष्ठ पुत्र ३२ साल (२८) शिव ७ साल, (२९) शिव स्कंद ७ साल, (३०) यज्ञश्री १९ साल (३१) विजयश्री ६ साल (३२) चंद्रश्री ३ साल (३३) पुलोम तृतीय ७ साल ।

इस सूची में दिए गए क्र. १७ के मेघसे शेष सभी को 'शतकर्णी' नामक उपाधि थी। क्र. १९ का राजा, सम्राट हल, आदि शंकराचार्यका समकालीन था।

इन राजाओं के नामने और शासनकाल में विभिन्न पुराणों में कुछ फर्क है। पर उन सबमें राजाओं की संख्या कुल मिलाकर १९ से ३२ थी और अबका राज्यकाल कुलमिलाकर ४६५ से ५०६ वर्षों के बीच था। क-

रा-वृ में वह काल कुलमिलाकर ५०० वर्षका बताया है, पर यह एक उपरि संख्या है क्योंकि उसमें विभिन्न राजाओं के नामपर शासनकाल ५०६ वर्षों तक है।

मत्स्य पुराण में ३१ राजाओं के नाम दिए हैं जिससे 'मेघ' को लुप्त किया है, और सौम्यका शासनकाल नहीं बताया। तीस राजाओंका कुलमिलाकर शासनकाल ४९३ साल है। परंतु समारोप करते हुए उसमें कहा है कि, उनतीस राजा ४६० साली राज करेंगे। जाहीर है इसमें लिखनेवाले की गलती है।

ब्रह्मांड पुराण में १९ राजा बताए हैं, शासनकाल कुलमिलाकर ३६२ साल बताए हैं। पर इस पुराण के समाप्ती के समय ३० राजा और कुल मिलाकर ४५६ साली का संदर्भ मिलता है। वायुपुराण में बीस राजा और कुलमिलाकर ३७४ साल बताए हैं, पर इसमें भी ब्रह्माण्ड पुराण के समान समाप्ती में ३० राजा और ४५६ सालोका संदर्भ मिलता है।

वायु पुराण में कहा है, “एवमेतै त्रिंशच्चत्वारि अष्टशतानि शत पंचाशत अब्दादधकानि पृथ्वीम् भोक्ष्यन्ति” इसप्रकार तीस राजा ४५६ सालांतक राज करेंगे। भागवत पुराण में भी ऐसाही कहा है। परंतु भागवत पुराणके भाष्यकार श्री वीरराघवाचार्य और श्री शुकदेव का स्पष्टीकरण ४८६ साल ऐसा देते हैं।

इस प्रकार कलियुग राजवृत्तान्त में दिए गए इस वंश के राजाओं की संख्या ३२ और शासनवर्ष का काल ५०६ साल जो विभिन्न पुराणों में आनेवाली संख्या से मिलता जुलता है।

उपर बनाए गए नुसार श्रीमुख (शीमुख अथवा सिंधुक ई.स. पूर्व ८३३ में राजा बना। इस प्रकार इस वंशका अंत ई.स.पूर्व (८३३ - ५०६) ३२८-७ में हुआ गुप्त सम्राट वंशका प्रथम चंद्रगुप्त पाटलीपुत्र सिंहासन पर विराजमान हुआ।

इस प्रकार वह अलेक्झांडर का समकालीन साबित होता है। अब हम देशों के अनुसार राजा और राज्य काल संक्षेप में देखते हैं।

महाभारत-युद्ध के बाद

वंश	राजा	वर्ष
१. बार्हद्रथ	२२	१००६
२. प्रद्योत	०५	१३८
३. शिशुनाग	१०	३६०
४. नंद	०९	१००
	४६	१६०४

'विष्णुपुराण में श्लोक ४-२४-१०४ में परीक्षित के जन्म से लेकर नंदाभिषेक तक १५०० साल दिखाए हैं, जिसे गिनने पर पुरे १५०४ हो जाते हैं। अब आगे देखते हैं।

पहलेकी संख्या	४६	१६०४
५. मौर्य	१२	३१६
६. शुंग	१०	३००
७. कण्व	०५	८५
८. आन्ध्र	३३	५०६

	१०६	२८११
९. आन्ध्रभृत्य	०७	२४५
	११३	३०५६

मत्स्यपुराण में नंदसे आन्ध्र तक का काल ऐसा दिया है –

पौलोपास्तु तथाऽन्धास्तु महापद्मान्तरे पुनः

अनन्तरं शतान्यष्टौ पट्त्रिंशन्तु समाः तथा ॥ (२७-१-३९)

आन्ध्रराजा, जिन्हें पौलोमा भी कहा जाता है, महापद्मनंद के ८३६ वर्षों बाद हुए। प्रत्यक्ष यह संख्या मिलती है, नंद=१००, मौर्य- ३१६, शुंग = ३००, कण्व = ८५. कुलमिलाकर ८०१ साल।

'क-रा-वृ में कुलमिलाकर यह काल बताया है

आन्ध्रा राज्योपक्रमात्तु यावन्नंदाभिषेचनम्

अंतरे तत् शतान्यष्टौ प्रमाणज्ञे समः स्मृताः ॥

"इन गणनाओं से ज्ञात होता है कि, नंदाभिषेक और आन्ध्रवंशारंभ का काल ८०० वर्षों तक का था।" और वह कुल मिलाकर ८०१ तक का बन जाता है।

मत्स्यपुराण ८३६ वर्ष बताते हैं, इसमें लेखनदोष के वजह से शिशुनाग के कुछ वर्षोंको शायद नंद काल के साथ जोड़ा गया हो। महापद्मनंद शिशुनागवंश के अंतिम राजा महानंदी का शूद्रपत्नी से जन्मा पुत्र हो सकता है उसने ४३ साल राज किया। इस महानंदी का शासनकाल (३६ वर्षों में जोड़ा जाना संभव है। स्पष्ट ही है कि यह लिखने में गलती हुई थी, क्योंकि मत्स्य पुराण में ही महापद्म से विभिन्न राजवंशों का काल नंद = १०० वर्ष, मौर्य = ३१६ वर्ष शुंग = ३०० वर्ष, और कण्व = ८५ वर्ष ऐसा दिया है और वे पूरी तरह से गिनने पर ८०१ बन जाते हैं!

इस प्रकार ई.स. पूर्व ३१३८ से ई.स. पूर्व ८२ तक भारत में कुल मिलाकर नौ वंशों ने सम्राट के रूप में राज किया, और कुल हमें राजाओं का और उनके शासन काल का सिलसिला प्राप्त हुआ है। हर राजा के शासनवर्ष लगभग २७.०४ थे। ई.स. पूर्व ८२ में गुप्त सम्राट वंश लुप्त होकर शकारीय विक्रमादित्य उज्जैन के सिंहासन पर बैठे।

अब पाश्चिमात्य विद्वान अलेक्झांडर और सैंड्राकोटस को जिस ग्रीक समाचार के आधार पर समकालीन माना जाता है, उनपर चिकित्सापूर्वक सोचविचार करते हैं।

ग्रीक प्रमाण:

मेगस्थनीस ने भारत के बारे में समाचार लिखा था, अब उसके केवल कुछ अंश 'इंडिका' नाम से मौजूद हैं। उनका मॅकक्रिंडल ने अनुवाद किया है। मेगस्थनीस ने कहा है. "From the days of Bacchus to Alexander the great, their kings are reckoned at 154, whose reign extended over 6451 years and three months" ("बेकस के समय में अलेक्झांडर तक उनके १५४ राजा गिने जाते हैं, और राज्यकाल ६४५१ वर्ष तीन महिनो का था।") सेलिनस नामक अन्य इतिहासकार यह कहता है।

एरियन कहता है, "From the time of Dionysos to Sandracottus the Indians counted 153 kings and period of 6042 years, but among these a republic was thrice

established and another 300 years and 120 years. ' "भारत के लोग डायोनीसॉस से सँझाकोट्टस तक १५३ राजा और ६०४२ साल गिने जाते हैं, उसमें बीचमें एक गणतंत्र तीन बार और दुसरा ३०० और १२० वर्ष था।

इन सब उदाहरणों में जानकारी दी गई है, अलेक्ज़ांडर भारत के राजा सँझाकोट्टस का समकालीन था, और डायोनीसॉस अथवा बेकस से भारत में १५३ अथवा १५४ राजाओं ने साम्राज्य चलाया। शायद ये एक ही इन्सान के दो नाम हो सकते हैं।

पुराणों में आने वाले समाचार मनु वैवस्वत से शुरू होकर सूर्यवंश और चंद्रवंश नामक दो शाखाओं में बटा हुआ है। उपर उल्लेखित इक्ष्वाकू सूर्यवंशीय और पौरव चंद्रवंशीय थे।

महाभारत- युद्ध से मगध में ई.स. पूर्व ३१३८ से ई.स. पूर्व ८२ तक लगातार सम्राट पद जारी था।

ग्रीक इतिहासकारों द्वारा उल्लेखित सँझाकोट्टस मगध का राजा था। अलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक समय न्यायमूर्ति रह चुके पार्गिटर ने पुराणों का अध्ययन करके प्राचीन काल से भारत में हुई राजवंशावलीयों का संकलन किया है। वे अपने पुस्तक "Indian Historical Tradition" में कहते हैं, "There is a strong presumption in favor of tradition, if any one contests tradition, the burden lies on him to show that it is wrong and till he does that the tradition holds good" ("परंपरा इतनी प्रबल है कि, जो कोई उसे चुनौती देगा तो परंपरा को गलत साबित करने की जिम्मेदारी भी उसकी है और वह जब तक साबित नहीं करता तब तक परंपरा कायम बनी रहती है।") पर बहुत थोड़े इतिहासकार इस सुयोग्य सोच का अनुसरण करते हैं, उनमें से ज्यादातर उपरि कारणों से परंपरा को नकारते हैं।

भारत इतिहास के विशारदों के अनुसार महाभारत युद्ध से पहले अंदाजन ४८ राजा गुजर चुके हैं। इस प्रकार मेगस्थनीस के कथन के अनुसार इस युद्ध से सँझाकोट्टस तक भारत में १०६ (१५४-४८) राजा हो चुके हैं और उपर की गई गणना भी सँझाकोट्टस से पूर्व १०६ (१५४-४८) राजाओं को दर्शाती है। इस नजरिये से भी क. रा. वृ. भारत की परंपरा सही थी, यह दर्शित किया जाता है। पार्गिटर राजाओं की संख्या १०० तो अन्य कुछ लेखक १०४ मानते हैं।

अब ग्रीक इतिहासकारों ने सँझाकोट्टस के बारे में दिए हुए प्रत्यक्ष समाचारों के द्वारा वह कौन था, यह फिर से देखते हैं।

मॅकक्रिडल अपने पुस्तक में ग्रीक लेखकों के बारे में अगली जानकारी देते हैं। "Alexander had obtained from Fegus a description of the country beyond Indus : First came a desert which it would take 12 days to traverse. Beyond this was the river called the Ganges which had a width of thirty two stadia and a greater depth than any other Indian river. Beyond this again were situated the dominions of the nation of the Praisoi and the Gandaridor, whose king Xandramas had an army of 20,000 horses, 200,000 infantry, 2,000 chariots and 4,000 elephants trained and equipped for war. Alexander distrusting these statements sent for Poros and questioned him as to their accuracy. Poros assured him of the correctness of the information, but added that the king of the Gandaridoi was a man of quite worthless character and held in no respect, as he was thought to be son of a barber. This man, the king's father, was a comely person and of him the queen had become enamored. The old king having been treacherously murdered by his wife the succession had devolved on him who now reigned. ("अलेक्ज़ांडर को फेगस से सिंधू के उस पार के प्रदेशके बारे में ऐसी जानकारी मिली थी। प्रथम एक वालुकामय प्रदेश पार करने में बारह दिन लग जाएंगे। उसके पार गंगा नामक नदी है, उसकी चौड़ाई बत्तीस 'स्टेडिआ' है और वह अन्य कौनसे भी भारत की नदीसे गहरी है, उसके बादभी प्रासोई और गंगारिडोई लोगों के प्रदेश है, वहाँ के राजा झंड्रामस के पास बीस हजार छोड़े, दो लाख पदानी, दो हजार रथ और चार हजार हाथी ऐसे युद्ध के लिए शिक्षित और सिद्ध सेना है। अलेक्ज़ांडर को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए उसने पोरससे इस बात की सच्चाई पर पूछताछ की। पोरसने यह जानकारी सच है ऐसा भरोसा दिखाया और कहा कि, गंडा रिडोई के राजा चरित्रहीन होते हुए वह एक नाईका पुत्र है ऐसी वार्ता फैलने के कारण प्रजामें उसका कोई सम्मान नहीं है। यह इन्सान - राजा का जन पिता दिखने में सुंदर था और रानी उसपर मोहित हो गई;- वृद्ध राजाकी उसके पत्नी ने हत्या करने के बाद वर्तमान राजा उसका वारिस होने से राज कर रहा है।")

क्विकेंटस कार्टियस रुफस (ई.स. ४०) भी यही जानकारी देते हैं, पर संड्रामस की जगह अग्रमस ऐसा नाम देकर और आगे कहता है, "The present king was not merely a man originally of no distinction but even of the very meanest condition. His father was in fact a barber scarcely staving off hunger by his daily earnings but who, from his being not uncomely in person, had gained the affection of the queen and was by her

influence advanced too near a place in the confidence of the reigning monarch. Afterwards, however, he treacherously murdered his sovereign and then, under pretense of acting as guardian to the royal children, usurped the supreme authority and having put the young princes to death begot the present king who was detested and held cheap by his subjects, as he rather took after his father than conduct himself as the occupant of the throne. (वर्तमान राजा असल में एक श्रेष्ठत्वहीन इन्सान है इतना ही नहीं बल्कि बहुत बुरे, हालात में है। वस्तुतः उसका पिता अपनी रोज की कमाईपर जैसे जैसे गुजारा करने वाला एक नाई था, पर दिखने में "सुंदर होने से रानी उसके प्यार में पड़ी और उसके प्रभावसे उसे शासक राजा के जीवन में विश्वसनीय, निकटतम स्थान प्राप्त हुआ। परंतु बाद में उसने विश्वासघात कर अपने राजा की हत्या की, और उसके बाद राजपुत्रके पालनकर्ता के रूपमें काम करने का बहाना कर सर्वोच्च सत्ता हासील कर ली और उसकी भी हत्या कर वर्तमान राजा को जन्म दिया। वर्तमान राजा से प्रजा नफरत करती है और प्रजा में उसका कोई सम्मान नहीं है, क्योंकि वह सिंहासनस्थ राजा के समान बरताव करने की जगह अपने पिता के नक्शे कदमों पर चल रहा है।")

प्लूटार्कने (ई.स. ५०) सेना के बारे में उपर उल्लेखित जानकारी देते हुए और भी आगे लिखा है, "Nor was this exaggeration for not long afterwards Androkottos presented with 500 elephants and overran and subdued the whole of India with an army of 600,000 menAndrokottos himself, who then but a youth, saw Alexander and afterwards used to declare that Alexander could easily have taken possession of the country since the king was hated and despised by his subjects for the wickedness of his disposition and meanness of his origin." (और इसमें कोई भी बात बढ़ा चढ़ाकर नहीं कही गई थी। क्योंकि इसके बाद तुरंत अंड्राकोट्सने ५०० हाथी लेकर छह लाख सैनिकों की सेना के साथ पूरा भारतवर्ष आक्रांत कर काबीज किया।खुद अन्ड्राकोट्स उस समय केवल एक युवक था और अलेक्जेंडरसे मिला, और बाद में स्पष्टतापूर्वक कहता था कि, (मगधके) राजा का निचले दर्जे का जन्म और दुष्ट स्वभाव की वजहसे प्रजा उससे नफरत करती थी, जिसके कारण अलेक्जेंडर पुरे देशपर कब्जा कर सका।")

एरियन इंड्रामस अथवा सैंड्राकोट्स का नाम के साथ संदर्भ नहीं दिया जाता। जस्टिन द्वितीय "...Seleucus Nicator waged many wars in the east after the partition of Alexander's empire among his generals. He first took Babylon, and then with his forces augmented by victory subjugated the Bactrians. He then passed over the India,

which after Alexander's death, as if the yoke of servitude had been shaken off from its neck, had put his prefect to death. Sandracottus was the leader who achieved this freedom, but after his victory he forfeited by his tyranny all title to the name of liberator, for he oppressed with servitude the very people whom he had liberated from foreign thralldom. He was born in humble life, but was prompted to aspire to royalty by an omen significant of an august destiny. For when by his insolent behavior he had offended Alexander and was ordered by that king to be put to death, he sought safety by a speedy flight. When he lay down overcome with fatigue and had fallen into deep sleep, a lion of enormous size approaching the slumberer licked with its tongue sweat which oozed profusely from his body, and when he awoke, quietly took departure. It was this prodigy which inspired him with hope of winning the throne and so having collected a band of robbers, he instigated the Indians to overthrow the existing government. When he was, therefore, preparing to attack Alexander's prefects, a wild elephant of monstrous size approached him and kneeling submissively like a tame elephant received him on to its neck and fought vigorously in front of the army. Sandracottus having thus won the throne was reigning over India when Seleucus was laying the foundation of his future greatness. Seleucus having made a treaty with him and otherwise settled his affairs in the east, returned home to prosecute the war with Antigonus" (BK.XV.Ch.IV, p.326). (अलेक्ज़ांडर का साम्राज्य उसके सेनापतियों में बांटने के बाद, सेल्यूकस निकेटरने पूरब की ओर लड़ाईयां की। उसने प्रथम बैबिलॉन लिया और बादमें उस विजयसे उत्साहित होकर उसके सेनाद्वारा उसने बैक्ट्रीया या के लोगों को अपने आधीन बनाया। इसके बाद वह भारत की ओर बढ़ा। अलेक्ज़ांडर के मृत्यु के बाद भारत के कंधे पर से दास्यत्व का बोझ उतर गया और उनके अधिकारियों की भारत में हत्या की गई। सैंड्राकोट्टस स्वतंत्रता प्रदान करनेवाला नेता था पर उसने प्राप्त किए विजय के बाद अपने जुलमी कार्यवाही से उसने स्वतंत्रता प्रदान करानेवाला के नाम की प्राप्त की हुई सारी इज्जत गवा दी। क्योंकि जिन लोगों को विदेश के दास्यत्वसे मुक्त किया था उनपर ही वो जुल्म ढाने लगा। उसका जन्म गरीब स्थिती में हुआ। परंतु भारत सूचित करने वाले एक शुभशकुन के कारण उसे राजा बनने की प्रेरणा मिली। उसने अपने ढीठ स्वभाव के कारण अलेक्ज़ांडर को नाखूष किया था, और उसके बाद उस राजाने उसकी

हत्या करने का आदेश दिया था, तब तत्काल भागकर उसने अपनी जान बचाई। उस समय वह थक के गहरी निंद में सोया था, तब एक बड़ा शेर 'उसके पास जाकर उसके बदन से आनेवाले पसीने को चाटने लगा। पर उसके जागते ही वह शेर चुपचाप चला गया। इस अद्भुत घटना के कारण उसके मन में सिंहासन प्राप्त करने की उम्मीद जागी। और इसलिए उसने लुटेरों की एक टोली को इकट्ठा कर सभी भारतीयों के वर्तमान सरकार को हटाने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार वह अलेक्झांडर के अधिकारियों पर हमला करने के लिए तैयार था, तब एक बहुत बड़ा जंगली हाथी उसके पास आया, और किसी पालतू हाथी की तरह मानो आज्ञा मानते हुए नीचे झुककर उसने उसे अपनी गर्दन पर बिठा लिया, और सेना के आगे उसने उसे जोरसे टक्कर दी। सैंड्राकोट्स ने इस प्रकार सिंहासन प्राप्त किया और एक तरफ सेल्युकस अपनी भविष्य कालीन महानता की बुनिचान बना रहा था और यही सैंड्राकोट्स भारत पर राज कर रहा था। सेल्युकसने उसके साथ सुलह कर पूरब की ओर के अन्य राज्य भी समाप्त किए, और वह अँटिगोनस से लड़ने के लिए फिरसे अपने देस चला)

एरियन सेल्युकस इस संबंध में कहता है कि, "And having crossed the Indus, he warred with Andrakottus, the king of the Indians who dwelt about the river until he entered into an alliance and a marriage affinity with him." ("और सिंधुको पार कर उसने उस नदी के समीप के भारतीय राजा सैंड्राकोट्ससे लड़ाई की, पर अंत में सुलह करके उसने एक विवाह का संबंध भी जोड़ा।") स्ट्राबो (ईस प्रथम शतक) बात को लिखते हैं, "Both of these men were sent to Palimbothera, Magasthenes to Sandrakottus and Demochos to Amitrochades his son." (इन दोनों को पालिब्राथ भेजा गया था - मेगस्थनीस को सैंड्राकोट्स के दरबारमें और डेमोकॉस को सैंड्राकोट्सपुत्र अमित्रो छेदस के दरबारमें।)

ऐसा प्रतीत होता है कि, अलेक्झांडर ने अपना प्रशंसा गान रचाने के लिए और परभूत होने के बावजूद विजय का स्वरूप प्रदान करने के लिए कुछ ग्रीक लेखकों को अपने पास रखा था। History of Alexanders Expedition नामक एरियन के रचना के अनुवाद (१८१४) के साथ जोड़े हुए प्रस्तावना में Rookes यह मत प्रतिपादित करते हैं। यह मत संक्षेप में आगे बताया गया है।

अलेक्झांडर की तरक्की काफिस्तान में ही (आधुनिक अफगाणिस्तान) समुद्रगुप्तने रोकी थी, और अलेक्झांडर को अपने बाकी सैनिकों के साथ भागना पड़ा। अपने देस में वापस जाते समय रास्ते में बाबिलोनकी पराभूत, होने का कलंक सह न पाने के कारण उदास मनोवस्था में मौत हो गई। अलेक्झांडर सिंधु पार न कर सका, और उसके पूरब की ओर वह कदम न रख पाया।

उस समय भारत में तक्षशिला को अंभि, और चेनाब नदी के क्षेत्र में पोरस राजा था, उनकी आपस में दुश्मनी होने से अंभी ने पोरस के खिलाफ अलेक्झांडर की सहायता की। पर एरियन लिखते हैं कि, पोरस के पुत्र ने अलेक्झांडर को पराभूत किया और उसका घोड़ा - बुसे फेलेकको मार डाला, जस्टिन लिखते हैं कि, पोरस ने युद्ध में खून खचकर टालने के लिए किया गया प्रयास विफल होने के बाद, अलेक्झांडर के साथ भीषण युद्ध किया। उसने अलेक्झांडर को युद्ध के लिए निमंत्रण दिया, पर अलेक्झांडर राजी नहीं हुआ और उसने लड़ाई शुरू की। उसमें वह घायल हो गया, और युद्धभूमी से उसे तुरंत हटाया गया, इसलिए वह बच गया। पर उसके इस पराभव को विजय में परिवर्तित करने के लिए अन्य ग्रीक लेखकों ने लिखा है कि, पोरस के हाथी किचडमें गड़े थे और अलेक्झांडर को मिला और उसने घायल हुआ उदारतापूर्वक पोरसको आझाद कर दिया और इसके बाद अलेक्झांडरने अपनी सेना को खुद के देशमें जाने का आदेश दिया।

यह सच है कि अलेक्झांडर क्रूरता से लड़ाई करता था। अगर पोरस उसके हाथ लग जाता तो वह उसे आझाद करने की जगह मार डालता। जवाहरलाल नेहरू कहते हैं कि, अलेक्झांडर घमंडी, क्रूर और बेकार में खून खचकर करनेवाला था, वह खुदको भगवान् का अवतार मानते हुए बेरहमी से नरसंहार करता था, उसने अपने मित्रों के पुत्रों को भी बिना वजह मार डाला और बहुतसे शहर नष्ट कर डालें।

इसके अलावा, गांधार (आधुनिक अफगानिस्तान), योन, कंबोज, बाल्हिक (बैक्ट्रिया), ये सब उस समय भारत से जुड़े हुए थे उनपर किए गए हमले को गलती से आजका हिंदुस्थान-पाकिस्तान हमला समझा जाता है। अलेक्झांडर की सवारी अथवा चंद्रगुप्त मौर्य के साथ उसका संबंध इन सबके बारे में एक भी उत्कीर्ण लेख, सिक्के अथवा अन्य कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

मैक्समुल्लर इस विषय में ग्रीक प्रमाणों की समीक्षा करते हुए कहते हैं, "We learn from classical writers Justin, Arrian, Diodorus, Strabo, Quintus Curtius and Plutarch, that in Alexander's time, there was on the Ganges a powerful king of the name of Xandramas, and that soon after Alexander's invasion, a new empire was founded there by Sandrocottus or Sandrocyptus. (जस्टिन, एरियन, डियोडोरस, स्ट्रैबो क्विंटस कुरटस और प्लूटार्च नामक प्राचीन लेखकों से हमें जानकारी मिलती है कि अलेक्झांडर के समय गंगा किनारे इंड्रामस नामक बलशाली राजा था, और अलेक्झांडर के सवारी के बाद जल्द ही वहाँ सैंड्राकोट्टा अथवा सैंड्रासायटस ने एक नूतन साम्राज्य बसाया।) और मैक्स मुल्लर के अनुसार यह सैंड्राकोट्टस चंद्रगुप्त मौर्य था। इससे प्रतीत होता है कि, उन्होंने इस बारे में गुप्तवंश के चंद्रगुप्तपर गौर नहीं किया। क्योंकि इस बजह से प्राचीन भारतका पुराणों में दिया गया समाचार सच साबित हो जाता जो वे नहीं चाहते थे।

वुइल्यम जोन्सने भारत के इतिहास की प्राचीनता कम दिखाने के लिए सबसे पहले यह सुझाव दिया कि, यह सँड्राकोट्टस अर्थात् चंद्रगुप्त मौर्य और झंड्रामस ही उसके पिता महापद्मनंद है। पर झंड्रामस और महापद्मनंद के नामों में उच्चारण की समानता नहीं है।

इसके अलावा, चंद्रगुप्त मौर्य अंतिम नंद राजा महापद्मनंद का जायज पुत्र था और आर्य चाणक्यने दुष्ट, अत्याचारी नंदको हटाकर उसे सिंहासनपर बिठाया। इस प्रकार चंद्रगुप्त मौर्य को मगध का साम्राज्य वारिस होने के नाते प्राप्त हुआ, बाद में उसने और उसके पुत्र बिंदुसार ने उसे अच्छी तरह से आगे बढ़ाया। उसके बाद अशोकने बागी कलिंग राजा के साथ युद्ध कर उसे पराभूत किया। इसमें ग्रीकों के साथ युद्ध का कोई संबंध नहीं है।

उपर बताए गए ग्रीक प्रमाण में ऐसा कहा जा सकता है। अलेक्झांडर अफगाणिस्तान में किसी स्थानपर जब राज कर रहा था तब मगधमें झन्ड्रामस (अथवा अंग्रामस) नामक बलशाली राजा था। उसकी रानी के एक नीच कुल के सुंदर पुरुष के साथ नाजायज संबंध थे। उस इन्सानने उसे रानी के साथ हाथ मिलाकर सम्राटका खात्मा कर दिया और उसके कम उम्र के पुत्र को गादीपर बिठा दिया। आगे उस राजा को भी मारा गया और रानी के उस यारने खुद ही सिंहासन पर कब्जा कर लिया। इसलिए वह लोगों का चहेता नहीं था। सँड्राकोट्टस नामक एक युवा अलेक्झांडरसे मिला। उसके ढीठता के कारण अलेक्झांडरने उसे जान से मारने का आदेश दिया, पर वह भाग निकला। रास्ते में थकान के कारण निंद आने से एक शेरने उसके तलवों को चाटा पर उसके जागते ही वह शेर चला गया। उसके बाद उस युवकने धैर्य कर एक सेना इकट्ठी कर दी, और सिंधु नदी के उस पार रहनेवाले ग्रीकोंपर हमला किया। यह करते समय एक बहुत बड़े हाथीने उसे अपने पीठपर बिठाया। यह युवक ग्रीक सेनापति सेल्युकस के खिलाफ जीत गया, और सेल्युकसने उसके साथ सुलह कर अपनी पुत्री के साथ उसका विवाह किया। इस सँड्राकोट्टसने भारत के सम्राटपर हमला किया और खुद उस सिंहासनपर विराजमान हुआ। बाद में उसने पुरे भारतवर्षपर अपना अधिकार जमा लिया।

इस ग्रीक समाचारका महत्वपूर्ण सिलसिला गुप्तवंशके चंद्रगुप्त के विक्रमी पुत्र समुद्रगुप्त से मिलता है। क. रा. वृ. में उल्लेखित यह चंद्रगुप्त आन्ध्रवंशीय सम्राट चंद्र श्री (चंद्रबीज) शातकर्णी का सरसेनापति (और (शालक) था, वह घटोत्कच गुप्तका पुत्र था। यह घटोत्कच नाम उच्चकुल के क्षत्रियवंश में आश्चर्यजनक प्रतीत होता है, इसलिए चंद्रगुप्त हीनकुलमें जन्मा होगा ऐसा ग्रीक लेखकों को भ्रम हुआ होगा, अथवा ऐसी उन्हें जानकारी मिली होगी।

यह चंद्रगुप्त दिखने में बहुत सुंदर और वीर था, और साम्राज्य के सूत्रों को वही चलाता था चंद्रश्री केवल नाममात्र राजा था। रानी इस चंद्रगुप्त पर मोहित हुई थी ऐसा दिखाई देता है। उन दोनों ने आपस में हाथ

मिलाकर राजा का किसी हादसे में मृत्यु हुआ ऐसा दर्शाकर उसका छोटी उम्रका पुत्र पुलोमा तृतीय को राजगद्दी पर बिठाया। आगे उसे भी हटाकर सेनापति चंद्रगुप्त खुद ही सम्राट बना। जाहीर है वह लोगों में मशहूर नहीं था। उसके पुत्र समुद्रगुप्ताने उसके लिए बहुत से युद्ध जिते, और सिंधु नदीके पश्चिम किनारे पर रहनेवाले ग्रीकोको पराभूत किया। पर चंद्रगुप्त उससे पसंद नहीं करता था, और उसने अपने दुसरे पुत्र (समुद्रगुप्त का सौतेला भाई) कच को युवराज बनाया। समुद्रगुप्त ज्येष्ठ था और राजपर उसका हक था। और उसने पिता की सत्ता को स्थिरता प्रदान करवाई थी। इसलिए उसने अपने धोखेबाज पिता को बंदी बना लिया और ई.स. पूर्व ३२९ से खुदको सम्राट घोषित किया। उसका राज्यकाल भारतके इतिहास का एक प्रदीर्घ और असरदार काल था। उसने ५१ वर्ष (ईसपूर्व ३२९ से ई.स.पूर्व २६९) राज किया, और उसके बाद उसका उसका जैसा ही वीर पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय राजगद्दी पर आ बैठा।

अब हम इंड्रामस अथवा अग्रमस, सैंड्राकोट्टस, सैंड्रोसीएस, और सैंडीसीएस के पुत्र अमित्रो छंदस नामक चार राजाओं के बारे में जानकारी लेते हैं।

यह स्पष्ट है कि 'इंड्रामस' याने सम्राट चंद्र श्री (अथवा चन्द्रमस अथवा चंद्रबीज)। रॅपसन भी इस बातको स्वीकारते हैं। 'सैंड्राकोट्टस' याने (चंद्रश्री के बाद राजा बना) चंद्रगुप्त। अलेक्झांडर से मिला वीर युवक 'सैंड्रासायएस' याने समुद्रगुप्त हो सकता है। और 'अमित्रोछेदस्' ('शत्रुनाशक चंद्रगुप्त द्वितीय होना चाहिए। उसने आक्रमक हुणों पर और अन्य शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करने के कारण उसे यह नाम दिया गया।।

दूरदूर तक सोचने पर भी चंद्रगुप्त मौर्य ग्रीक इतिहासकारों का 'सैंड्राकोट्टस' नहीं हो सकता। वह चंद्रगुप्त नंदवंश के संस्थापक महापद्मका नौवा पुत्र था। महापद्म के बाद एक के बाद एक उसके आठ पुत्र राजा बने, और उनमें से आठवे पुत्र की मौत होनेपर चंद्रगुप्त राजा बना। इसका अर्थ यह हुआ, इस चंद्रगुप्त का, उस आठवे पुत्र का अथवा उसके पूर्व के राजका, रानीसे नाजायज संबंध होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। और यह चंद्रगुप्त महापद्मका जायज पुत्र था। इसलिए ये दोनों 'इंड्रामस' अथवा सैंड्राकोट्टस नहीं हो सकते। तथापि, इस चन्द्रगुप्तके पुत्र बिंदुसार याने ग्रीक लेखकों द्वारा कथित सैंड्राकोट्टस नहीं है और बिंदुसारका पुत्र अशोक 'अमित्रोछेदस भी नहीं है।

इसप्रकार ग्रीक समाचार मुख्यतः गुप्तवंशीय इतिहास से मिलता जुलता है। चंद्रगुप्त के पिता घटोत्कचको ग्रीक लेखक एक नाई मानते हैं, यह केवल उनके कल्पना की उड़ान हो सकती है, अथवा उस काल में चंद्रगुप्त के जन्म के बारे में कुछ अपवाद प्रसृत हो सकता है।

इस प्रकार सैंड्राकोट्टस चंद्रगुप्त मौर्य नहीं है, और गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त भी नहीं है। वह गुप्तवंशका समुद्रगुप्त है। वह और उसके पिता चंद्रगुप्त प्रथम ने ग्रीक सेनापतिको पराभूत किया था। इस समुद्रगुप्त ने

सेल्यूकस के कन्या के साथ विवाह किया था ऐसा दिखाई देता है, इस बात को अलाहाबाद के स्तंभलेखद्वारा प्रबल किया जाता है।

फिर भी इस बात पर 'अशोक के शिलालेखों के सहारे आक्षेप लिया जाता है। पर वे घोषणाएँ भी अलेक्ज़ांडर मौर्य के समकालीनत्व का समर्थन नहीं करती यह बात हम उपर देख चुके हैं। पर अरेमिक लिपिके आरंभकालपर आधारभूत और एक आक्षेपपर भी यहाँ सोचविचार करना जायज है।

अशोक के अरेमिक लिपिके उत्कीर्ण लेख:

अशोक के ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में लिखे गए आज्ञा-पत्रों के अलावा कुछ थोड़े अफगाणिस्तान में अरेमिक लिपि में प्राप्त हुए हैं।

भाषाशास्त्री कहते हैं कि, मानवीय लिपियों का मूलारंभ ई. स. पूर्व ३५०० के आसपास (ईजिप्त में) 'चित्रलिपिसे हुआ और बादमें क्रमशः सिनेटिक कनानिट, फोनेशियन लिपियाँ बनी, ई.स. पूर्व आठवीं सदी के आसपास अरेमिक और ग्रीक लिपियों का उद्भव हुआ। उत्खनन और उसमें प्राप्त हुए मृत्तिकापात्रों के आधारपर सभी समय निश्चित किए गए।

अगर अरेमिक लिपिका उद्भव अंदाजन ई.स. पूर्व ८०० में हुआ है तो अशोक मौर्यका काल लगभग ईसापूर्व १४७२ में था इस निष्कर्षके विरोध में जाएगा। परंतु यहाँ इस बातपर ध्यान देना होगा, लिपियों के उद्भव संबंधमें उपर दिए गए कालनिर्णय करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों को अनदेखा कर दिया गया है।

यहाँ मूल प्रश्न यह है कि लिपि का अर्थ क्या है? और उसका उद्भव निश्चित करने का आधार क्या है? लिपि किसी विशेष ध्वनि के लिए विशेष चिन्ह है। पाश्चिमात्य विद्वानों की यह धारणा है कि, लिपि प्रथम चित्रस्वरूपमें निर्माण हुई। मानवने अपने विचार अन्यो तक पहुँचाने के लिए प्रथम अपने आसपास की वस्तुओं का अपने विचारों के साथ तुलना करने के लिए उपयोग किया होगा। इसलिए उत्कीर्ण लेखों में प्राप्त होनेवाले चिजोने चित्रलिपिके उन्नत रूप मानना चाहिए। ऐसी तरक्की एक दो दिनों की बात नहीं, बल्कि बहुत सदियों से निरंतर, चलती आई प्रक्रिया का परिणामस्वरूप होनी चाहिए।।

परंतु इस विषय से जुड़े हुए पाश्चिमात्य विद्वान शायद कोई उत्कीर्ण लेख देखते हैं, और कुछ परीक्षणों से उनका काल निश्चित करते हैं, और उसी समर्थको उस उत्कीर्ण लेख के लिपिके उद्भव का काल माना जाता है। किसी भी लिपी का आरंभकाल निश्चित करने का यह तरीका गलत है। इसके अलावा उत्कीर्ण लेख की लिपी के साथ ही उस लेख का काल भी कुछ उलझे हुए प्रमाणों द्वारा निश्चित किया जाता है। उदाहरणार्थ, चंद्रगुप्त मौर्य का काल पूर्वधारणा के अनुसार ईसापूर्व ३२८ तय किया जाता है, और इस आधार पर उसका

पोता अशोक मौर्य के अफगाणिस्तान में प्राप्त हुए लिपि के लेख का काल ईसापूर्व १४७२ निश्चित होने से उसके अरेमिक लेख का कालभी उसके आसपास का ही होगा। मुद्दे की बात यह है कि, अरेमिक लिपिके आरंभ का उपर बताया गया काल शतप्रतिशत निर्णयात्मक नहीं है। लिपियों के वे आरंभ काल पुरी तरहसे अनुमानस्वरूप है। क्योंकि लिपियों का उद्भव और विकास के बीच कई सदियां बीत जाती है।

किसी लिपिके लेख जिस काल के होंगे उससे बहुत पूर्वकालसे वह लिपि बनी होगी, और उस पूर्वकाल के उस लिपि में लिखे गए लेख शायद आज मौजूद न हो। पर केवल मौजूद न होने से प्रत्यक्ष साहित्य के प्रमाण का अनुमान अस्वीकार करना अनुचित होगा। इसके अलावा चित्रलिपि सबसे पहली थी और अन्य लिपियाँ उपर, विद्वानों के कहने के अनुसार उस क्रम से बाद में आती रही यह भी निश्चित नहीं है।

भारत में लिपी बहुत प्राचीन कालसे ज्ञात है। पाणिनी के 'अदर्शनं लोपः' सूत्र से बेशक यह साबित होता है कि पाणिनी के समय अक्षरों के जरिए लिखने का ज्ञान था। श्रवणयोग्य भाषा और दृश्य भाषा के बीच का फर्क वेदकालसे ज्ञात था। और तो और दृश्य- (लिपी बद्ध) भाषा सुसंस्कृत मानवको उसके असंस्कृत पूर्वजों से अलग दिखाती है। '

‘प्राचीन भारत में लेखनकला’ इस पाठ में है कि, भारतीयों को ऋग्वेद काल से लेखनकला ज्ञात थी। बुद्ध के पूर्व काल में भारतीय लेखन कला के बारे में अज्ञात थे ऐसा कहना भारतीय परंपरा को पुरी तरह से अनदेखा करना है। ऋग्वेद में अक्षरोंको कुरेदने के और देखने के स्पष्टरूपमें संदर्भ मिलते हैं।

पाणिनी ‘यवनानि लिपी’ के बारे में बताते हैं। उनका संबंध स्पष्टता से अरेमिक और खरोष्ठी लिपियों के साथ है। उनका उद्भव सेमिटिक लिपियों में है। और वे सेमिटिक लिपियाँ विभिन्न प्रदेशों में फोनेशियन, कनानिट, अरेमिक, खरोष्ठी आदि नामोंसे प्रचलित थी। वे सब समकालीन थी। एक के बाद एक आती रही ऐसा नहीं है। इसलिए, प्रत्यक्ष अरेमिक लिपी के लेख ईसापूर्व ८०० से मौजूद होने पर भी अशोक के समय उपयोग किए गए | इस लिपी का आरंभ ईसापूर्व १५०० से भी पहले हुआ था यह मानने में कोई आपत्ती नहीं है।

इससे पूर्व दी गई कालगणना का समर्थन करने के लिये ज्योतिषीय प्रमाण है।

१.१४ ज्योतिषात्मक प्रमाणः

विष्णु पुराण में कहा है,

तेन सप्तर्षया युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतम् नृणाम्

ते तु पारीक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम ॥४-२-१०६

"सप्तर्षी एक नक्षत्र में सौ साल रहते हैं। परीक्षित जब राज कर रहा था तब वे मघा में थे।" मत्स्य पुराण में कहा है,

सप्तर्षयः तदा प्राहुः प्रदीप्तेनाग्निना समाः

सप्तविंशतिः भाव्यानां आन्द्राणां तु यथा पुनः ॥ २७१-४१

"परीक्षित के जन्म के समय सप्तर्षी, प्रदीप्त अग्नी जिसकी देवता है उस कृत्तिका में थे, यह वराहमिहिरादी का कहना है, गणना की रीति भले ही अलग हो पर निष्कर्ष एक ही है। वह आंध्रवंशीय राजाओं के समय फिरसे उसी नक्षत्र में रहेंगे।" सप्तर्षी एक ही नक्षत्र में सौ वर्ष रहते हैं, इसलिए उन्हें २७ नक्षत्रों के पुरे चक्कर लगाने के लिए २७०० साल लग जाते हैं। परीक्षित के जन्मसे आन्ध्रराजाओं तक इतना वक्त बीत चुका था ऐसा नजर आता है ; अर्थात् ईसा के ३१३८ - २७०० ईकाई = ईसा पूर्व ४३८ में आन्ध्र राजा राज करते थे।

अब कुछ ज्योतिषज्ञ सप्तर्षियों को मघा में, और अन्य कुछ उसी समय कृत्तिका में क्यों दर्शाते हैं, यह देखते हैं।

पुराण और वृद्धगर्ग सप्तर्षियों की नक्षत्रगणना इस प्रकार करते हैं - "सप्तर्षी के पूरब की ओर जो दो तारे - ऋतु और पुलह - देर रात में उदित होते हैं, उनके और ध्रुवके बीचसे जानेवाली एक (कल्पित) रेखा सिधे दक्षिण की तरफ खींची जाए, तो उस रेखा पर नक्षत्र मंडल में से जो तारा (नक्षत्र) होगा, उसमें सप्तर्षी है ऐसा माना जाता है (यह नक्षत्र मघा है।) वहाँ उस नक्षत्र में सप्तर्षी सौ सालो तक रहते हैं। वृद्धगर्ग और पुराण

'मघा' कहते हैं तो वराहमिहिरादि अन्य उस नक्षत्रको कृत्तिका' कहते हैं। देखा जाए तो वराहमिहिर वृद्धगर्ग का शिष्य है। पर वह रेखा सप्तर्षी के अन्य तारों के बीच खींचने से वह कृत्तिका की ओर जाती हुई नजर आएगी।

"यहाँ L. Jaroliot कृत Bible de- Inde में आनेवाला अगला उदाहरण देना योग्य है। "

"The Rev. Fathers, Jesuits, Fransiscans, Stranger missions and other corporations unite with touching harmony in India to accomplish a work of vandalism, which it is right to denounce to the learned world as to the orientalist. Every manuscript, every Sanskrit work that falls into their hands is immediately condemned and consigned to flames. Needless to say that the choice of these gentlemen always falls from preference upon those highest antiquity and whose authenticity may appear incontestable...Every new arrival receives a formal order, so to dispose of all that may fall into his hands. Happily, happily the Brahmins do not open to them the secret stores of their literary wealth, philosophic and religious." इसमें उल्लेखित ख्रिश्चन धर्मगुरु और धर्मप्रचारकों ने भारतीय साहित्य को जला दिया, उनके हाथ लगने वाला प्रत्येक हस्तलिखित, हर संस्कृत रचना तुरंत आग में फेंकी जाती थी, और उसमें भी जो रचना अधिक प्राचीन और असंदिग्ध अधिकृत प्रतीत हो उसपर 'सज्जनों की नजर पहले पड़ती थी और हर नये आने वाले व्यक्तियों को इस बारे में सुरा आदेश दिए जाते थे।

इससे नजर आता है, भारतेतिहासका विवेचन करनेवाले बहुतसे ख्रिश्चन विद्वानों ने अपने ख्रिश्चन धर्मकी और समाज की श्रेष्ठता दर्शाने के लिए भारतका इतिहास और कालगणनाको विपर्यस्त करने का यथा संभव प्रयास किया। उनकी धारणा थी कि, उनके बाईबल से अधिक प्राचीन अन्य साहित्य नहीं हो सकता।

पुराणों के अनुसार सप्तर्षी आन्ध्र राजाओं के समय पुनः मघा में थे, मत्स्यपुराण के उपर दिए गए श्लोक 'क-रा-वृ' में भी यह बताया है। इसके अलावा परीक्षित के जन्म के समय सप्तर्षी मघा में थे, इस पुराणकी गणना पर आधारित और एक श्लोकभी क-रा-वृ में है, वह ऐसा

सप्तर्षयः मघायुक्तः काले पीपिशितम्

श्रवणे ते भविष्यन्ति काले नन्दस्य भूपतेः ॥

"राजा युधिष्ठिर राज कर रहा था उसे वक्त पर सप्तर्षी मघा में थे; नंद के समय वे श्रवण में होंगे।" मघासे श्रवण उलटी दिशा से १५ वे स्थानपर है ; पृथ्वी से हम उन नक्षत्रों को उस दिशा की ओर घुमते हुए देखते हैं। इसलिए इसका अर्थ ऐसा कि, परीक्षित के जन्म के १५०० साल बाद नंद वंशराज करेगा। परीक्षित का जन्मवर्ष ईसापूर्व ३१३८ है ; जिसमें से पंद्रह सौ कम कर ईसा पूर्व १६३८ वर्ष मिलता है। ईसा पूर्व ३१३८ से नंदाभिषेकतक भारत में राज करनेवाले विभिन्न वंशों का पुरा काल १५०४ वर्ष है। इस प्रकार नंदने ईसापूर्व १६३८ से ईसापूर्व १५३४ तक राज किया।

इस प्रकार ज्योतिषीय प्रमाणों के अनुसार भी पुराण की कालगणना राजाओं के प्रत्यक्ष राज्यवर्षों से मिलती है। अब प्राचीन भारत के और एक अन्य महापुरुष का काल निश्चित करते हैं।

१.१५ भगवान महावीर का काल:

किसी जैन परंपरा के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के १५ साल बाद महावीर ने पृथ्वीलोक त्याग दिया। बुद्ध का मृत्युवर्ष ईसापूर्व १८०५ है, इसलिए महावीर का मृत्यु वर्ष ईसा पूर्व १७९० है। महावीर का जीवन ७२ साल का था, यह सर्वसम्मत है। इस प्रकार उनका जीवनकाल ईसापूर्व १८६२ से ईसा पूर्व १७९० तक का पुराणों के आधारपर गिना जाता है।

दूसरी परंपरा के अनुसार महावीरका निर्वाण चंद्रगुप्त मौर्य के अंदाजन १५५ वर्षपूर्व हुआ। इसके अनुसार वह निर्वाणवर्ष ईसापूर्व (१५३४ + १५५ =) १६८९ हो जाता है। और एक तिसरी परंपरा वह निर्वाणवर्ष शक राजाने अभिषेकसे ५०५ वर्ष पूर्व दर्शाती है। शकराजा कनिष्क काश्मीर में ईसापूर्व १२९४ में अभिषिक्त हुआ। इसके मुताबिक महानिर्वाणवर्ष ईसापूर्व (१२९४ + ६०५ =) १८९९ हो जाता है।

'तिथोगोली पेन्नाय' नामक महत्त्वपूर्ण जैन ग्रंथ में अगला श्लोक है

जं रयिणं सिद्धं जब अरह तीर्थकरो महावीर।

तं रयिणं अवंतिया अभिपात्तो पालयो राया।।

महावीरने प्राण त्यागने के दिनपर राजा पालकका अवंती नगरी में राज्याभिषेक हुआ।" संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिक' से ज्ञात होता है, पालकको जैन लोग अपने धर्मका शिष्य मानते थे। इसलिए महावीरकी मृत्यु के कारण अवंती शहर अनाथ हुआ ऐसा उस नाटककार को नहीं लगा। संक्षेप में, पालकने मानो महावीर का स्थान ग्रहण कर लिया।

पालक मगध के प्रद्योत वंशका दुसरा राजा था। पुराणों के अनुसार उसका वर्ष ईसापूर्व २१३१ है। यह उस समयका बहुत बड़ा राजा होने के कारण नाटककारने शायद मगध के पालक के विषय में लिखा होगा। इस नजरिये से महावीर का जीवनकाल ईसापूर्व २२०३ से २९३९ ज्ञात होता है। इस पालककी राजधानी गिरिव्रज थी। इसलिए उपर उल्लेखित जैन ग्रंथकार गिरिव्रज के राजा पालक और अवंती के पालक के साथ शायद भेद न कर पाया हो अथवा उसके समय अवंती प्रसिद्ध होनेसे उसने दो प्रसिद्ध नामों को एकसाथ जोड़ दिया होगा।

परंतु प्राच्यविद्या विद्वान कहते हैं, महावीरका निर्वाण शालिवाहन शक के ६०५ वर्ष पूर्व हुआ था, 'कनिष्कशक' से पूर्व नहीं, इसके अनुसार महावीरनिर्वाण वर्ष ईसापूर्व (६०५-७५ २५२७ बन जाता है, और उसका जीवनकाल ७२ वर्ष होने से जन्मवर्ष ईसापूर्व ५९९ माना गया। पाश्चिमात्य विद्वान इन्ही वर्षों की स्वीकारते हैं। पर उपर देखते हुए यह गणना महावीर बुद्धके, कनिष्ठ समकालीन थे इस पारंपारिक धारणा के खिलाफ जाती है। क्योंकि वे विद्वान बुद्धकाल ईसापूर्व ५४३ से ईसापूर्व ४६३ मानते हैं, और इसके अनुसार महावीरका जन्मवर्ष ईसापूर्व (५४३+१५=) ५२८ और निर्वाण वर्ष ईसापूर्व (५२८ - ७२) ४५६ हो जाएगा। पर पौराणिक गणना के अनुसार महावीर का जीवनकाल (ईसापूर्व १८६२ से ईसापूर्व १७९०) उपर दिया गया है और वह सही प्रतीत होता है।

उपर उल्लेखित ६०५ वर्ष उस जैन ग्रंथ में इस प्रकार विभाजित की गई है। पालक - ६० वर्ष, नंद - १५०, मौर्य १६०, पुष्यमित्र - ३५, बलमित्र - भानुमित्र - ६०, नहसेन - ४० ; और गर्दभिल्ल - १०० । पर इन राजाओं के राज्यवर्ष पुराणों में दिए हुए वर्षों के पुरी तरह से विपरित है; और इसमें भिन्नवंशीय राजाओंको एकसाथ जोड़कर सभी को मिलाकर ६०५ साबित करने के लिए उनके राज्यकाल जैसेतैसे दिए गए हैं। गर्दभिल्ल के बाद कौन आया उसका नाम नहीं दिया। और महावीर के निर्वाण के बाद ६०५ वर्षों के बाद शक

राजा थाने (ईसा के ७८ में 'शक' वर्षगणन को स्थापित करने वाला) शालिवाहन माना जाता है। पर शालिवहन 'शक' जातिका नहीं है।'

इस वंश के पुष्यमित्र का संदर्भ मिलता है। उसके बाद भानुमित्र-भडोच का, नहसेन-पेशावरका और गर्दभिल्ल-उज्जैन का, एक के बाद एक आए, ऐसी कोई बात नहीं है। ये राजवंश एक के बाद एक मगधाधिपति बने ऐसा कोई नहीं कहता। पालक प्रद्योत वंशका है, उसके बाद शिशुनाग वंश आता है, बाद में नंद और मौर्य आते हैं, उनके अनुसार शुंग वंश आता है।

वस्तुतः वह जैन परंपरा भगवान महावीर की जगह पर किसी अन्य जैन महापुरुष के बारे में हो सकती है।

इस बारेमें कलकाचार्य नामक महत्वाकांक्षी जैन साधुकी कथा जानना उद्धोषक सिद्ध होगा। यह योगी साथ उज्जैनको अपनी बहन सरस्वती के साथ रहता था। गर्दभिल्ल वंशका दर्पण वहाँ राजा था जिसने सरस्वती को जबरदस्ती से राजभवन में कैद कर लिया। कलकने राजा को नष्ट करने का निश्चय किया और प्रथम वह भडोच में (वर्तमान गुजरात में) अपनी दुसरी बहन के पुत्र बलमित्र - भानु मित्र के पास पहुँचा। पर बलमित्रने बलशाली राजा दर्पणविरुद्ध कुछ करने के लिए असमर्थता प्रकट की। बादमें कलकाचार्य हिन्दुगदेश (शायद हिन्दुकुशदेश, जिससे अफगाणिस्तान और ईरान का कुछ हिस्सा जुड़ा हुआ है।) क सरदार के पास चला गया और उन सरदारोंके मुखियाको उसने तांत्रिक, वैद्यकीय और ज्योतिषीय विद्याद्वारा प्रभावित किया। उस समय उन सरदारों को ईराण के बादशाह के हमले से डर था। कलका के सुझाव से वे वहाँ से सिंधु और पेशावर के क्षेत्रमें रहने लगे। उसके बाद कालकाचार्य के कहने पर उन्होंने भडोचके बलमित्र की सहायता से राजा दर्पणको पराभूत किया और वे खुद अवंती के राजा बने। उन्होंने सरस्वतीको मुक्त किया, और कलकाचार्य के आदेश से जैन धर्म का स्वीकार किया।

इसके अलावा जैन ग्रंथ में उपर उल्लेखित नहसेन राजा के बारे में आगे जानकारी दी है। उस राजा को (ईसा पूर्व ५१९) आंध्रवंशीय अरिष्ट शातकर्णी ने (जो ईशान के दारियसन समकालीन था) पराभूत कर दिया। इस नहसेनने (नहपनने) जैन धर्म स्वीकृत किया था, और इसलिए जैन ग्रंथमें उसकी प्रशंसा की गई है। उसका समय ई.सापूर्व ५५० के आसपास का प्रतीत होता है, और वह कलकाचार्य के साथ सिंधु प्रदेश के पूरब की ओर गया होगा। इस हकीकत से बलमित्र, गर्दभिल्ल दर्पण, नहमेन और कलकाचार्य ये सभी ईसापूर्व ५५० के आसपास के नजर आते हैं।

कालगणना के लिए जैन ग्रंथकार रेखित नहीं है। उपर बताए गए ६०५ वर्षोंका संबंध 'श्री विराट' नामक एक अन्य जैन ग्रंथ में भी शालिवाहन शक के साथ जोड़ा है। पर महावीर के महानिर्वाण का राजा

पालक और शालिवाहन शकसे कोई संबंध नहीं है। शायद उन लेखको 'वीरनिर्वाण'। और महावीर निर्वाण' के बीच गलत फहमी हुई होगी। ईसापूर्व ५२७ में ('वीर') कलकाचार्या 'महावीर' पद यानि महावीर निर्वाण) हुआ ऐसा नजर आता है। ऐसा मानने पर ही बलमित्र, गर्दभिल्ल, दर्पण, नहसेन और कलकाचार्य का काल सुयोग्य साबित होता है। ईराण के दारिया (ईसापूर्व ५५०) समकाली हेरेडोटस कहना है कि, दारियस के समय भारत में शकराजा थे। भारतमें शक सत्ता स्थापित करनेवाला शायद महसेन (नहपन) था; और कलकाचार्यने उसे भारत में आने के लिए प्रेरित किया होगा। जैन ग्रंथों में अभिमान से कहा जाता है कि, शकों को भारत में लाने के लिए वजह कलकाचार्य था। कुलका का संदर्भ 'गर्दभिल्लोच्छेदक' के नामसे भी मिलता है ; और उसे शक राजाओं का गुरुभी कहा गया है। उसने जिस शक राजा को जैन धर्म स्वीकारने के लिए कहा वह नहपन हो सकता है। ईसापूर्व अंदाजन ५२७ में अवंती में सिंहासन पर बैठा शक राजा जैन था। कलकाचार्य के बाद उसे कुमारिल भट्टने वैदिक धर्म स्वीकारने के लिए कहा ऐसा दिखाई देता है। आदि शंकराचार्य के गुरु गोविंद यति के रूप में प्रसिद्ध चंद्रशर्माकी कथा में उज्जैन के इस शक राजा का संदर्भ मिलता है। उसे ब्राह्मण पत्नी से भर्तृहरी और क्षत्रिय पत्नी से हर्ष (नामक पुत्र) प्राप्त हुए। इससे यह स्पष्ट है कि, ईसापूर्व ५२७ में जिसे महावीर कहते थे वह 'भगवान 'महावीर' नहीं थे। इस शक राजा के बाद भर्तृहरि और उसके बाद श्रीहर्ष राजा बना। जिसने पुनः आक्रमण करनेवाले शकों को पराभूत किया, और ईसापूर्व ४५७ में "श्रीहर्ष विक्रमादित्य" वर्ष गणना का आरंभ हुआ । इसका संदर्भ अलबेरुनीने अपने पिछे उल्लेखित पुस्तक में दिया है।

कुमारिल भट्टका काल

कलकाचार्य के साथ कुमारिल भट्टका निकटतम संबंध था। वे मीमांसा दर्शन के मुख्य प्रतिपादक, और वैदिक कर्मकांड का पुरस्कार करनेवाले थे। उन्होंने अनेक विद्वानों को पारंगत बनाया, और बुद्ध एवं जैन यतियों के साथ वादविवाद किया। उन्हें नजर आया कि ये यति वेदों से कुछ अलग न कहने पर भी बहुत प्रसिद्ध हो रहे हैं। उसका कारण खोजने के लिए एक जैन शिष्य के तौरपर वे कलकाचार्य के पास आए। भट्टपाद एक बड़े विद्वान है यह जानकर कलकाचार्यने उन्हें जैन श्रमण बनाया। भट्टपाद जल्द ही एक जैन संन्यासी के तौरपर बहुत महत्वपूर्ण बने, पर अन्य लोगों ने उनको तिरस्कृत कर दिया।

'जिन विजय' ग्रंथ में (देखिए संस्कृत चंद्रिका ५-२ पृष्ठ - ६), भट्टपाद का जन्मवर्ष ऐसा दिया है

ऋषिर्वारः तथा पूर्ण मर्त्याक्षी वाममेलनात्

एकीकृत्यं लभेताङ्कः क्रोधि स्यात् तत्र वासरः

भट्टाचार्यकुमारस्य कर्मकाण्डकवादिनः

ज्ञेयः प्रादुर्भवस्तस्मिन् वर्षे युधिष्ठिरे शके

"ऋषि = ७, वार = ७, पूर्ण = ०, मृत्यक्षौ = २, अर्थात् २०७७, यह युधिष्ठिर शक वर्ष वैदिक कर्मकांड का प्रचार करनेवाले कुमारिल मट्टका जन्मवर्ष है। "युधिष्ठिर शक का आरंभ जैन ईसापूर्व २६३४ में मानते हैं: इसलिए "भट्टाचार्य का जन्मवर्ष ईसा पूर्व (२६३४- २०७७) ५५७ सिद्ध होता है।

इस ग्रंथ के अनुसार भट्टपाद का जन्म आन्ध्र और उत्कल प्रांत के सीमापर महानदी नामक नदी के किनारे जयमंगल गाँव में हुआ था। वे आन्ध्रवासी थे। पिता धनेश्वर और माता चन्द्रगुणा दोनों भी धर्मका मानने वाले थे। पिता वेद के विद्वान् थे।

और भी आगे कहा है कि इन भट्टपादों को जैन शिक्षा दी गई। पर उन्हें उन नास्तिक संप्रदायों से नफरत थी। अन्य जैन शिष्यों ने उन्हें रास्ते से हटाने के बारे में निश्चय किया। पर गुरु कलक के रहते वह संभव नहीं हुआ क्योंकि कलकाचार्य भट्टपादको बहुत पसंद करते थे। ईसापूर्व ५२७ में 'वीर' कलकाचार्य के मृत्यु के बाद हुए) दुसरे गुरु भट्टाचार्य को पसंद नहीं करते थे। एक दिन भट्टाचार्य उस गुरु के साथ अपने निवास के सातवीं मंजिल पर बैठे थे, तब अन्य शिष्यों ने वेदकी बहुत बुराई करना शुरू किया। जिसे सुनकर भट्टाचार्य को दुख हुआ। उन्होंने जैसे तैसे अपने आपको संभाला, पर अन् उनके आँखों से आंसू बहने लगे। गुरुको और शिष्यको भट्टाचार्य को निचे ढकेलने का सही मौका लगा और उन्होंने भट्टाचार्य को धक्का दिया। भाग्यवश वे बच गए और द्वारकामें राजा सुधन्वा के पास गए।

'जिन विजय' ग्रंथ में भट्टाचार्य के जीवन के इस अवसर का बड़ी खुशी से ऐसा वर्णन किया है

नंदः पूर्ण भूमि नेत्रे मनुजानाम् च वामतः

मेलने वत्सरो धाता युधिष्ठिर शकस्य वै

भट्टाचार्य कुमारस्य कर्मकाण्डकवादिनः

जातः पराभवस्तस्मिन् विज्ञेयो बत्सरे शुभे

"नंद = ९, पूर्ण = ० भूमि = १, नेत्रे = २ कुल मिलाकर (बायीं तरफ से गिनने के बाद) २१०९ युधिष्ठिर शक, नाम धाता, इस शुभवर्षपर कुमारिल भट्टाचार्यकी मृत्यु हुई।" यह वर्ष ख्रिश्चन कालगणना के अनुसार ईसा पूर्व (२६३४ - २१०९ =) ५२५ सिद्ध होते हैं।

इस 'जिनविजय' में कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के मिलाप का वर्ष ऐसा दिया है।

पथात्पञ्चदशे वर्षे शंकरस्य गते सति

भट्टाचार्य कुमारस्य दर्शनं कृतवान् शिवः

शंकराचार्य १५ वर्ष की आयुमें कुमारिल भट्टसे मिले थे।" संस्कृत चंद्रिका नामक पुस्तक में आदि शंकराचार्य का जन्मवर्ष ईसापूर्व ५०८ दिया है। इसका अर्थ यह है कि शंकर भट्टाचार्य १०० ईसा पूर्व (५०८-१४८) ४९४ में हुआ था। यही भट्टाचार्य का देहत्याग वर्ष भी है।

कालिदासका समयः

कुमारिल भट्टका जीवन काल ईसापूर्व ५५७ से ईसापूर्व ४९४ तक का है, यह हम देख चुके हैं। उन्होंने कालिदासकी 'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु उक्ति उद्धृत की है। अर्थात् कालिदास का काल कुमारिल से पहले का था। उनका काल निश्चित करते हैं। पर ऐसा दिखाई देता है कि, कुल मिलाकर तीन कालिदास हो चुके हैं।

सुक्तिमुक्तावली में राजेशेश्वर का यह श्लोक है

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्

शृंगारे ललितोद्वारे कालिदासत्रयी किमु

'शृंगार और ललित शब्द प्रयोग में अतिश्रेष्ठ तीन महाकवी कालिदासों में से एक से भी आज तक कोई बेहतर नहीं था। (राजशेखर का काल ईसा आठवीं सदी था।) फिर उन तीनों के बारे में एकसाथ क्या बात करे ? राजशेखर के अनुसार तीन कालिदासों से अधिक श्रेष्ठ कवी होना असंभव है।

मद्रास के टी. एस. नारायणशास्त्री और कृष्णमाचारि अर इस मत से सहमत हैं। पर टी.जी. माईणकर अपना अलग मत प्रतिपादित करते हैं। उभयपक्ष में कोई खास विश्वसनीय प्रमाण नहीं है, यह स्वीकारते हुए माईणकर कालिदास ग्रंथोंके लिए तीन विभिन्न काल में हुए कालिदासों को मानने की जगह (एक ही) कालिदास के तीन बेहतरीन नाटक और तीन काव्य रचना ऐसा अर्थ करते हैं। वस्तुतः ऐसे विद्वानों की दोषपूर्ण धारणा उन्हें उपर दिए गए श्लोक का सरल अर्थ करने की जगह भिन्न अर्थ स्वीकारने के लिए मजबूर करती है। विशेषतः चंद्रगुप्त मौर्य ग्रीक आक्रमक अलेक्ज़ांडरका समकाली नहीं था इस निष्कर्ष को देखने हुए, उस मतका कोई भी आधार नहीं है। '

और कालिदास के नामपर केवल तीनही काव्य हैं, ऐसी कोई बात नहीं है। कालिदास के कमसे कम चार काव्योंको सभी विद्वान स्वीकारते हैं ऋतुसंहार, कुमारसंभव रघुवंश और मेघदूत इन चार काव्यों के तोर पर माईणकरका स्पष्टीकरण गलत है। कालिदास की अंदाजन तीस पैतीस रचनाएं मानी जाती हैं। उपर बताए गए काव्य और मालविकाग्निमित्र विक्रमोर्वशीय, और शाकुंतल नामक नाटक इसके अलावा मिराशी 'कुन्तलेश्वर दैत्य' नाटकभी कालिदास का ही मानते हैं। माईणकर का यह मानना है कि सांख्यकारिका का कर्ता ईश्वरकृष्ण भी प्रसिद्ध कालिदास ही हैं। इस विषयपर अभी बातचीत करना हमारा उद्देश्य नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त है कि, परंपरा के अनुसार तीन कालिदास हो चुके हैं केवल एक नहीं।

परंपरा के अनुसार तीन कालिदास हो चुके हैं उसमें कालक्रम के हिसाब से

(१) प्रथम शाकुंतल मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय नाटक और मेघदूत कुमारसंभव महाकाव्य लिखनेवाला

(2) दुसरा रघुवंश और ज्योतिर्वेदाभरण लिखने वाला, यह ईसापूर्व ५७ में नयी कालगणना का आरंभ करनेवाले विक्रमादित्य के दरबारमें था। और

(3) तिसरा कालिदास राजा भोज के दरबार में था।

परंतु बहुत विदेशी और भारत के विद्वानोंने एकही कालिदासको मानते हुए अथवा भिन्न काल दिखाकर, बिना वजह उलझनमें पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि, जिस प्रकार वे चंद्रगुप्त मौर्य और अलेक्ज़ांडर को समकालीन मानते हैं, उसी प्रकार वे कालिदास और विक्रमादित्य के बीच अनिवार्य संबंध

मानते हैं। और विक्रमादित्यको दूसरा चंद्रगुप्त मानते हैं। क्योंकि विद्वान शकारीय विक्रमादित्य को एक काल्पनिक पुरुष मानते हैं।

विश्व में प्रसिद्ध प्रथम कालिदास अग्निमित्र के दरबार में थे। 'मालविकाग्निमित्र' में आनेवाली यह पंक्ति देखिए

आशास्यमिति निगम प्रभृति प्रजानां

संपत्स्यते न खलु गोप्तरि अग्निमित्रे ।

"लोगों का कल्याण हो!" यह स्मृतिपुराणका आशीष अग्निमित्र राजा के रहते विफल होना कैसे संभव है?। यह उस नाटक में आनेवाला भरतवाक्य स्पष्टतासे दर्शाता है कि, कालिदास राजा अग्निमित्र के दरबार में था। पर फिर भी कुछ विद्वान इस बात को नहीं स्वीकारते। अपनी गणना के अनुसार मौर्य वंश के बाद शुंग वंश का स्थापक पुष्यमित्र ईसा पूर्व १२१८ में सिंहासन पर बैठा। उसका पुत्र अग्निमित्र ईसा पूर्व (१२१८-६०३) १७५८ में राजा बना। यह 'प्रथम कालिदास' का काल है।

कालिदासने महेंद्रपुत्र विक्रमादित्य और उसका समकालीन उदयन का संदर्भ दिया है, पर इतनी बातपर उसे इन दोनों का समकालीन नहीं माना जा सकता। आधुनिक विद्वान उदयनको ईसापूर्व आठवे शतक से आगे का नहीं मानता 'विक्रमोर्वशीय' में ज्येष्ठ कालिदासने (महेंद्रपुत्र) विक्रमादित्य की प्रशंसा की है। इसलिए वह उस राजा के दरबार में था, ऐसा विद्वान मानते हैं इस बात ने ही उलझन में डाला है। कालिदास के अन्य किसी कृती में ऐसा नहीं है। इसके विपरीत 'मालविकाग्निमित्र' में 'अग्निमित्र' की बहुत प्रशंसा की है, स्पष्टरूप में उस नाटककारका मकसद अग्निमित्र की प्रजा के सामने उसकी महत्ता वर्णन करना, और अपने आश्रयदाता के बारे में कृतज्ञता प्रकट करने का था। और ज्येष्ठ कालिदासने अनेक पाणिनी-पूर्व शब्दोंका और पुराणों का संदर्भ दिया है। यह उसका पाणिनी-पूर्व काल दर्शाता है।

द्वितीय कालिदास शकारीय विक्रमादित्य के दरबार में "था। वह ज्योतिर्विदाभरणकर्ता है। उसमें खुद उसने ही अपनी 'रघुवंश' नामक अन्य कृतीका संदर्भ दिया है, कालिदास ने रची हुई अन्य किसी भी रचना का उसमें नामनिर्देश नहीं है। इससे उस सच्चाई को समर्थन मिलता है कि, शाकुंतला कर्ता का काल कुमारिल भट्टके (अर्थात् ईसा पूर्व ५५७ से) पूर्वका होगा। खुद कुमारिलभट्टने अपने 'तंत्रवार्तिक' में शाकुंतलमे से "सतां

हि संदेहपदेपुवस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः" नामक पंक्ति ज्यों की त्यों लिखी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि क्यों निविदाभरण के कर्तानि कालिदास और कान के कर्ता कालिदास भिन्न हैं।

द्वितीय कालिदास (ईसापूर्व ५७ में अपनी नयी काल गणना का आरंभ करने वाले) शकारीय विक्रमादित्य के दरबार में नवरत्नों में से एक था। यह राजा परमार वंशका था। अन्य प्रसिद्ध राजा शालिवाहन था; भोज उसका दसवा वंशज है। शालिवाहने ६० सालों तक राज किया; और इसके बाद नौ लोगों ने कुलमिलाकर ५५६ वर्ष राज किया। इस गणना के अनुसार भोजका काल अंदाजन ईसा का (७८+५५६ =) ६९४ वर्ष माना जाता है। यह भी एक विक्रमी राजा था, जिसने अफगाणिस्तान काबीज किया था। तृतीय कालिदास इसके दरबार में था।

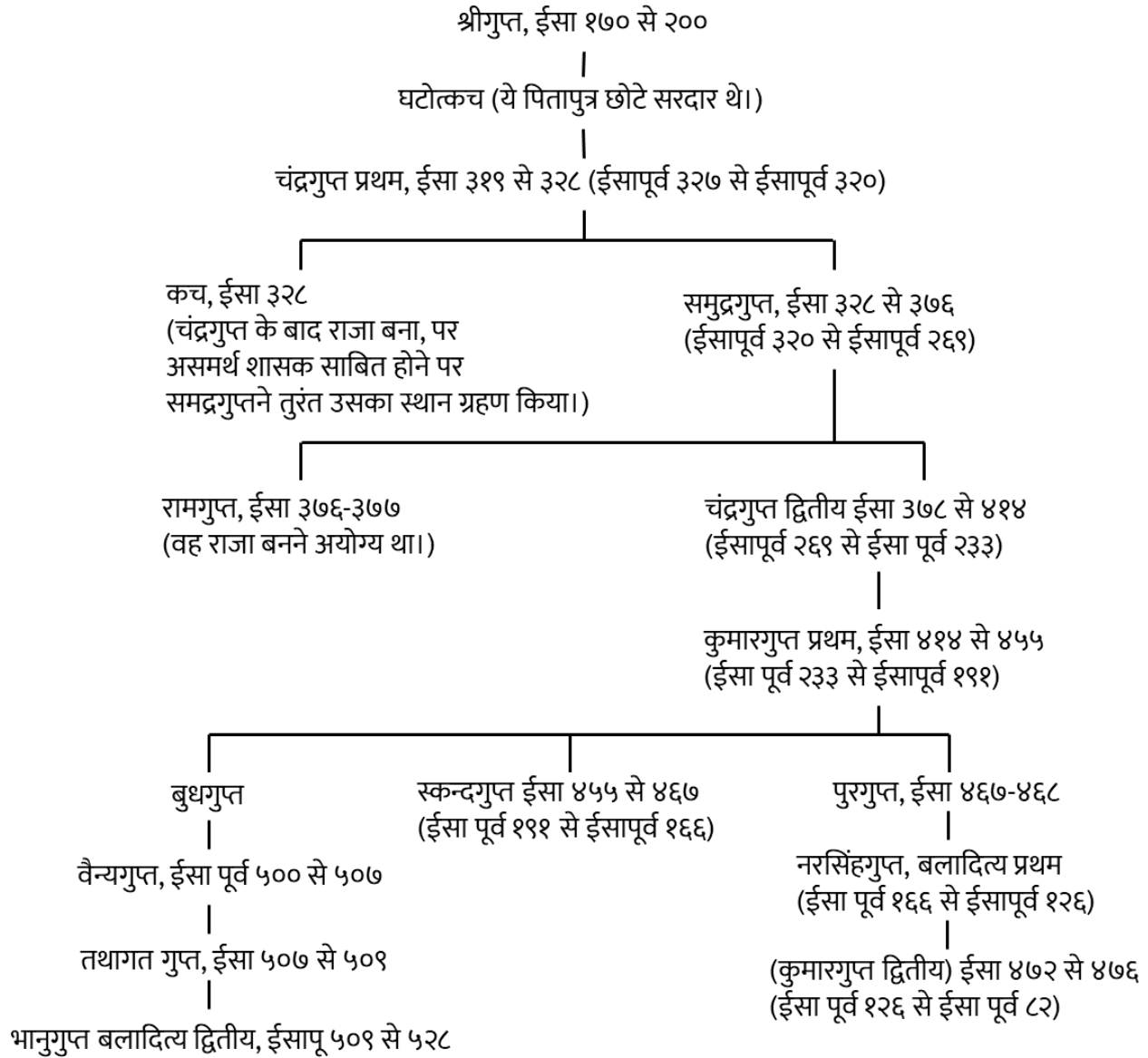
अस्तु! इसप्रकार शंकराचार्य का वर्ष ईसापूर्व ५०९ मानने के खिलाफ कोई भी अन्य प्रमाण नहीं है, यह हमने देख लिया। हमने भारत की कालगणना की (महाभारतयुद्ध वर्ष) ईसा पूर्व ३१३८ से ईसा के ७८ तक की सूची बनाई है। भारतवर्ष के इतिहास लेखक और अध्यापक इससे आगे इस कालगणना के अनुसार प्रतिपादन करें, यह अनुरोध है।

१.१६ गुप्तवंशकी कालगणना- एक स्पष्टीकरण :

गुप्तकाल के उत्कीर्ण लेखों के बारेमें हमने की हुई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाएगा कि, राजवंशावली वही होने पर भी प्रचलित माना गया, वर्ष ई. स. ३१९ बिल्कुल गलत है। उस वंश के राजा और प्रचलित धारणा के अनुसार उनके राज्यकाल आगे तत्तेमें दिए गए हैं, पुराणों में आनेवाली कालगणना भी ब्रैकेट में दी गई है।

गुप्त सम्राट के बाद मालवा के गुप्तोंने १४५ साल राज किया, और उसके बाद फिरसे गुप्त सम्राटोंने आदित्यसेनसे शुरुवात करके राज किया और अंत में ईसा ३१९ में गुप्त वंश हमेशा के लिए नष्ट हुआ। जीवनगुप्त अंतिम गुप्त सम्राट था।

पौराणिक कालगणना के अनुसार गुप्तवंश के सम्राटोंने ईसापूर्व ३२७ से ईसा पूर्व ८२ तक २४५ वर्ष राज किया। इससे विपरित, प्रचलित कालगणना के अनुसार, इस वंशका शासन काल ईसा ३१९ से ५२८ तक २०९ वर्षों का था। प्रचलित स्वीकृत कालगणना फ्लीटने संपादित किए हुए गुप्तकालीन उत्कीर्ण लेखों के उन्होंने समझे हुए अर्थपर आधारित है।



फ्लीट के अनुसार गुप्तवंशका काल:

गुप्तवंश के सम्राटोंने ईसा पूर्व ३२७ से ईसापूर्व ८२ तक राज किया यह हम उपर निश्चित रूप में देख चुके है। और ग्रीक प्रमाण इस बात को प्रबल करता है यह भी हम देख चुके है।

पर फ्लीट गुप्तकालीन उत्कीर्ण लेखों के आधारपर ईसा ३१९ सम्राट गुप्तवंशका आरंभ वर्ष निश्चित करते है। उनके स्पष्टीकरण स्वीकार करने के लिए योग्य नहीं है। पर फिरभी गुप्त राजाओंके हमने निश्चित

किए हुए काल के साथ कोई भी संदेह न रहे, इसलिए हम इस वंश के प्रचलित वर्षोंका परीक्षण करते हैं, और जिन ऐतिहासिक घटनाओंका उसके लिए सहारा लिया जाता है उनसे वे वर्ष नहीं मिलते ये भी दिखा देते हैं। फ्लीट कहते हैं, "The fact remains, therefore, that in no early record can we find any indication that the era was founded by the Guptas

'वास्तव में, किसी भी प्राचीन लेख में यह काल सूची गुप्तोंने स्थापन करने का संकेत नहीं प्राप्त होता।'

इस विषय के अपने ग्रंथकी प्रस्तावना में फ्लीट कहते हैं, "...The all important question of the exact historical period to which Early Gupta Dynasty must be referred would probably still be left undecided, save by historical and other references and arguments which might at any future time be proved by discoveries to be unsound and erroneous",

(शुरुवात के गुप्त वंशके ऐतिहासिक काल के बारे में महत्वपूर्ण सवाल शायद आज भी अनिर्णित रह सकता है; उसके लिए दिए जानेवाले ऐतिहासिक प्रमाण और दलीले बाद में कभीभी अधिक संशोधन से असत्य और गलत साबित हो सकते हैं।)

किंतु इन दिक्कतों के बावजूद फ्लीट कहते हैं, "It is necessary, however, in order to avoid paraphrasing to have some convenient name for the era, and, therefore, as a simple matter of convenience, I follow the custom of the last forty years and speak of it as The Gupta Era". ("फिर भी हर समय शाब्दिक स्पष्टीकरण देना टाल देना बेहतर होगा और उस कालसूचीको सुविधा के अनुसार नाम प्रदान करे, इसी कारणसे केवल सुविधा के लिए मैं पिछले चालीस झालोंकी परंपरा का पालन कर उस कालको 'गुप्तकाल कहता हूँ।")

फ्लीट आगे कहते हैं कि भारतीय युद्ध की कालसूची और कलियुग की कालसूची में बहुत बड़ी संख्या होने के कारण उन्हें टाल दिया है। बड़ी बड़ी संख्याओंका प्रयोग न करना पड़े इसलिए ऐसा करना जरूरी था। मतलब यह कि, इन युरोपीय विद्वानों के नजरिये से एक सुविधाजनक संकल्पना के तौर पर 'काल' नामक संज्ञाको प्रयोग किया जा रहा है। वास्तव में गुप्त-शक वा काल "जैसी कोई कालगणना मौजूद नहीं है। पर अब गुप्त 'शक' वंश के थे ऐसे किसी आधार के बिना माना जा रहा है।

गुप्त 'शक' वंशसे नहीं थे। फिरभी फ्लीटने ईसा १०३० अप्रैल ३० से सितंबर ३० तक भारत में रहकर जो अवलोकन किया, उसका समाचार लिखनेवाले अरब यात्री अल् बेरुनीकी बात आगे उद्धृत करते हैं,

"As regards the Guptakala, people say that the Guptas were very wicked and powerful people and when they ceased to exist, this date was used as the epoch of an era. It seems that Balaba was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas falls like that of the Balaba era 241 years later than the Shakakala"

(गुप्तकाल के बारेमें लोग कहते हैं कि, गुप्तवंशीय राजा बहुत दुष्ट और बलशाली थे और जब उनका अंत हुआ तब उनके नामसे एक 'संवत्' शुरू किया गया ; शायद वल्लभ उनका अंतिम राजा था, क्यों की गुप्त संवत् और वल्लभ दोनों का आरंभकाल शककाल से २४१ वर्ष बाद आता है। ") यह सच है ने (अल बेरुनी के समाचार का) अनुवाद किया है। पर Im Rainoud ने किया हुआ (आर बेकनी का) अगला अनुवाद इस बारे में स्पष्ट है। "We understand by the word Gupta, certain people who it is said were wicked and powerful; the era which bears their name is the epoch of their extermination"

इसमें बेशक कहा गया है गुप्तों के नामसे कालगणना उनके समाप्ती के वक्त पर शुरू हुई थी। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि, गुप्तवंशका अंत शककाल के २४१ वे साल पर याने ईसा ३१९ (७८+२४१) में हुआ। वल्लभ अंतिम गुप्त था, और उसके नामसे 'शक' उस समयपर शुरू हुआ। और फिरभी फ्लीट ईसा ३१९ गुप्तवंश के आरंभ का वर्ष मानते हैं ! उनके मत के अनुसार गुप्तों के अंत्यदिन को ही वर्धापन दिन कहा जाता है। यह बहुत बड़ी खोज है।

अल बेरुनी ने ईसा ३१९ गुप्तों का समाप्ती काल दर्शाया है, इससे यह ज्ञात होता है कि, ईसापूर्व ८२ में कुमारगुप्त द्वितीय के मृत्युसे गुप्तों का साम्राज्य खत्म होने पर भी उनके कुछ वंशज कहीं कहीं और ४०१ वर्ष (ईसा पूर्व ८२ + ईसा १९) राज करते रहे, और अंत में ईसा ३१९ में वह वंश पूर्णतः खत्म हुआ।

फ्लीट स्वीकारते हैं कि उत्कीर्ण लेखों के बारे में उनके दिए गए पाठ गलत साबित हो सकते हैं, किंतु अबतक सबसे विश्वसनीय मानकर वे उन्हें स्वीकारते हैं, ऐसा उन्होंने कहा है। पर उत्कीर्ण लेख क्रू. १८ (मंद सोर) में 'मालव गणशक' के ४९३ वे वर्षपर जो अगला संदर्भ है, वह विक्रम संवत्का है, ऐसा उन्हें विश्वास है

-

मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये

त्रिनवति अधिके अब्दानां ऋतुसंव्ययनस्वने

'मालव के गणतंत्र को चार सौ त्र्यानवे से अधिक वर्ष बितने पर जिस मौसम में बादल गरजते हैं ।

उत्कीर्ण लेखों में गुप्तों के कालगणना के रहस्य के द्वार की चाबी है, ऐसा फ्लीट मानते हैं। इस लिए इस लेखका अर्थ हम देखते हैं।

दक्षिण गुजरात के 'लाट' प्रदेश से रेशम बुनकरों का एक समूह (वर्तमान मध्यप्रदेश के) पहले जिसका नाम मंदसोर था उस नगरी में आया। अपनी कला और कड़ी महनत से वे अमीर बने, और उन्होंने अपने एक संघ की स्थापना की। उसमें से कुछ योद्धा थे। सम्राट कुमार गुप्त के काल में वे प्रसिद्ध हुए। दशपूर नगर में विश्वकर्मा उस सम्राट का - सदस्य था, उसके बाद उसका पुत्र बंधुवर्मा उस पदपर विराजमान हुआ। और उस समय 'मालवगणक' के ४९३ वर्ष बितने पर सूर्य का एक भव्य

मंदिर 'रेशीम-वस्त्र व्यापारियों'ने बाँधा।

उस वक्त दशपूर को बंधुवर्मा कारोबार चलाता था। फ्लीट मालवगणशक अर्थात् ईसापूर्व ५७ में शकारीय सम्राट विक्रमादित्यने प्रारंभ किया हुआ 'विक्रमसंवत्' है ऐसा माना जाता है, और इस मत के अनुसार यह मंदिर खड़ा करने का, और इसलिए गुप्त वंशीय (प्रथम) कुमारगुप्त का काल ईसा ४३६ (४९३-५७) है ऐसा दिखाते हैं।

बीसवी पंक्ति में अगला श्लोक दिखाई देता है :

बहुना समतीतेन कालेन अन्यैश्च पार्थिवैः ।

व्यशीर्येत एकदेशोऽस्य भवनस्य ततो अधुना ॥

उस वास्तु के निर्माण के बाद बहुत समय बितने पर और बहुत से राजाओं का राज्यकाल समाप्त होने पर उस भव्य मंदिर का एक हिस्सा गिर पड़ा। ५२९ वर्षोंके उपरान्त वह हिस्सा ठीक किया गया। ऐसा

फ्लीट अगली पंक्तीका अनुवाद करते हैं। इस विधान का स्पष्ट अर्थ यह है कि वास्तुनिर्माण के ५२९ सालों के बाद वह हिस्सा गिर पड़ा। और उस समुदायने वह ठीक किया। पर फ्लीट सरल अर्थ न लेते हुए कहते हैं कि, ५२९ वर्षों की गिनती भी संवत् ५७ से करनी चाहिए। अर्थात् ५२९-५७ = ४७२ ईसा के वर्षपर इस भव्य मंदिर का एक हिस्सा गिर गया और वह उन रेशम-वस्त्र व्यापार के समूहने ही ठीक किया। यह मंदिर ४३६ के वर्षपर बाँधा गया और एक हिस्सा ४७२ वर्षपर गिर पड़ा। अर्थात् ३६ सालों में इस मंदिर का एक हिस्सा, गिर पड़ा। यह ३६ वर्ष ही "बहुत अरसे बाद" और "बहुतसे राजाओं का राज्यकाल समाप्त होने पर ऐसा अर्थ इससे निकलता है। ३६ वर्षों में मामूली मिट्टिका घर भी नहीं गिरता, तो यह भव्य मंदिर कैसे गिर सकता है? वास्तव में कुमारगुप्त प्रथम का राजकाल ही ३६ वर्षोंका था। इसका अर्थ कुमार गुप्त के बाद जादा से ज्यादा और एक राजाने राज किया होगा, यही सच्चाई है। फिर, 'बहुत वर्ष बितने पर बहुत से राजाओं का राज्यकाल समाज हुआ इस श्लोक में आनेवाले शब्दों का कोई मतलब नहीं है। फ्लीट के इस विचित्रता से अर्थ लगाने के कारण इस दलदल में हम फँस जाते हैं। और असंभव निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। इससे यह ज्ञात होता है, मालवगण शक विक्रम संवत् नहीं और इससे सम्राट गुप्तका काल निश्चित करने में कोई सहायता नहीं मिलती।

फ्लीटने अपने 'कॉर्पस इन्स्क्रिप्शन्स इंडिकेरम खंड III (वाराणसी १९७० प्रति) में गुप्तों के शिलालेखों को संपादित किया है। उसमें गुप्त सम्राटों का काल ईसा ३१९ से ४७६ और आगे वह ५२८ तक खींचा है। यह मानते हुए सभी संपादन किया है। इसलिए उसे ऐसे उलटपुलटे विधान करने पड़े। आश्चर्य यह है कि, हमारे भारत के पंडितों ने उसके खिलाफ आवाज न उठाते हुए इन अंग्रेज लेखकों के साथ अपना सूर मिला लिया है।

किंतु विक्रमादित्य (अथवा कोई भी राजा) नूतन संवत् किसी प्रदेश के नामसे क्यों शुरू करेगा? वह अपने 'विक्रम' नामसे संवत् शुरू करने की जगह 'मालवगणशक' ऐसा नाम क्यों देगा ? 'विक्रमसंवत्' के नामसे वह पहलेसे मशहूर है। 'मालवगणशक' ऐसा किसीने भी नहीं कहा है। केवल फ्लीट साहब ऐसा कहते हैं। यह पूरी तरह से जानते हुए फ्लीट कहते हैं कि वस्तुतः यह विक्रमादित्य एक काल्पनिक सम्राट होते हुए यह विक्रम संवत् (जो आजभी उसके नामपर शुरू है) 'ईसापूर्व ५७ में मालव टोलियों द्वारा स्थापन किया गया शासनका स्मारक है! इसी प्रकार वे शककर्ता शालिवाहन को भी काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं। यह किस आधारपर निश्चित किया गया ? इसे किसी प्रमाण की आवश्यकता है या नहीं?

शकारीय विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता:

इससे विपरित भविष्यपुराण में इस विक्रमादित्य के जीवन का सिलसिला दिया है।

पुण्ये त्रिंशत् शते वर्षे काली प्राप्ते भयंकरे ३-१-७-१४

जातः शिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद् गुरुकालयात् - १५

विक्रमादित्य नामानं पिता कृत्वा मुमोद

स बालोऽपि महाप्राज्ञः पितृमातृप्रियंकरः ॥ १६

"भीषण कलियुग के तीन हजार वर्ष बितने पर, शिव के न आदेश से कैलासपर स्थित गुह्यकालय मे से एक 'दैवकृत पुरुषने शकोंका नाश और आर्य धर्म के उत्कर्ष के लिए गंधर्वसेन के पुत्र के रूपमें जन्म लिया। पिताने बड़े शौकसे उसका नाम विक्रमादित्य रखा। पाँच वर्षका होते हुए उसने वनमें जाकर बारह वर्षों तक तपश्चर्या की। (उसके जन्म के समय उसके पिता वनमें थे और उनका दुसरा पुत्र शंख राज कर रहा था।) बादमें (पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता के मृत्यु के बाद) वह अपने तप सामर्थ्य से अंबावती में (उज्जयिनी में वापस लौटा और उसका सालंकृत स्वर्ण सिंहासनपें बिठाकर राज्याभिषेक किया गया।" इस पुराण के अनुसार उसका जन्मवर्ष ईसा पूर्व १०१ और राज्यारोहण ईसापूर्व ८२ है। उसे भारतवर्ष का सम्राट कहा गया है, भारत वर्ष की सीमाएं बनाई है निचले लोक में

पश्चिमे सिन्धुनाद्यन्ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे

उत्तरे बदरिस्थाने पूर्वैच कपिलान्तकः ॥ १-३-२०-१०

"पश्चिम की ओर सिंधु नदी दक्षिण की ओर सेतूबंध रामेश्वर, उत्तर की ओर बदरिस्थान और पूरब की ओर 'कपिल प्रदेश' ये सीमाएँ है।

इसके अलावा शतपथ ब्राह्मण के टीकाके आरंभ में, हरिस्वामी कहते हैं, "यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशत् शतानि चत्वारिंशत्समाश्चान्यस्तदा भाष्यमिदं कृतं वै" (यह टीका कलियुग के ३०४७ वर्ष बितने पर लिखी गई है।) और आगे कहते हैं, "श्रीमतो अवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्यभूपतेः धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्याच्छतपथिं श्रुतिम्" (शतपथ ब्राह्मण की टीका उज्जैन भूपति विक्रमादित्य के धर्माध्यक्ष हरिस्वामीने लिखी है।)

कुछ विद्वान "सज त्रिंशत्शतं को एक शब्द मानते हुए कलियुग के ३७४० (३७०० + ४०) वर्ष गिनते हैं। वह वर्ष ईसा ६३७ (३७४०- ३१०२) है। पर उस वर्ष 'अवन्तिनाथ विक्रमार्क - उज्जैन का राजा विक्रमादित्य- ऐसा कोई नहीं था। इसलिए यह पाठ सच्चाई से मेल नहीं खाता।

इसलिए यह कलिवर्ष ईसापूर्व ५४ (ईसा पूर्व ३१०२-३०४७) है, और इसी दौरान ईसापूर्व ५७ में विक्रमादित्य ने अपने 'संवत' का आरंभ किया। हरिस्वामीने मीमांसा के शबर भाष्यपर 'बृहति' नामक टीका लिखनेवाले प्रभाकरका संदर्भ दिया है। 'सर्वसिद्धान्त रहस्य' में प्रभाकर और आदि शंकराचार्य का ज्येष्ठ समकालीन कुमारिल भट्ट का सिलसिला देखने के लिए इसी पुस्तकका खंड ११ देखिए।

कलियुग वर्ष ३०४४ अर्थात् ईसापूर्व ५७ विक्रमसंवत का आरंभवर्ष था। इस बात का समर्थन और एक बात से होता है, वराहमिहिर और कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे, और 'कुतूहलमंजरी' में वराहमिहिरका जन्मवर्ष युधिष्ठिर शक ३०४२ (याने विक्रमसंवत २३ = ईसापूर्व ३४) (ऐसा दिया है। और कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण' ग्रंथ के समाप्ती में भी लेखनकाल युधिष्ठिर शक ३०४२ ऐसा दिया है।

शालिवाहन की ऐतिहासिकता:

अंदाजन ईसा के १८ में शकारीय विक्रमादित्य के मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य नष्ट हुआ, और शकों ने प्रदेशाम लुटमार शुरू कर दी। उस के बाद

एतस्मिन् अंतरे तत्र शालिवाहन भूपतिः । (भविष्य) ३-३२-१७

विक्रमादित्यपौत्रः च पितृराज्यगृहीतवान्

जित्वा शकान् दुर्धर्पान् चीन तैत्रिरिदेशजान् ॥ १८

बाल्हिकान् कामरूपांश्च रोमजान् खुरजांश्चतान्

तेषां कोशं गृहीत्वा च दण्डयोग्यानकारयन् ॥ १९

स्थापिता तेन मर्यादा म्लेंच्छार्याणाम् पृथक् पृथक्

सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य च उत्तमम् ॥ २०

'विक्रमादित्य का पोता सम्राट शालिवाहनने अपने पैतृक साम्राज्यको फिर से अपने अधिकार में लिया, उसने चीन, मंगोलिया, बाल्हिक, आसाम, रोमक (और खारोसान) ईराण आदि देशों में रहनेवाले बलशाली शकों पर विजय प्राप्त किया; उनके खजानों पर कब्जा किया और उन्हें अपने आधीन बनाया, उसके बाद उसने शक और आर्थो की सीमाएँ तय की, आर्यदेशका नाम सिन्धुस्तान है।

भास्कराचार्यकृत 'सिद्धान्त शिरोमणी' के अनुसार शालिवाहन शक' का इस प्रकार प्रारंभ हुआ

“नन्दाद्रींदुगुणान् च विक्रमस्थाने कलेः वत्सरे”

नंद = ९, आद्रि = ७, इन्दु = १, और गुण = ३, कुल मिलाकर (कलि युग के) ३१७९ वर्ष और ईसापूर्व ५७ में स्थापित विक्रम संवत् का अंत (३१३९ - ३१०१ =) ईसा ७८.

इस सिलसिले को आगे दिए हुए ग्रंथ के संदर्भ से प्राबल्य मिलता है।

१) कालिदासकृत 'ज्योतिर्विदाभरण'

२) नेपाल राजवंशावलि

३) श्रीकृष्णमित्र कृत ज्योतिषफल रत्नमाला:

- ४) कल्हण की राजतरंगिणी,
- ५) शतपथ ब्राह्मण के भाष्य,
- ६) महावंश (बुद्ध ग्रंथ)
- ७) मैक्विडल कृत Ancient India Of Ptolemy
- ८) अल बेरुनीका ग्रंथ (इंडिया)

"और तो और भारत में सभी स्थानों पर प्रचलित पंचांगों में आज भी विक्रमसंवत के अनुसार अथवा शालिवाहन शक के अनुसार ही कालगणना करते हैं। उन दो सम्राटों को काल्पनिक मानना सच्चाई को झूठलाना है। आक्रमक 'शकों' पर प्राप्त किए बड़ी जीत के स्मरण के लिए उन्होंने वर्षगणना की दो रीतियों का आरंभ किया। विक्रमसंवत और मा वा की टोलियोद्वारा ईसापूर्व ५७ में स्थापित संघटना के बीच (फ्लीट दिखाना चाहते हैं वैसा) कोई संबंध नहीं है।

और इसके अलावा इस अंग्रेज विद्वान की भारतीयों को जंगली टोलियाँ दर्शाने की चाह भी देख सकते हैं। वे ह 'मालवानां गणस्थित्वा' का अनुवाद करते समय "The tribal constitution of the malavas" ऐसा कहते "है, वस्तुतः उचित अनुवाद The republication constitution of The malavas (मालव लोगों की गणतंत्रात्मक संघटना) ऐसा करना चाहिए था। इस प्रकार 'मालवगणशक' विक्रमसंवत नहीं है।

‘मालव गण’ का अर्थ क्या है?

यह शब्द प्रयोग मंदसौर के शिलालेख में (उत्कीर्ण लेख क्र. ३५) फिरसे किया गया है। उसके पंक्ति क्र. ३१ में कहा है,

पंचसु शतेषु शरदं यातेषु एकोनवति

सहितेषु मालवगणस्थिति वशात् - कालज्ञानाय लिखित्सु

“का अनुवाद फ्लीट इस प्रकार करते हैं- "Five hundred autumns, together with ninety less one, having elapsed from (the establishment of) the supremacy of the tribal

constitution of the Malavas, (and) being written down in order to determine the (present) time" (११) "मालव टोलियों की संघटना के स्वामित्व को {स्थापित होने के बाद} पाच सौ अधिक ८९ शरद ऋतु बितने पर, और वर्तमान समय निश्चित करने के लिए लिखनेपर.....")

इस उत्कीर्ण लेखमें एक टोलीका नेता यशोधर्मन के शत्रुओं द्वारा घायल होने का संदर्भ मिलता है। महानराजा विष्णुवर्धन का राजाधिराज परमेश्वर के नाम से उल्लेख किया है। साल मालवगणशक ५८९ माना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि, विष्णुवर्धन राजा था, और यशोधर्मन उसके द्वारा नियुक्त किया गया प्रांतपाल था। शशिदत्त राजपुरोहित था, उसका पुत्र वराहदास और (वराहदास) का पुत्र रविकीर्ति था; उसकी पत्नी भानुगुप्ताको भगवद्दोश, अभयदत्त और दोशकुंभ नामक पुत्र थे। अभयदत्त राजाका अधिकारी (राजस्थानीय) था, और उसके समरणार्थ दोशकुंभ पुत्र दक्ष ने एक बड़ा कुआ बाँधा था।

उपर दिए गए श्लोक का शब्दशः अर्थ यह है, विशेष समयके ज्ञान के लिए लिखे गए निश्चित संदर्भकाल से ५८९ वर्ष बिता चुके हैं, और यह संदर्भ मालवगण 'शक के स्थापना के बारे में हैं।' इसका सरल अर्थ वर्तमान समय मालवगणशक ५८९ समाप्त हुआ ऐसा है।

मालव लोग स्वतंत्रता पसंद करते थे, अन्य कोई उनके उपर स्वामित्व प्रस्थापित करने का यदि प्रयास करे तो वे उसका पूरी तरह से विरोध करते थे, ऐसा नजर आता है। सी. पायने नामक एक अंग्रेज लेखक कहते हैं, "In Indian manuscripts we find Malwa noticed as a separate province eight hundred and fifty years before the Christian Era. When Dhunji, to whom a divine origin is attributed, is said to have established the power of the Brahmins and to have been the founder of the powerful dynasty." "The family of Dhunji is said to have reigned three hundred eightyseven years when Putraj, the fifth in descent, dying without issue, Adab Panwar a prince of Rajput clan, still numerous in Malwa, ascended the throne, establishing the Panwar dynasty which continued to hold sway for upward of one thousand and fiftyeight yeras". "During the period that Dhunji's family held Malwa, we find no particular mention of them until about seven hundred and thirty years before Christ, when Dhunji's successor is said to have shaken off his dependence on the Sovereign of Delhi (i.e. Magadha Emperors). From this time we lose all trace of Kingdom of Malawa until near our

own era when Vikramaditya, a Prince whom all Hindu authors agree in describing as the encourager of learning and the arts, obtained the sovereignty. (१३).

"भारत के साहित्य में हमें ईसा के ८५० वर्षपूर्व मालवा के अलग प्रदेश का संदर्भ मिलता है। उस समयपर उसका जन्म दैवकृत माना जाता है, उस धुनजी ने ब्राह्मणों की सत्ता स्थापन कर एक बलशाली वंशका आरंभ किया है ऐसा कहा जाता है। ऐसा संदर्भ मिलता है कि, धुनजी के वंश ने ३८७ वर्ष राज किया, उसका पाँचवा वंशज पुटराज निपुत्रिक चल बसा; और उस समय मालवा में रहनेवाले राजपूत लोगो में से एक राजा अदब सिंहासनपर बैठा और उसने पंचार वंश की स्थापना की; उस वंशने १०५८ वर्षोंसे अधिक काल तक राज किया।" "धुनजी के वंशका मालवा में शासन शुरू होने के पश्चात ईसा पूर्व ७३० के आसपास धुनजी के उत्तराधिकारीने दिल्लीका (याने मगध साम्राज्यको) स्वामित्व ठुकरा दिया ऐसा कहा जाता है, तबतक उस वंशका कोई विशेष संदर्भ नहीं दिखाई देता। इस समय से ईसा के आरंभ के आसपास जिसका सभी हिंदू लेखक विद्या और कलाओंका आश्रयदाता के रूप में वर्णन करते हैं, उस विक्रमादित्य के सम्राट बनने तक हमें मालव राज्य के बारेमें कोई जानकारी नहीं मिलती।"

इस प्रकार ईसा पूर्व ७३० से मालवापर राज करने वाला कोई राजा नहीं था, और मालव लोग तबसे अपनी शक गणना करने लगे ऐसा नजर आता है। 'शक' लोगों में प्रचलित होने के लिए अंदाजन पाँच वर्ष लगे होंगे ऐसा मानते हुए हम उसका प्रारंभ ईसा पूर्व ७२५ में मानते हैं। विक्रमादित्य और शालिवाहनने अपना 'शक' शुरू करने से पहले मालवा और आसपास के प्रदेश में ईसापूर्व ७३५ का मालवगणशक और (अलू बेरुनी द्वारा उल्लेखित ईसापूर्व ४५७ का श्रीहर्षशक, प्रचलित था।

इससे कमसे कम यह तो स्पष्ट होता है कि, कोईभी राजा के नामसे असंबद्ध यह मालवगणशक शकारीय विक्रमादित्य द्वारा स्थापन किया गया ईसापूर्व ५७ का संवत् नहीं है। वह 'शक' (संवत्) 'मालव लोगों ने अपनी स्वतंत्रता को प्रस्थापित कर प्रारंभ की गई वर्षगणना है। यह वर्ष ईसा पूर्व ७२५ के आसपास का हो सकता है यह निष्कर्ष इस समय मालवा में घटी घटनाओं को देखते हुए संभव है। इसके सहारे हमें मंदसोर उत्कीर्ण लेख (क्र. १८) का सही काल प्राप्त हो सकता है ऐसा दिखाई देता है। इसलिए मंदसोर सुवर्णमंदिर के संदर्भ में उल्लेखित वर्ष ४९३ का अर्थ ईसापूर्व २३२ (७२५-४३) है। हमने उपर निश्चित किए कालगणना के १ अनुसार उस समय कुमारगुप्त मगध का सम्राट था, इसप्रकार साक्षात उस उत्कीर्ण लेखमें आनेवाले विधान को प्राबल्य मिलता है।

फ्लीट इस स्पष्ट निष्कर्षको स्वीकारने की जगह मालवगण 'शक' ईसा पूर्व ५७ में शुरू हुआ, विक्रम संवत है इस मतपर अड़े रहते हैं। इस मंदिर के निर्माण के ५२९ वर्षों के बाद उसका एक हिस्सा गिर पड़ा। इसका अर्थ यह है इस हिस्से के गिरने का काल $२३३ + ५२९ = ७६२$ याने $५२९ - २३२ = २९७$ AD. का है।

फ्लीट के गलत तर्क :

फ्लीट ऐसे ही बहुत से अन्य भी गलत तर्कों का प्रतिपादन करते हैं। वे कहते हैं, "...For the first time, by visiting Ujjain, I became aware of the almost equally important inscription of Yashodharman and Vishnuwardhan, No. 35 page 150 which gave the key to the whole history of the period by supplying a definite date for Yashodharman, who was known from the Mandsor inscriptions (No. 33 page 142) discovered under my direction in March 1884 to have overthrown the well-known foreign invader and conqueror, Mihirkula who, again, I had previously determined, must have affected the final downfall of the Early Gupta Dynasty. Without these discoveries, the period of the Early Gupta Supremacy would have still remained the subject of argument and doubt whereas with them, I have been able now to set this question at rest, and thus to establish a starting point from which we can work back in developing the Indo-Scythian history, and also through fixing, for the first time, the date of Mihirkula--who as we learn from the writings of Chinese Pilgrim Hiuen Tsang, played a mis leading and important part in the early Indian history to furnish the means of adjusting the chronology before and after him, of the early history of Kashmira, as recorded in the RAJATARANGINI and also of testing the accuracy of the Chinese accounts of the same early period".

(“....उज्जैन में जाने के बाद मुझे यशोधर्मन और विष्णुवर्धन का उतनाही महत्वपूर्ण उत्कीर्ण लेख [क्र. ३५ पृष्ठ १५०] प्रथम ज्ञात हुआ। उस लेखने यशोधर्मन का एक निश्चित समय दर्शाते हुए पुरे इतिहास का द्वार खोल दिया है। मार्च १८८४ में मेरे मार्गदर्शन में खोजे गए मंदसोर उत्कीर्ण लेखद्वारा (क्र. ३३ पृष्ठ १४२) इस यशोधर्मन ने प्रसिद्ध विदेशीय आक्रमक विजेता मिहिरकुल का खात्मा किया ऐसा ज्ञात हुआ था, और इस मिहिरकुल ने जैसा मैंने पहले ही निश्चित किया था वैसे, शुरुवात के गुप्त वंशका अंतिम पराभव किया था। इस खोज के बिना गुप्त वंशका काल आजभी विवाद्य और संदेह से घिरा हुआ रहता, पर अब उस खोज के

कारण इस प्रश्न के बारे में हमेशा के लिए निर्णय करने के बाद जहाँ से पिछे की ओर गणना करते हुए हम भारत-स्किथियन इतिहास बना सकते हैं, और एक आरंभबिंदु स्थापित करना संभव हुआ है। और इसके "अलावा चीनी यात्री हुआन त्संग के समाचारों के अनुसार जिस मिहिरकुल ने शुरुवात के भारत के इतिहास में बहुत प्रमुख और महत्वपूर्ण किरदार निभाया है जिसके कारण हमें काल निश्चित करना और उससे पूर्व और उत्तर कालके, राजतरंगिणी में कथन किए काश्मीर के आरंभ के इतिहास की कालगणना सुयोग्य तरिके से इकट्ठी करने का साधनप्राप्त करवाना और शुरुवात के काल के बारे में चीनी समाचारों के सच्चाई का परीक्षण करना संभव हुआ है।")

इससे यह स्पष्ट है कि फ्लीट की सभी कल्पनाएँ बेलगाम हैं। उत्कीर्ण लेख क्र. ३५ के सिलसिले से वे अगले निष्कर्षों को साबित करने का दावा करते हैं:

- १) शुरुवात के गुप्त साम्राज्य का काल वे बेशक प्रस्थापित करने में सफल रहे।
- २) मिहिरकुल एक विदेशीय आक्रमक और विजेता थे।
- ३) यशोधर्मन बहुत प्रबल राजा था और उसने मिहिरकुलका खात्मा किया था।
- ४) काश्मीर के शुरुवात के इतिहास के कालगणना का सही तरिका उसने खोजा है।
- ५) चीनी यात्रियोंका समाचार पुरी तरह से सच है।

उपर उल्लेखित उनके प्रस्तावना में आने वाले विधानों में फ्लीट इन उत्कीर्ण लेखों के बारे में उन्होंने निश्चित किए पाठों के विषय में आश्वस्त नहीं थे, यह हम उपर देख चुके हैं। पर अब वे इस प्रकार लिखते हैं मानो अपने विधानों के लिए वे पूरी तरह से विश्वसनीय हो ।

फ्लीट अपने निष्कर्षों के लिए जिन उत्कीर्ण लेखों का सहारा लेते हैं उसपर हम सोच विचार करते हैं। यह यशोधर्मन कौन था, कहाँ से आया था इस बात की कोई भी जानकारी फ्लीट नहीं देते हैं। अन्यत्र भी इस यशोधर्मन का नाम नहीं मिलता।

यह तीन उत्कीर्ण लेखों का एक है, जिसमें क्र ३५ का लेख महत्वपूर्ण है। उपरि उल्लेख के अनुसार विष्णुवर्धन का राजाधिराज परमेश्वर के नाम से और यशोधर्मनका विष्णुवर्धन के आधीन रहनेवाला टोलीका नेता ऐसा संदर्भ मिलता है।

फ्लीट (टीप ३ में) स्वीकारते हैं कि, 'राजाधिराज नामक उपाधि सार्वभौम सत्ता दर्शाती है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए, यशोधर्मन शत्रुओं के हमले से घायल हुआ था।

क्र. ३३ में यशोधर्मन के विक्रम का वर्णन किया है, जो बलशाली गुप्त न कर सके वह उसने कर दिखाया। और हूणों के मुखिया मिहिरकुल को धूल चटाकर पुरे भारतवर्ष पर अपना अधिकार स्थापित किया ऐसे कहा है। क्र. ३५ में गुप्तों का संदर्भ नहीं है। इसलिए क्र. ३३ में यशोधर्मन, मिहिरकुल और गुप्तों को एक साथ रखा गया है।

क्र. ३४ इसकी नकल है। और वह तुकड़ों में बँटा हुआ है, क्र. ३३ पुरी तरह से उपलब्ध होने से केवल उसी के बारे में सोचना पर्याप्त है।

इस लेख में वर्ष नहीं दिया है, पर हम क्र. ३५ के लेख से आसानी से अनुमान लगा सकते हैं। उसमें मालवगणशक ५८९ कहा है। यह 'शक' विक्रम संवत् नहीं है बल्कि यह मालव लोगों द्वारा स्थापित किया गया था, इस बात को हम उपर देख चुके हैं। पर फ्लीट इसे ईसा पूर्व ५७ में प्रारंभ होने वाला 'मालवशक' मानते हैं। इस बात को स्वीकार कर हम आगे बढ़ते हैं। इसके अनुसार ५८९, ईसा ५३२ बन जाएगा। क्र. ३५ के अनुसार इस दौरान यशोधर्मन विष्णुवर्धन के आधीन रहने वाला एक मांडलिक राजा था। इसलिए क्र. ३३ का वर्ष क्र. ३५ के बाद का होना चाहिए; क्योंकि उसमें सम्राट विष्णुवर्धन का नाम नहीं है, केवल यशोधर्मन के (समुद्रगुप्त को शोभा देने वाला) विक्रम का वर्णन किया है।

इससे ज्ञात होता है कि भीषण हूण मिहिरकुल का खात्मा करने का साहस यशोधर्मन ने किया, और उस वक्त तक विष्णुवर्धन विद्यमान नहीं था। परंतु जिस तरह से विष्णुवर्धन का सम्राट-स्वरूप में वर्णन किया गया है, उसका अर्थ वह शुरुवाति के गुप्त काल के बाद तुरंत पुरे भारत पर अपना राज स्थापित किया होगा। यशोधर्मन उस सम्राट का एक प्रांताधीश था, परंतु उसने मिहिरकुल को पराभूत किया तब विष्णुवर्धन कहीं आसपास भी न था। मिहिरकुल को पराभूत करना, यह यशोधर्मन का बहुत बड़ा पराक्रम माना गया है, क्योंकि स्वयं गुप्त भी वह कर न सके थे। और जिस तरह यशोधर्मन ने यह आश्चर्यजनक कर्म किया उससे यह स्पष्ट है कि, विष्णुवर्धन स्वयं सम्राट रहते वह ऐसा कर न सका। अगर विष्णुवर्धन गुप्तों के बाद तुरंत राज पर आया होगा, तो वही गुप्तों के नाश का कारण रहा होगा। तो फिर फ्लीट वह श्रेय मिहिरकुल को कैसे देते हैं? और एक बात यह है कि, क्र. ३३ का उत्कीर्ण लेख क्र. ३४ और ३५ बनाने वाले गोविंद नामक मनुष्य ने ही बनाया होगा, तो यशोधर्मन को राजाधिराज क्यों नहीं कहा? यह लेख यशोधर्मन के आदेशानुसार बनाया गया, ऐसा कहा है, फिर उसने महत्वपूर्ण बातों को अनदेखा क्यों किया? या फिर मिहिरकुल नामक विदेशी हुण ने गुप्तों का नाश ईसा के ५३२ में किया और उसी साल मिहिरकुल का खात्मा यशोधर्मन ने किया? और यह यशोधर्मन विष्णुवर्धन का मांडलिक था। फिर राजाधिराज विष्णुवर्धन ने कौनसा खास विक्रम किया था?

वास्तव में उत्कीर्ण लेख क्र. ३३ बनावट नजर आता है। स्वयं पत्नीटने ही बहुत से उत्कीर्ण लेखों को बनावट साबित किया है। यशोधर्मन नामक कोई विक्रमी राजा था इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं है। और यह इतना विक्रमी राजा होता तो, भविष्यपुराण में जहाँ अकबर और रानी व्हिक्टोरिया का भी संदर्भ है, वहाँ उसके बारे में कोई भी संदर्भ न हो, यह कैसे संभव है? इसके अलावा मिहिरकुल विदेशी आक्रमक अथवा हूण न होते हुए, तृतीय गोनंदके वंशका एक क्षत्रिय था।

मिहिरकुल का अन्य एक उत्कीर्ण लेख (क्र. ३७ ग्वाल्लेह शिलालेख) है। इसमें लिखा है मिहिरकुल के शासनकाल में मातृछेदने सूर्य मंदिर का निर्माण किया था और मिहिरकुल को वैष्णव तोरामणका पुत्र कहा है। ऐसा होने पर मिहिरकुल (वैष्णव नहीं बल्कि विदेश का आक्रमण करनेवाला था इस पत्नीट के प्रतिपादन का क्या वजूद है?

लेख ३६ में उस तोरामण को राजाधिराज कहा गया है, वह अंतिम गुप्तवंशीय सम्राट बुद्धगुप्त के बाद आया ऐसा कहा है। पत्नीट कहते हैं कि, अंतिम गुप्त सम्राट के बाद विष्णुवर्धन और यशोधर्मन राज करने लगे इस ग्रंथ में (p.150), वे लिखते हैं कि उस (शुरुवात के) गुप्तों के बाद तोरामण राज करने लगा। वे केवल एक-दो सालों के वक्त पर इन तीनों महान विजाताओं को रखते हैं, मानो ईसा के ५३२ में अथवा उसी के दौरान देश में उपर की ओर आते हैं और किसी उल्का की तरह उसी वर्ष में लुप्त हो जाते हैं। तो फिर ये तीनों ईसा के ५३२ के आसपास एक दो वर्षों में ही पलक झपकते ही बड़े बड़े सम्राट हो चुके हैं ?

पत्नीट कहते हैं, स्कंदगुप्त के बाद नजर तुरंत बुधगुप्त (ईसा का ४८४) और भानुगुप्त (ईसा का ५१०) पर जाती है। (P.7 Introduction) और भानुगुप्तका राज्यकाल ईसा के ५२८ तक का था वे आगे कहते हैं कि, महान राजा मिहिरकुलने इसी दौरान गुप्तों का पुरी तरहसे खात्मा किया। उसके पिता तोरामण भी सम्राट थे: यह उत्कीर्ण लेख क्र.३६ में कहा है। पत्नीट और भी कहते हैं कि मिहिरकुलने ईसा के ५३३ के आसपास गुप्तों का विनाश किया। (P-10 Introduction), और लिखते हैं कि. (P. 11) यशोधर्मनि मिहिर कुलको ईसा की ५३३-३४ इकाई में पराभूत किया। उत्कीर्ण लेख क्र. ३७ से हमें जानकारी मिलती है कि मिहिरकुलके राज्यकाल में एक सूर्य मंदिर बाँधा गया। इसलिए अगर उसने ईसा के ५३३ के आसपास गुप्तों का अंत किया होगा, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि, उसी साल उपर बताए उत्कीर्ण लेख में आनेवाले संदर्भ के अनुसार स्वयं यशोधर्मनि उसे पराभूत किया। फिर मिहिरकुलके शासनकाल के पंद्रहवें वर्षपर सूर्य मंदिर के से बांधा जा सकता है? इसके अलावा, मिहिरकुल के पिता तोरामण और यशोधर्माका सम्राट विष्णुवर्धन इन दो वीरों को ईसा ५३२ के आसपास के समयपर रखना पड़ेगा। और पत्नीट कहते हैं इसलिए हम भी उस बातपर विश्वास करें ऐसी वे उम्मीद करते हैं। एक ही म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती, ऐसी कहावत है पर

फ्लीट आश्चर्यजनक बात को सच कराने का प्रयास करते हैं। राजतरंगिणी के अनुसार तोरामण काश्मीर के राजा हिरण्य का (ईसा पूर्व १६ में ईसा का १४ वा वर्ष) छोटा भाई था। उसने खुदके नामसे सिक्के बनाए, इस लिए राजा हिरण्यने उसे बंदी बना लिया, और उसी कारावास में उसकी मृत्यु हो गई। क्र. ३६ में तोरामणका पुत्र मिहिरकुल था, जिसके राज्यकालमें मातृछेदने सूर्यमंदिर बनाया, ऐसा कहा है। ऐसी उटपटांग बातें फ्लीट साहबने की हैं। सभी शिलालेखों का पठन शायद गलत हो सकता है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि, उत्कीर्ण लेख ३३, ३४ और ३६ बनावटी हैं। क्योंकि भारत के संपूर्ण साहित्य में था अन्यत्र भी इनके लिए कोई समर्थन नहीं मिलता। उसमें आनेवाली जानकारी हास्यजनक और अविश्वसनीय है। 'राजतरंगिणी' में कहा है कि, तोरामणने मिहिरकुल के सात सदियों बाद राज किया, और वे उत्कीर्ण लेख मिहिरकुल को हूण दर्शाते हुए तोरामणका पुत्र मानते हैं। उन लेखों के अनुसार विष्णुवर्धन, यशोधर्मन तोरामण और उसका पुत्र मिहिरकुल ये सब लगभग एक ही वर्ष में ईसा के ५३२ में सम्राट थे। इसलिए इनमें से कुछ लेखों का बनावट होना अस्वीकार करना होगा। पर फ्लीट कहते हैं कि, इन उत्कीर्ण लेखों का समूह उनकी सबसे आधुनिक खोज है। (देखिए वहीं, P. 13 Introduction)

फ्लीट के गुप्तकालीन शिलालेख खंड में क्र. ५९ के उत्कीर्ण लेखमें विष्णुवर्धन नामका संदर्भ मिलता है। उसे एक राजा जिसे किसी यशोधर्मन का पुत्र कहा गया है, और वंशावली इस प्रकार दी है - व्याघ्ररथ, यशोरथ, यशोवर्धन, विष्णुवर्धन। इनमें से अंतिम राजा ने पुंडरिक यज्ञ करने के बाद एक यज्ञस्तंभ का निर्माण किया।

अगर हम इस (क्र. ५९) उत्कीर्ण लेख के प्रमाण को उपर दिए गए (३३ से ३९) लेखों के साथ जोड़ दे, तो शायद यह रहस्य खुल जाएगा।

स्वयं फ्लीट 'यशोधर्मन' नाम ठीकसे पढ़ा है या नहीं, इस बारे में संदेह है, अपने गुप्त-शिलालेख खंडके पृष्ठ १४५ पर कहा है, यशोधर्मन के स्थानपर यशोवर्धन पढ़े। क्र. ३५ में इस यशोधर्मन को विष्णुवर्धन का मांडलिक कहा है। पर अगर क्र. ३५ में दिया हुआ संबंध विपरित माना जाए और वह क्र. ५९ के साथ जोड़ दिया जाए तो उपर दिया गया नामांतर का पठन सही साबित होगा। इस प्रकार क्र. ३५ में यशोधर्मन के स्थान पर यशोवर्धन ऐसा नाम पढ़ा जाए और यह यशोवर्धन विष्णुवर्धन का पिता था, कोई आधीन रहनेवाला नहीं था, ऐसा पढ़ने से संदिग्धता दूर होकर क्र. ३३ बनावटी साबित हो जाएगा। (क्र. ३४ केवल क्र. ३३ की नकल है।)

क्र. ३६ और ३७ के बारे में हम इतनाही कह सकते हैं कि, जो मिहिरकुलके बाद अठरहवा राजा था और हिरण्य का भाई था ऐसा राजतरंगिणीमें कहा है। उस तोरामण का उसमें संदर्भ नहीं है। पूरब की ओर मालवा में तोरामण और मिहिरकुल नामक अन्य कोई छोटे मोटे राजा हुए होंगे, जिनका सम्राट गुप्तों के साथ

कोई संबंध नहीं है। इसके अलावा, लेख ३७ के द्वितीय पंक्ति में मिहिरकुल के पिता का नाम 'श्रीतोरम' दिया है; फ्लीट उसे 'तोरामण' पढ़ते हैं। मिहिरकुल और तोरामण के बीच का संबंध काश्मीर के इतिहास से है और पूरब के मालव प्रदेश से नहीं। इसलिए इस उत्कीर्ण लेखको फ्लीट के अनुसार। न पढ़कर सही तरिके से पढ़ना चाहिए।

मिहिर और तोरामण फ्लीट कहते हैं उस प्रकार हुण नाम नहीं है बल्कि शुद्ध ब्राह्मण-क्षत्रिय नाम है, यह बात प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्रज्ञ वराहमिहिर के नामसे प्रतीत होती है। पर फ्लीट का मानना है कि मेहेरौली उत्कीर्ण लेख (क्र. ३२) में आने वाले स्थलका नाम, 'मिहिरपुरी' का अपभ्रंश है और मिहिर एक हूण टोलीका नाम है। आश्चर्य की बात यह है कि, फ्लीट क्र. ३२ में राजा चंद्र को जिसे मगधके बलादित्यने पराभूत किया उस मिहिरकुल का भाई मानते हैं।

इन सबके अनुसार फ्लीट के मत में शुरुवात के गुप्तों का नाश करने वाले भीषण मिहिरकुल को पराभूत करनेवाले दो राजा थे - यशोधर्मन और बलादित्य; यशोधर्मन का राज्यवर्ष ईसा ५३२ और बलादित्यका ईसा ६७२ है। आदित्य सेन के चौथी पिढी के बाद जीवितगुप्त का जन्म हुआ और उस के बाद बलादित्य देव का जन्म हुआ। इससे यह स्पष्ट होता है कि, फ्लीट की धारणा के अनुसार मिहिरकुल का समय ईसा ५३२ नहीं हो सकता। पर उन्होंने इस गलती की कोई सफ़ाई नहीं दी है।

फ्लीट कहते हैं कि. मिहिरकुल के भाईका नाम उत्कीर्ण "लेख क्र. ३२ में 'चन्द्र' दिया है। उसमें दिए हुए विक्रमोंको देखते हुए स्पष्टरूप में यह गुप्तवंशका -चंद्रगुप्त द्वितीय ही है। वह प्रथम कुमारगुप्त के लगभग ७०-८० वर्षों के पूर्व काल से है। कुमारगुप्त के बाद वह लगभग ७०/८० वर्षों बाद शासन पर आया, इस बात का कोई मतलब नहीं बनता। 'चन्द्र' नाम निश्चित ही हूणों में से नहीं है, पर फिर भी फ्लीट उसे मिहिरकुल का भाई कहते हैं। उनका यह विधान पूरी तरह में विपरित है।

उत्कीर्ण लेख क्र. ६० में संस्कृत विभक्तियों का प्रयोग गलत है, केवल इस कारणवश फ्लीट उसे बनावट कहते हैं। उस लेख के अनुसार समुद्रगुप्त ने गया जिले रेवालिक नामक गाँव दान किया है। संस्कृत विभक्ति के गलत प्रयोग के कारण वह लेख बनावट साबित हो सकता है, उपर दी गई असंगति को देखते हुए क्र. ३३ के लेख को नकली क्यों नहीं कहा जा सकता?

प्राचीन शिलालेख के लिए प्रमाण

'एपिग्राफिका इंडिया में 'आगुप्तायिक कालगणना का संदर्भ मिलता है। यह शिलालेख के बारे में आनेवाला संदर्भ राष्ट्रकूटवंशीय महाराज देज्ज के गौकाक के तशतरी में प्राप्त होता है। महाराज (देज्ज) से संबंधित दानपत्र कही गई पंक्तियाँ इसप्रकार हैं,

“इह = अस्याम् = अवसरण्याम् = तीर्थकाराणाम् चतुर्विंशतितमस्य सम्मतेः श्री वर्धमानस्य वर्धमाणायाम् तीर्थे सन्ततौ = आगुप्ताविकानाम् राज्ञाम् = अष्टासु वर्षशतेषु पंचचत्वारिंशक् अग्रेषु गतेषु”

इनके संपादक एन.एम्.राव इस पत्रिका अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार देते हैं। - "When forty five after eight hundred of the years of the Aguptayika Kings in (i.e. belonging to) this ever flowing and prosperous spiritual lineage of the wise Vardhamana, the twenty fourth of the tirthankaras had elapsed...."

("जब चोबीसवे तीर्थकर ज्ञानी वर्धमान के अनंत वैभवशाली आध्यात्मिक वंशावली के 'आगुप्तायिक' राजाओं के ८४५ साल बित चुके थे...)

दानपत्र की लेखनशैली देखते हुए वह लेख ईसा के छठी अथवा सातवीं सदी का हो सकता है। इसे ध्यान में रखते हुए पुरातत्त्ववेत्ता श्री. राव कहते हैं कि, यह आगुप्तायिक शक ईसा पूर्व ३१२-१३ में चंद्रगुप्त मौर्य राजा के समय आरंभ हुआ होगा। इसके अनुसार देज्ज महाराजका काल ईसा पूर्व ३१२ + ८४५ अथवा ८४५ - ३१२ = ईसा ५३३का है। डी.सी. सरकार के अनुसार 'आगुप्तायिकानाम्' देज्ज राजा के दरबार में रहनेवाले ज्योतिष्यज्ञ द्वारा किया गया झूठा उल्लेख होगा। वे अंदाजा लगाते हैं कि, देज्जने बेलगाँव पर ईसा के ६४२ में पुलकेसिन द्वितीय के मृत्यु और ईसा ६५५ में विक्रमादित्य के राजकाल के दौरान राज किया होगा। इसलिए "सरकार 'आगुप्तायिकानाम्', 'शक' (संवत्) का प्रारंभ ईसा पूर्व (८४५ - ६४२ =) २०३ में मानते हैं परंतु इसी दौरान ऐसा शकारंभ करने वाला कोई भी गुप्तवंशका राजा न होने से वे इसे एक नकली लेख मानते हैं। पर तत्कालीन ज्योतिषवेताने ऐसा नकली लेखन क्यों किया होगा। इस बातकी वे कोई बजह नहीं बताते।

दुसरे विद्वान श्री. के. व्ही. रमेश कहते हैं कि, देज्ज पुलकेसिन प्रथम का एक बलि था, और इसका यह अर्थ होगा कि, यह आगुप्तायिक शक ईसापूर्व चौथे शतक के उत्तरार्ध में शुरू हुआ होगा, और अगर ऐसा है तो चंद्रगुप्त मौर्य अथवा उसके नामपर शुरू किया होगा। "

परंतु मौर्यों को गुप्त नहीं कहा जा सकता, और उन्होंने ऐसा 'गुप्त-शक' का आरंभ न किया होता। देज्ज के दरबार में ज्योतिषी निश्चित रूप में गुप्त राजाओंका संदर्भ देते हैं; और उपर उल्लेख किए गए अनुसार उनका राज्य ईसापूर्व ३२७ में शुरू हुआ था इसलिए इस उत्कीर्ण लेखका वर्ष ईसा ८४५ - ३२७ = ५१८ बन जाता है। और इस समय महाराज देज्ज बेलगाँव को राज कर रहे थे।

एस्. पी. तिवारी स्वीकारते हैं कि, 'आगुप्तायिकानाम् राज्ञाम्' का अर्थ गुप्त नामसे प्रचलित राजा ऐसा है। इसलिए इसका अर्थ ईसा ३१९ से आरंभ हुई गुप्त राजाओं की वर्षगणना ऐसा लिया जाता है। पर

इसबार कोई भी राष्ट्रकूट वंशके देज्ज महाराज नहीं थे इसलिए वे यहाँ पर ईसा ८४५ - ३१९ = ५२६ ऐसा वर्ष देते हैं। इसलिए व्याकरण के कुछ नियम जैसे के जैसे बता कर के कहते हैं कि, 'आगुप्तायिकानाम्' का गुप्तों को छोड़कर ऐसा अर्थ है। गुप्त ईसा के ३१९ में सम्राट बने, इसके अलावा ३१९ साल उक्त काल में से कम किए जाए, ऐसा वे कह रहे हैं।

यह बात सच में अदभुत है! वस्तुतः संस्कृत में 'आ' का अर्थ "अन्मर्यादाभिविद्योः" (पाणिनी २-१-१३) = अंतर्भाव (शुरू) 'से' की सीमा, ऐसा है। उसका विपरित अर्थ करना गलत है। इन विद्वानों के मतों में संदिग्धता अलेक्झांडर और चंद्रगुप्त मौर्य को समकालीन मानने की बजह से है। पर पुरातन इतिहासकार और विद्वानों ने गुप्तवंश के चंद्रगुप्त को ईसापूर्व ३२७ में दिखाया है और नहीं अलेक्झांडर का समकालीन है।

तिवारी राष्ट्रकूटवंशीय देज्ज को ई.स. के ५२८ के कालका दिखाते हुए कहते हैं कि, चालुक्यों ने ईसा के ७८ में आरंभ हुए 'शक' (कालगणना) का पालन किया, और इसलिए उनके शत्रु राष्ट्रकूटों ने उस 'शक' (वंशके) संदर्भ को पुरी तरहसे अनदेखा कर दिया, और एक स्थानिक शक का अनुसरण कर साथ जोड़ दिया। उसे ज्योतिषज्ञों को ज्ञात गुप्त 'शक' (वंश) के साथ जोड़ दिया।

इसके अलावा, इस उत्कीर्ण लेखमें गुप्तों का संबंध जैन तीर्थंकर वर्धमान के साथ जोड़ा है ऐसा विद्वानों का मानना गलत है। तिवारी के मत के अनुसार वह संबंध दानग्राहक आर्यनंदाचार्य के साथ है। मूल वचन ऐसा है,

“जलार ग्रामे जम्बुखंडे गणस्थाय ज्ञान-दर्शन-तपस्-सम्पन्नाय आर्यनंदाचार्याय क्षेत्रम् दत्तवान्” (पंक्ति ८, ९, १०) यह दान ज्ञानी वर्धमान के भक्त इंद्रनंदने आर्यनंदाचार्य को दिया है। यहाँ देज्ज महाराजका काल ईसा ५३३ के आसपास सूचित किया है। वह काल गुप्तसम्राटका काल ईसापूर्व ३२८ मानकर ही प्राप्त हो सकता है, यह भी स्पष्ट है। $३२६ + ८४५ =$ अर्थात् $८४५ - ३२६ = ५१९$ ऐसा दानपत्रका वर्ष है। यह शिलालेखोका प्रत्यक्ष प्रमाण गुप्तों ने ईसापूर्व ३२७ से भारत के सम्राट के रूप में राज किया इस प्रतिपादनको प्रबल बनाता है।

युनिट २ : महाभारत युद्ध के बाद के वंश

महाभारत का युद्ध १८ दिनों तक चल रहा था। अंत में विजय प्राप्त किए युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। ख्रि. पू. ३१३८ वर्ष में हुई लड़ाई के दिन मैंने निश्चित किए हैं।

ग्रेगोरियन कालमान के अनुसार वे इस प्रकार हैं: युद्ध की शुरुवात ८ अक्टूबर ख्रि. पू. ३१३९ में और अंत १७ दिसंबर ३१३९ में हुआ। युधिष्ठिरको सार्वभौम राजा के रूप में हस्तिनापूर में अभिषेक करने के बाद उसने अपने भाईयाँको मांडलिक राज्य में भेज दिया और मृत राजाओं के पुत्र अथवा नजदिकी रिश्तेदारों को उनकी राजगद्दी पर बिठाया।

२.१ पौरव वंश:

युधिष्ठिर जिस वंशका मुखिया था उस वंशको पौरव वंश कहते हैं। महाभारत युद्ध से पहले सूर्यवंश अथवा कुरुवंश था, वही आगे चलता रहा। इस वंश के २९ राजा एक के बाद एक आए, उनका १५०४ वर्ष ख्रि.पू. ३१३४ ऐसा समय था। अंतिम राजा 'क्षेत्रक' था। महापद्मनंदने उसे पदसे हटाया। वह राजा उस समय सर्वशक्तिशाली था।

युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया। राज्याभिषेक के दो साल बाद यह यज्ञ संपन्न हुआ। उसके चाचा विदुर सर्वश्रेष्ठ प्रधानमंत्री थे।

उसके चाचा और दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र ने वानप्रस्थाश्रम का स्वीकार किया। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के १५ साल बाद युधिष्ठिर की कन्या सुतका का विवाह कृष्ण और सत्यभामा के पुत्र अश्व के साथ हुआ। उन दोनों के पुत्र का नाम था 'वज्र' ।

युधिष्ठिर के बाद अर्जुन का पोता परीक्षित राजा बना। अर्जुन पांडवोंमें श्रेष्ठ था। परीक्षित के पिता अभिमन्युको महाभारत-युद्ध में मारा गया। युधिष्ठिरने अर्थात् धर्मराजने राज्य का त्याग किया और परीक्षितको ख्रि.पू. ३१०१ में राज्य प्रदान किया। जब युधिष्ठिरने सुना कि कृष्णने सौराष्ट्र के पट्टण में देहत्याग किया, तब युधिष्ठिर अपने भाई और द्रौपदी के साथ राजत्याग करके हिमालय में चला गया। वहाँ २५ साल रहकर मर्त्य शरीर छोड़कर वे सब स्वर्गवास में पहुँचे। यह वर्ष ख्रि.पू. ३०७६ का था। यही वर्ष सप्तर्षी युग अथवा लौकिक युग की शुरुवात है। काश्मिर में वह अब तक चल रहा था। कृष्ण के मृत्युका वर्ष ख्रि.पू. ३१०१ कलियुग की शुरुवात है। ख्रि.पू. ३१३८ (३१३९ दिसंबर) को युधिष्ठिर युग अथवा युधिष्ठिर शकारंभ कहते हैं। कुछ लोग इस

युगको ३१०१ के सालसे गिनते है। इसी वर्ष युधिष्ठिरने राज्य को त्यागकर परीक्षितको राज्य प्रदान किया। परीक्षितने ६० वर्ष राज्य किया। उसके बाद ख्रि. पू. ३०४१ में जनमेजय राजा बना। उसने प्रसिद्ध सर्पयज्ञ किया। जिसमें अग्निदेवको जीवित सर्प अर्पण किया जाता है उसके पिता परीक्षित की मृत्यु सर्पदंश के कारण हुई थी। पिता की मौत का बदला लेने के लिए उसने सर्पयज्ञ किया। महाभारत के युद्ध का इतिहास इसी समयपर लिखा गया। फिर उसका रूपांतरण १ लाख श्लोकों के महाकाव्य में हुआ।

जनमेजयने अपना पुरोहित बदल दिया। इसलिए उसके और कुछ ब्राह्मणों के बीच कलह हुआ। उसके परिणाम स्वरूप जनमेजयने वानप्रस्थ का स्वीकार किया। जनमेजय के बाद उसका बड़ा बेटा शतानिक राजगद्दी पर आया। उसके बाद उसका पुत्र अश्वमेधदत्त राजा बना। उसी दौरान पुराणों को दोबारा लिखा गया। भगवान वेदव्यास के शिष्यों ने सही तरिके से पुराणों की रचना की। सुधारित आवृत्ति बनाकर और सही तरह से रचना कर उनका १८ महापुराणों में रूपांतरण किया। मूल पुराणों में ४ लाख श्लोक थे।

उसके बाद उसका पुत्र अधिशीन कृष्ण राजा बना। फिर निचक्षु नामक उसका पुत्र राजगद्दी पर आया। निचक्षु के राज्यकालमें गंगानदी में प्रलय आया और हस्तिनापुरका पुरी तरह से विध्वंस हुआ। राजाको अपनी राजधानी कौशंबी में स्थलांतरित करनी पड़ी। अधिशीन कृष्ण के काल में आज के पुराण है, वे पुरे हो चुके है। निचक्षु उसके वंश का ७ वा राजा था, उसके बाद उष्ण (कुछ पुराणों के अनुसार उसका नाम भुरी है।), चित्ररथ, शुचिरथ, ब्रिशनीमन, सुशन, सुनित, निचक्षु राजा हुए। सुखबल, परिप्लव, मेधावी, रिपुंजय, दूर्व, तिग्मत, बृहद्रथ, कासूदन, शतानिक, उदयन, दंडपाणी, नीरमित्र और अंतिम क्षेमक नामक राजा एक के बाद एक आए।

उपर्युक्त उदयन राजाको नायक बनाकर उसके बारेमें बड़े कवियोंने बहुत कथाएँ रचीं। संस्कृत कवी बाण, गुणाढ्य भास, कौटिल्य और श्रीहर्षने उनपर तारिफोंके फूल बरसाए। श्रेष्ठ कवी कालिदासने अपने प्रसिद्ध काव्य मेघदूत में उसका इस प्रकार वर्णन किया है कि, यह राजा वीर, स्त्रियों को सम्मान देने वाला था। तरुण और वयस्क लोगभी इसकी शौर्यकथाएँ और प्रेमकथाओं के काव्य हररोज गाते थे। यह राजा मगध के सम्राट प्रद्योत का समकालीन था। शिशुनाग वंशका उदयी अथवा उदयन यह नहीं है। यौगंधरायण उदयन का प्रमुख मंत्री था। वह बहुत इमानदार और दयालु था। उदयन हाथी को पकड़ने में माहिर था। वह वीणा बजाया करता था और उसका गाना सुनकर हाथी भी उसके पास आ जाते थे। एकबार यमुना किनारे पर स्थित नाग वाटिका में, उदयन (उसे वत्सराज अर्थात बालराजा ऐसा उसके पिता के राज्यकाल में कहा जाता था। जब क्रीडामें गुम था तब मंत्री शालंकायनको गुप्तता से, उज्जयिनी का राजा चंड महासेन के प्रधानमंत्री भरत रोहकने एक व्यूह में पकड़ लिया। महासेन और रानी अंगारवती का बरताव उसके साथ अच्छा था।

उदयन का बीणावादन पर प्रभुत्व देखकर उसे अपनी पुत्री वासवदत्ताका अध्यापक बनाया। वे दोनों एकदूसरे से प्रेम करने लगे। उदयन तब अविवाहित था। यौगंधरायण ने जब महासेन से राजा के बंदी बनाने वाली घटना सुनी तब उसने उदयन और वासवदत्ता को आझाद कर दिया।

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजो अत्र जहे

(कालिदास - मेघदूत) उज्जयिनी के चंड महासेन को प्रद्योत भी कहते थे। उदयन का वासवदत्ता के साथ राजधानी कौशांबी में बड़े शानसे विवाह हुआ। महासेन प्रद्योतने अनुमति दी और अपना पुत्र गोपालक के हाथों दामाद और बेटी को उपहार भेजें।

कौशांबी की सत्ता प्रद्योतने स्वीकार की, इस बात को जब यौगंधरायण ने देखा तब उसने एक योजना बनाई। मगध का महाराजा दर्शक की सुंदर पुत्री पद्मिनी के साथ उसने उदयन का विवाह करवाया। उसके बाद उदयनने उसके राज्य का छोटा सा हिस्सा जो पांचाल ने कब्जे में लिया था; उसे वापस हासिल कर लिया। उदयन बहुत सामर्थशाली राजा था। कला, वाङ्मय और गाने की कला को उसने प्रोत्साहन दिया।

क्षेमराज के बाद पुरुवंश खत्म हुआ। इस वंश में २९ राजा हुए और उन्होंने ख्रि. पू. ३१३८ से १६३४ तक १५०४ वर्ष राज किया, ऐसा लिखा गया है।

२.२ सूर्यवंशः

महाभारत युद्ध में सूर्यवंश का अंतिम राजा बृहद्वल बाद में अभिमन्युद्वारा मारा गया। उसका पुत्र बृहत्कश बाद में अयोध्याका राजा बना। इस वंश में कुलमिलाकर ३० राजा हुए। अंतिम सुमित्र था। वह निपुत्रिकथा और उसकी मौत हुई। . ख्रि.पू.१६३४ में महापद्मनंदने राज्य जित लिया। एक के बाद एक आए राजाओं के नाम इस प्रकार हैं: १) बृहत्क्षण, २) उरूयक्ष, ३) वत्सव्यूह, ४) प्रतिव्योम, ५) दिवाकर, ६) सहदेव, ७) बृहदाश्व ८) भानुरथ, ९) प्रतिताश्व, १०) सुप्रतिक, ११) मरुदेव, १२) सुनक्षत्र, १३) किन्नर, १४) अन्तरिक्ष, १५) सुपर्ण, १६) अमित्रजित, १७) बृहद्भज , १८) धर्मी, १९) कृतंजय, २०) रणंजय, २१) संजय, २२) शाक्य, २३) शुद्धोधन, २४) सिद्धार्थ, २५) राहुल, २६) प्रसेनजित, २७) क्षुद्रक, २८) कुंडक, २९) सुराध, ३०) सुमित्र

इन राजाओंने महाभारत युद्ध से १५०४ वर्षों तक राज किया। ३० वा राजा सुमित्र के राज्यकाल में १४६८ कली अथवा सि.पू. १६३४ के बाद यह वंश समाप्त हो गया। इससे प्रतीत होता है कि सिद्धार्थ सूर्यवंशका २४ वा राजा जिसने अपने पुत्र राहुल को राज्यभार सौपा और राज्यत्याग कर संन्यास स्वीकारा।

बहुत मनन चिंतन और मेहनत करने के बाद बुधस्थितीका साक्षात्कार हुआ। वहीं विश्वविख्यात गौतम बुद्ध है।

पाश्चिमात्योंने प्रमाणों को न मानते हुए बुद्ध का काल अंदाजे से निश्चित किया। हमने पुराणों में नजर आनेवाले विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर उनका काल निश्चित किया है। मगध देश के राजा, भारत के महाराजाओं को पुराणाने स्वीकारा | उनके वंशक काल दिया है। महाभारत युद्ध के बाद आनेवाले देशों में राजाओं का वंश भले ही महत्त्वपूर्ण था फिर भी सुमित्र राजा के बाद उसका स्थान नष्ट हो गया। मगध राजाओंने केंद्र स्थान प्राप्त किया। उसके बाद यह वंश समाप्त हुआ। ऐसा पहला वंश बृहद्रथका है। अब हम पुराणों से प्राप्त होनेवाली जानकारी के आधारपर मगध के राजा कौन थे और उन्होंने कितने सालों तक राज किया, यह देखते हैं। यह वंश ख्रि.पू ४१५९ के वर्षपर स्थापन हुआ। **राजाओंके नाम और काल आगे दिए गए हैं।**

अनुक्रम	राजा का नाम	कितने सालों तक राज किया	ख्रिस्त पूर्व
०१	समवर्ण	८८	४१५९ – ४०७१
०२	कुरु	८०	४०७१ – ३९९१
०३	सुधन्वा प्रथम	७२	३९९१ – ३९१९
०४	सुहोत्र	९३	३९१९ – ३८२६
०५	च्यवन	३८	३८२६ – ३७८८
०६	कृमी या कीर्ती	३७	३७८८ – ३७५१
०७	उपरीचर या वसू या प्रतीप या चैद्य	४२	३७५१ – ३७०९
०८	बृहद्रथ	७२	३७०९ – ३६३७

मगध के राज्यका संस्थापक जिसकी 'गिरिव्रज' नामक राजधानी थी।

०९	कुशाग्र	७०	३६३७ – ३५६७
१०	ऋषभ	७०	३५६७ – ३४९७
११	सत्यहित	६०	३४९७ – ३४३७
१२	पुण्य/पुष्पवंत	४३	३४३७ – ३३९४
१३	सत्यधृती	४३	३३९४ – ३३५१

युनिट २ : महाभारत युद्ध के बाद के वंश

१४	सुधन्वा दुसरा	४३	३३५१ – ३३०८
१५	सर्व	४३	३३०८ – ३२६५
१६	संभव	४३	३२६५ – ३२२२
१७	जरासंध	४२	३२२२ – ३१८०
१८	सहदेव	४२	३१८० – ३१३८

सहदेव महाभारत के युद्धमें मारा गया।

पहले दो राजाओं के नाम ठीक तरह से ज्ञात नहीं थे। समवर्ण कुरु इस वंश के संस्थापक है। वंशकी सही सूची बनाते समय ३१८०-३१३८ कुछ नामों का गुणों मेरो लुप्त होना संभव है।

महाभारत युद्ध के बाद की राजाओं के नाम की सूची बड़ी, संपूर्ण और सही है।

अनुक्रम	राजा का नाम	कितने वर्षोंतक राज किया	ख्रिस्त पूर्व
०१	सोमधी/मर्जरी/सोमपी	५८	३१३८ – ३०८०
०२	श्रुतश्रवा	६४	३०८० – ३०१६
०३	अप्रतीप	३६	३०१६ – २९८०
०४	नृमित्र	४०	२९८० – २९४०
०५	सुकृत	५८	२९४० – २८८२
०६	बृहत्कर्मन	२३	२८८२ – २८५९
०७	सेनाजित	५०	२८५९ – २८०९
०८	श्रुतंजय	४०	२८०९ – २७६९
०९	महाबल	३५	२७६९ – २७३४
१०	शुची	५८	२७३४ – २६७६
११	क्षम	२८	२६७६ – २६४८

१२	नुव्रत	६४	२६४८ – २५८४
१३	धर्मनेत्र	३५	२५८४ – २५४९
१४	निरव्रती	५८	२५४९ – २४९१
१५	सुव्रत	३८	२४९१ – २४५३
१६	दृढसेन	५८	२४५३ – २३९५
१७	सुमती	३३	२३९५ – २३६२
१८	सुचल	२२	२३६२ – २३४०
१९	सुनेत्र	४०	२३४० – २३००
२०	सत्यजित	८३	२३०० – २२१७
२१	वीरजित	३५	२२१७ – २१८२
२२	रिपुंजय	५०	२१८२ – २१३२

१०६६

पुराणों में ऐसा कहा गया है कि बृहद्रथ वंश के २२ राजाओं ने मगध पर महाभारत युद्ध के बाद १००० वर्षों तक राज किया।

"द्वाविंशतिः नृपाते भवितारो बृहद्रथा

पूर्ण वर्षसह येतेषा राज्य भविष्यति ॥ ब्रह्मांडपुराण"

इत्येते बृहद्रथा भूपतयो वर्षसहस्रमेकं भविष्यति ॥ (विष्णुपुराण ४ प्रकरण २३-१२)

वास्तव में सभी को मिलाने के बाद १००० से भी ज्यादा वर्ष होते हैं। सही कहा जाए तो २००६ वर्ष हो जाते हैं। पुलक अथवा शौनक, रिपुंजय के और बृहद्रथ वंश के राजाओं के मंत्री ने, राजा को धोके से मार दिया। पर वह स्वयं राजा नहीं बना। चतुरता से षड्यंत्र रचकर उसने अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया। उसने अपने पुत्र का विवाह, अंतिम राजा रिपुंजय की एकलौती पुत्री के साथ ख्रि. पू. २१३२ में करवाया। महाभारत युद्ध के १००६ साल बाद यह विवाह संपन्ना हुआ। पुराणों में कहा है

“बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्ति ।

पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ॥”

मंत्री इतना चतुर और कर्तृत्वशाली था कि उसने केवल अपने राजा को ही मार डाला, इतना ही नहीं बल्कि अवन्ती वितिहोत्रको (उज्जयिनी को) भी जिता और अपना राज्य उस राज्य के साथ में जोड़ दिया। उसने प्रद्योत को मगध का राजा बनाया ।

प्रद्योत वंशके राजा

अनुक्रम	राजा का नाम	कितने वर्षों तक राज किया	ख्रिस्त पूर्व
०१.	प्रद्योत	२३	२१३२ – २१०९
०२.	पालक/दर्शक	२४	२१०९ – २०८५
०३.	विशाखयूष	५०	२०८५ – २०३५
०४.	जनक	२१	२०३५ – २०१४
०५.	नन्दिवर्धन	२०	२०१४ – १९९४

इस वंशने मगधपर ख्रि.पू. २१३२ से १९९४ तक १३८ वर्षों तक राज किया। बहुत से पुराणोंका इस वंशके ५ राजाओं के १३८ वर्षों के काल के बारे में एकमत है।

“नन्दिनी वर्धनस्तत्पुत्रः पंचप्रद्योतना इमे ।

अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्षन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ स्कंद १२ प्र. २

अंतिम नन्दिवर्धन के साथ इन पाँच प्रद्योतोंने, १३८ वर्षों तक राज्य किया। वे सब सम्राट थे।

२.३ शिशुनाग वंशः

शिशुनाग अथवा शिशुनभ काशीका राजा था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। उसने मगधपर आक्रमण कर राज्य प्राप्त कर लिया। ख्रि. पू. १९९४ में उसने खुदका राज्याभिषेक करवाया, और ४० सालों तक राज किया। उसने अपने पुत्रको काशी के सिंहासनपर बिठाया।

शिशुनाग वंशके राजाः

अनुक्रम	राजा का नाम	कितने वर्षों तक राज किया	ख्रि. पूर्व
---------	-------------	--------------------------	-------------

१.	शिशुनाग	४०	१९९४ – १९५४
२.	काकवर्ण/शकवर्ण	३६	१९५४ – १९१८
३.	क्षेमधर्मा	२६	१९१८ – १८९२
४	क्षत्रौज	४०	१८९२ – १८५२
५.	विधीसार/बिम्बिसार	३८	१८५२ – १८१४
६.	अजातशत्रू	२७	१८१४-१७८७
७.	दर्भक या दर्शक	३५	१७८७-१७५२
८.	उदय	३३	१७५२-१७१९
९.	नंदीवर्धन	४२	१७१९-१६७७
१०.	महानंद	४३	१६७७-१६३४

बिंबिसार राजा ख्रि. पू. १८५२ में राज करने लगा। उसने (१८४२-३८) ख्रि. पू. १८१४ तक राज किया।

महावंश और अशोकवदन बुद्ध के समाचार में उसे बिंबिसार कहते हैं। हेमचंद्र उसे श्रोणिक कहते हैं। ये सब बुद्धों के कागज ऐसा कहते हैं कि गौतम बुद्ध बिंबिसार से पाँच वर्ष छोटे थे। गौतम बुद्ध के निर्वाण के बाद, उनके बाद आए राजा अजातशत्रुने ८ वर्षों तक राज किया। इस समय के सभी ग्रंथ एक मुद्दे पर एक जैसा ही सोचते हैं कि, गौतम बुद्धने उसके २९ वे वर्षपर संन्यास ग्रहण किया।

व्हिन्सेंट स्मिथ उसे बिंबिसार कहते हैं। वे ऐसा कहते हैं कि, इस राजाने 'राजगृह' नामक राजधानी बनाई। यह राजा गौतम बुद्धका समकालीन था।

बिंबिसारने अंग, दक्षिण बिहारपर आक्रमण करके वह देश अपने राज्य के साथ जोड़ दिया। उसके बाद उसका पुत्र अजातशत्रू ख्रि. पू. १८१४ में राजगृही पर बैठा।

उसने २७ वर्षोंतक राज किया। उसके राज्यकाल के ८वे वर्षपर गौतम बुद्धका निर्वाण हुआ। (१८१४-८-१८०६ ख्रि.पू.) जब गौतमबुद्ध निर्वाण की ओर बढ़े तब वह ८० वर्ष के थे। इससे गौतमबुद्धका जन्म ख्रि. पू. १८८६ में हुआ और ख्रि. पू. १८०६ में उन्होंने निर्वाण प्राप्तकर लिया, यह ज्ञात होता है। अगर शिशुनाग वंश के राजाओं के कार्यकालकी तारिखोंमें थोड़ा परिवर्तन करने से यह काल थोड़ा सा इधर उधर भटक जाता है। के. वेंकटाचलम की गणना के अनुसार ख्रि.पू. १८८७-१८०७ काल निश्चित होता है।

“यह हम देख ही चुके हैं कि, सूर्यवंश में गौतम बुद्ध २४वें राजा थे। ख्रि. पू. १६३४ में अंतिम और ३०वां राजा सुमित्र के साथ यह वंश समाप्त हो जाता है। सुमित्र को राज्य छोड़ना पड़ा।

२.४ नंदवंश:

ख्रि. पू. १६३४ में महाभारत युद्ध के बाद राज्यकर्ता वंशों के बीच प्रथम सब उलटा पुलटा हो गया। शिशुनाग वंश की राजगद्दी पर प्रथम अंतिम राजा महानंदी का नाजायज पुत्र गद्दी पर बैठा। महाराज के मृत्यु के बाद वह मगध पर राज करने लगा।

“महानन्दिनस्ततः शूहागभेदिवो बली अतिलुब्धो अतिबलो

महापद्मो नंदनामा परसशराम इव अपर अखिलक्षत्रांतकारी भविष्यति।”

महानन्दी इस शिशुनाग वंशका अंतिम राजा, उसकी शुद्रपत्नी से जन्मा महापद्मनंद नामक अत्यंत लोभी, महाविक्रमी, सभी क्षत्रियों को पराभूत करने वाला पुत्र राज्य करने लगा। मानो वह दुसरा परशुराम ही था। उसने भारतका सम्राट बनके ८८ वर्षोंतक राज किया। उसका पुत्र सुमाल्यने अपने सात भाईयों के साथ और बारह वर्षोंतक राज किया। इस नंदका साम्राज्य, पूरे भारतवर्ष पर था। वे सब नंद बहुत अत्याचारी थे। आर्य चाणक्यने उस वंशको हटाने के लिए षड्यंत्र रचा। अंत में उनका खात्मा कर, महापद्म नंद के मुरा नामक स्त्री से जन्मे पुत्र चंद्रगुप्त को राज सिंहासन पर बिठाया। उसने अपनी परित्यक्ता माँ मुरा के नामसे मौर्य नाम धारण कर लिया।

बुद्धों के इतिहासग्रंथों में भी ऐसी ही जानकारी दी है। नंदों का अंतिम राजा, जिसका नाम धनानंद था। वह अत्यंत लालची और स्त्रियों के लिए कामुक था, ऐसा राजा राज कर रहा था। उसने चमड़ी, पेड़, गोंद, पत्थर-मिट्टी आदिपर जुर्माना लगाकर ८० करोड़ रुपये जमा किए। यह सब धन उसने गंगा की लहरों के पानी के तले एक बड़ी शिला कुरेदके उसमें छिपाके रखी। उस शिलाका मुख शिसे से बंद कर दिया। अपने जीवितकालमें उसने धन इकट्ठा करने के लिए ये सब कारनामे किए।

इस चंद्रगुप्तने बादमे अज्ञान पुलोम तृतीय को भी मार डाला और स्वयं राजा बना।

समुद्रगुप्त बहुत ही सामर्थ्यशाली राजा था। उसने अलेक्झांडर का आक्रमण रोक दिया और ग्रीक सेना को तहस नहस कर दिया। अब इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि नंद, मौर्य अथवा चाणक्य का अलेक्झांडर के साथ अथवा दुसरे किसी ग्रीक आक्रमणकर्ता से अथवा विक्रमशाली योद्धा से भी कोई संबंध नहीं था।

इस पूर्वपीटिका के आधारपर नंद की और उसके उत्तराधिकारियों की जानकारी हम लेते हैं।

महाबोधिवंश से शुरू होनेवाले नौ नंदों के नाम इस प्रकार हैं : १) महापद्म / उग्रसेन २) पंडुक ३) पंडुगती ४) भूतपाल ५) राष्ट्रपाल ६) गोविनाशक ७) दशसिद्धक ८) कैवर्त ९) धनानंद

कलियुग - राजवृत्तांतों में महापद्मको धनानंद कहा है। पुराणोंमें नंद के पुत्र सुमाल्य का नाम सुकल्प दिया है। कुछ राजाओं के नाम नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि, महापद्मने ८८ वर्ष और धनानंदने कमसे कम १२ वर्षोंतक राज किया। महापद्मके अन्य पुत्रों ने पिता के साथ सत्ता में शायद साझेदारी की हो और अकेले धनानंदको राज्यका उत्तराधिकारी बना दिया हो।

पुराणों के अनुसार महापद्मके आठ पुत्रोंने धनानंद के साथ १२ वर्षों तक राज्य करने में सहायता की। पर यह काल संदिग्धता से भरा हुआ था। आर्य चाणक्यके नेतृत्व में चंद्रगुप्त मौर्य नंदोको परेशान करता था। नंदका धन 'नवनवतिशत द्रव्यकोटीश्वर' संख्यासे विख्यात हुई थी। मुद्राराक्षस नाटक में भी इस तरह का संदर्भ मिलता है।

भागवत पुराण के अनुसार :

"स एकछत्रां पृथिवीं अनुल्लांघितशासनः"

शासिष्यति महापद्मो द्वितीयो इव भार्गवः (१२-१-१०)

उसने पूरी पृथ्वीको अपने छत्र छाया में खड़ा किया। उसके आदेश का भंग करने का सामर्थ्य किसी में भी न था। वह मानो दुसरा परशुराम हो इस प्रकार राज करेगा।" महापद्म अथवा धनानंद ने ८८ वर्षोंतक राज किया। *'अष्टाशीति स वर्षाणि पृथिव्या तु भविष्यति'* (मत्स्य

उसके बाद सुमाल्य की देखरेख में उसके ८ पुत्रोंने राज किया। *(सुमाल्यादिसुताह्यष्टै समाद्वादश ते तृपाः)*

नौ नंदों का राज्य कौटिल्यने डुबो दिया और उनके राजपर चंद्रगुप्तको स्थापित किया

कौटिल्यश्चंद्रगुप्तो स ततो राज्येऽभिषेच्यति ।

भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति मत्स्य २७३-२३)

पुराण और बुद्ध - वर्तमान सुर से सुर मिलाकर कहते हैं कि, नंदों ने १०० वर्षों तक राज किया। महापद्मने ८८ वर्षों तक राज किया। उन्होंने आगे कहा है कि चंद्रगुप्त मौर्य को मगध के राज्यपर स्थापित करने में और उसकी महनत रंग लाने के लिए चाणक्यको १२ वर्ष अथवा उससे अधिक काल लगा।

महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ।

उद्धरिष्यति कौटिल्यः समद्वादशभिस्तु तान् ॥२२ (मत्स्य पुराण)

महापद्म के बाद उसके पुत्र एक के बाद एक राज करने लगे। उनका खात्मा करने के लिए कौटिल्यको १२ वर्षों का अवधि लगा।

नंदों का नामोनिशान मिटाने की कसम कौटिल्यने क्यों खाई?

आर्य चाणक्य नंदोंकी राजधानी पाटलीपुत्र में रहता था। प्रथम नंद महापद्म अथवा धनानंद का गैर जिम्मेदार राजकार्य वह देख चुका था। धनानंद ने किस प्रकार पैसे जमा किए, इकट्ठा करके रखे और गंगा के पात्र में विवर बनाकर गाड़ के रखे यह पहले ही देख चुके। नीलकंठ शास्त्री के 'दक्षिणेकडील भारतीय इतिहास' पृष्ठ क्र. ८० पर एक विचित्र जानकारी मिलती है। नंदोंने इकट्ठा की हुई अगणित संपत्ती के बारे में तमिलनाडू में सब जानते थे। उस जानकारीका उपयोग कहावत के समान भी लोग किया करते थे। संगम काल में एक कवीने प्यार में उदास हुई स्त्रीके मुहमें यह वाक्य डाला है: "मेरी सुंदरता का असर न होने से मेरे प्रियतम का ध्यान कहाँ है? बरकत हो रही पाटली पुत्र की असंख्य संपत्ती लढाई में विजय प्राप्त किए हुए नंदने गंगा तल छिपा के रखी है। कही उसका ध्यान उस तरफ़ तो नहीं बढ़ा?"

भारत के क्षत्रियों में इतना लालच सोच से परे था। ब्राह्मण और क्षत्रिय लालची नहीं हुआ करते थे। वर्णाश्रमकी रीति के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रियों का लालच पाप समझा जाता था। नंद पहले शूद्र थे और राजा बनने पर वे क्षत्रिय बने, (वर्णव्यवस्था में इस प्रकार जाति बदली नहीं जा सकती थी।) फिरभी उन्होंने लालच नहीं छोड़ा।

कौटिल्य ने धनानंद का यह बरताव देखा। जैन, क्षपणकों के दबाव की बजह से यह सब हो रहा था। यह जैन धनानंद का विश्वसनीय मंत्री था। कल्पक के बाद शकताल, स्थूलभद्र, श्रीयक उसके एक के बाद एक सलाहगार बने। राजा का जैनों की तरफ झुकाव क्षत्रियों में क्रोध पैदा कर रहा था।

तत्कालीन पंडित आर्य चाणक्य के पिताको ठुकराकर अन्य छोड़े पंडितों को सभा में सम्मानका स्थान दिया।

इस प्रकार भेदभाव के कारण आर्य चाणक्य के पिता को बहुत तकलिफ सहनी पड़ी। वे ब्राह्मण थे और विद्वान भी थे। फिरभी राजा और जैन लोगों ने पाटलीपुत्र में उनका जीना मुश्किल कर दिया। आर्य चाणक्यने पाटलीपुत्र छोड़ दिया और वह तक्षशिला में चला गया। वहाँ उसने गुरुकुलमें अर्थशास्त्र और राजनीति के अध्यापक के तौरपर काम करना शुरू किया। अपनी किस्मत को आजमाने के लिए वह फिरसे अपना जन्मस्थल पाटलीपुत्र में लौटा। वहाँ उसे नजर आया कि, वेद सिखाने वाली पाठशालाएँ बुरे हालात में थी और उस बजह से क्षत्रिय सरदारोंका बहुत नुकसान हो रहा था।

आर्य चाणक्य विद्वान था इसलिए उसे विद्वत्सभा का अध्यक्ष बनाया गया। धनानंदका मुख्य प्रधान अमात्य राक्षस ब्राह्मण था। पर वह धनानंद अपनी वाह्यात हरकतों पर नियंत्रण नहीं रख पा रहा था। वह पाटलीपुत्र के गुरुकुल में चाणक्य के साथ अध्ययन करता था और उसका सहाध्यायी था। आर्य चाणक्य के यत्नों को वह सहानुभूती पूर्वक देखता था। उसे यश नहीं मिल रहा है, यह भी देख रहा था। राजाको सुधारने का प्रयास व्यर्थ साबित हो रहा था। उसे कोई भी (सही) रास्ते पर ला नहीं पा रहा था। शिक्षा के लिए अनुदान और गरीब कलावंतों की राजाने सहायता करनी चाहिए, यह बात आर्य चाणक्य नहीं कर पा रहा था। इन सब बातों को आर्य चाणक्य खुले आम स्वीकृती दे रहा था। यह बात राजा को ज्ञात हुई। राजा वे बुरे व्यवहार के कारण कुछ हिस्सों में नाराजी फैल रही है, यह बात भी राजा को पता चली। तब धनानंदने खुले आम चाणक्य की बेइज्जती की और उसे उसके स्थान से हटाया। उसे पकड़ने की राजा की योजना थी पर सरकार में उसके मंत्री मित्र थे जिनके कारण वह वहाँ से नौ दो ग्यारह हो सका।

'महावंश' नामक बुद्धों के समाचार में कहा है कि, विद्वान ब्राह्मणों के लिए आरक्षित स्थानपर आर्य चाणक्य काम किया करता था, जिसे धनानंद ने वहाँ से हटाया। चाणक्य यह जान गया कि, जिस तरिके से

धनानंद राज करता था वह तरिका चाणक्य के लिए अथवा धनानंद की प्रजा के लिए भी हितकारक नहीं है। धनानंद को पदच्युत करने के लिए उसने मन ही मनमें योजना बनाई।

धनानंद के मृत्यु के कारण उसकी राजगद्दी पर उसका पुत्र सुमाल्य आया परंतु राज्य की स्थिती 'जैसे थे' ही रही। चाणक्य ने राजा के खिलाफ बगावत करने का निश्चय किया।

किसी योग्य क्षत्रिय को चुनकर उसी की तरफ सत्ता केंद्रित करने का उसने निश्चय किया। उस सत्ता के केंद्रस्थानपर नंदका पुत्र चंद्रगुप्तको स्थापित करने का उसने पण किया।

चंद्रगुप्त मौर्य :

वैदिक संस्कृतीका असर तुर्कस्थान के पूरब की ओर के बड़े देशों तक फैला हुआ था। कॉकेशस पहाड़ों की तरफ, कस्पियन समंदर और वहाँ से गंगाजमुना नदियों के बीच उत्तर-दक्षिण प्रदेश, नाईल नदी और सरयू नदी की ओर पूरब-पश्चिम प्रदेशों में भी वह फैली हुई थी। दाशराज्ञ लड़ाई के बाद अगस्त्य ऋषी और राम के कारण हिंदुस्तान के उपखंडों में बहुत क्रांती हुई। महाभारत युद्ध के समय तक भारतीय राजनीतिका पूर्व इराण और अफगाणिस्तान तक विस्तार हुआ और बाद में यह स्थिती गझनी के मुहमद द्वारा राजा अनंगपालको पराभूत करने तक टिकी रही।

मौर्य राजाओं का साम्राज्य आधुनिक भारत और इराण अफगाणिस्तान तक फैला हुआ था इसमें कोई संदेह नहीं है। उसके बाद औरंगजेब और ब्रिटिश लोगोंका साम्राज्य भी इतना बड़ा नहीं था।

मौर्यों का काल, ख्रि.पू. १५३४ से ख्रि. पू. १२१८ तक का था। मौर्य राजाओं ने लगभग ३१६ वर्षों तक राज किया। इस काल में १२ राजाओंने पाटलीपुत्र से (आज के बिहार के पाटना से) राज किया। बिहार को उस समय मगध कहा जाता था।

बृहदकथा के अनुसार चंद्रगुप्त यह नंदका और मुरा का बेटा था। इसिलिए चंद्रगुप्त के राजा बनने के बाद नंद वंश को मौर्य नामसे जाना गया।

जब (१५२२+१२) ख्रि. पू. काल में आर्य चाणक्यने नंदको पदच्युत करने का निश्चय किया, तब चाणक्यका ध्यान राज परिवार में जिसे कोई पसंद नहीं करता था उस नंद के युवा पुत्र की तरफ बढ़ा।

ब्रह्मांड पुराण के अनुसार ख्रि.पू. १५३४ से ख्रि.पू. १५१० तक का, कलियुग-राज-वृत्तान्त कलियुगे राजाओं के राज्यकाल के बारे में जानकारी देता है। उसके अनुसार ख्रि.पू. १५३४ से ख्रि.पू. १५०० के काल में उसने राज किया।

युनिट ३ : आर्य चाणक्य

चंद्रगुप्तने अपने गुरु कौटिल्य के निश्चित किए नियमों के अनुसार राज किया। कौटिल्य का सत्यनाम विष्णुगुप्त था। उसके पिता का नाम चणक था। चणक ऋषीका पुत्र होने के कारण उसे चाणक्य कहा जाता था। दुसरा कौटिल्य नाम गोत्र के कारण था। कूट का अर्थ पात्र और इल्य का अर्थ हक जमाने की नियत। कुटील्य का अर्थ बहुत सारे अनाज का निधी है। 'कौटिल्य' गोत्र – नाम कुटिल से बना है। कुटिल का दुसरा अर्थ भी है। तेढी चाल चलनेवाले अथवा हीन राजनीति करने का शास्त्र। वास्तव में बहुतबार नीजी शत्रुओं से व्यवहार करते समय अथवा उन्हें परास्त करने के लिए कुटिल दाव खेले जाते हैं। ऐसा चाणक्यने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है। कौटिल्य के नाम से भी कभी उसके बारेमे संदर्भ मिलता है। राजकीय लाभ उठाने के लिए कभी तेढी चाल भी चलनी पड़ती है, ऐसा लेखक लिखता है।

हम जान ही जाएंगे कि 'कौटिल्य' नाम आर्य चाणक्य को राजनीति में खेले गए मँकि अँद्विलियन चालसे नहीं दिया गया।

३.१ महत् आय चाणक्यः

तंत्राख्यायिका का (कथामुख श्लोक २) लेखक राज्यशास्त्र के भाष्य की शुरुवात आर्य चाणक्य को मानवंदना देकर करता है :

“मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय च ससुताय ।

चाणक्याय च महते नमो अस्तु नृपशास्त्रकर्तृभ्यः ॥

'राज्य - शास्त्र के लेखक, मनु, वाचस्पति, शुक्र, पराशर, (और उसका पुत्र वेदव्यास), और चाणक्य ऐसा था, उन्हें प्रणाम!" इससे प्रतीत होता है कि, कितने तेजस्वी लोगों की परंपरामें अपने राज्यशास्त्र के लेखक चाणक्यका नाम जोड़ा गया है! चाणक्य का अर्थशास्त्र राजनीतिका शास्त्र है, इस बारे में प्राचीन लेखकों को कोई संदेह नहीं है। तंत्राख्यायिके श्लोक से यह बात स्पष्ट है कि नीतिसार का प्रसिद्ध लेखक

कामंदकने (राजनीति- राजाओं के राजनीतिका शास्त्र) शुरुवात में आनेवाले प्रकरणों में विष्णुगुप्तको इन स्पष्ट शब्दों में सम्मानित किया है,

नीतिशाखामृतम् श्रीमानर्थशास्त्रमहोदधे: ।

प उदधे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे नीतीसारः ॥

"नीतिशास्त्र में कुशल विष्णुगुप्त को प्रणाम। उसने अर्थशास्त्र के समुद्रमंथन से नीतिशास्त्र का अमृत बाहर, निकाला। प्राचीनकाल में इस शास्त्रको धर्मनीती अर्थात न्यायदान का शास्त्र कहा जाता था।

दण्ड्येन् नीयते चेयं दंडं नयति चाप्युत

दंडनीतिरिती प्रोक्ता त्रील्लोकाननुवर्तते ॥ महा. १२-५९-७८

अर्थशास्त्र का लेखक कौन है?

राजनीति के इस भाष्यके लेखक कौटिल्य के अलावा अन्य कोई होगा, ऐसा माननेवाले कुछ लोग हैं। इस भाष्य में कौटिल्य का नाम बारबार आता है | उदा. इतिकौटिल्यः कौटिल्यने ऐसे कहा। पर लेखक की यह रीति है। अगले लेखक इस ग्रंथ का जब संदर्भ देते हैं, वे यह बात अच्छी तरह से जानते हैं। कवी दंडी उसके दशकुमार चरित भाग- ८ में स्पष्ट लिखते हैं: 'इयमिदानीमाचार्य विष्णुगुप्तेन मायार्थ षड्भिः श्लोकसहस्रैव संक्षिप्ते' यह भाष्य विष्णुगुप्त ने संक्षेपमें मौर्य राजाओं का मार्गदर्शन करने के लिए किया है।

प्रत्यक्ष अर्थशास्त्र में भी ऐसाही विधान आता है।

सर्व शास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्यच

कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ ११२-१०६३

कौटिल्यने स्वयं इसकी रचना की है। राजपाठ करनेवालों के मार्गदर्शन हेतु, इस शास्त्र के मान्यवर सोच विचार कर, व्यवहार में उसका उपयोग कैसे किया जाए यह ध्यान में रखते हुए उसने ये श्लोक लिखे।

कौटिल्य आगे प्रकरण १५-१-७३ में स्पष्टता से लिखते हैं कि, यह शास्त्र उसने लिखा। उसने जितने कारण और क्रोध से नंद घराने का खात्मा करनेवाले ने यह श्लोक रचे। नंदराजा के मूर्खता के कारण इस शास्त्रका, शास्त्रों का और जन्मस्थलका विनाश हो रहा था।

चंद्रगुप्तने चाणक्य का ध्यान किस प्रकार आकर्षित किया?

धनानंद के मृत्यु के बाद नंदबंधुओंने चंद्रगुप्त को उसकी माँ के साथ राजभवन से बाहर कर दिया। उसके बाद मुराने उसे विजयनगर में पाटलीपुत्र की सरहद पर कहीं बड़ा किया। जब चाणक्य ने पाटलीपुत्र छोड़ा तब क्षपणक के भेस में उसे एक हुनहार बालक दिखा। वह स्वयं राजा बना और अपने मित्रों को उसने शिष्य बनाया है, ऐसा खेल वे खेल रहे थे। चाणक्यने उसे अपनी हिरासत में लिया, उसकी शास्त्रविद्या, शास्त्रविद्या की, शिक्षा पुरी करवाने के बाद उसे क्रांतिशाली नेता के रूप में सामने ले आए।

चंद्रगुप्त ने अपने मामा के 'दुर्धरा' नामक पुत्री से विवाह किया था।

सत्य स्थिती यह है कि, चंद्रगुप्तने किसप्रकार बगावत की और किस प्रकार नंद घराने का विनाश करवाया यह एक रहस्यमय घटना है। आधुनिक इतिहासकार चंद्रगुप्त मौर्य को अलेक्ज़ांडर का समकालीन मानते हैं और कौटिल्यने प्रथम अलेक्ज़ांडर और बाद में नंदको पराभूत करने में किस प्रकार सफलता प्राप्त की, इस सूत्र की ओर कथा रचते हैं। जब चंद्रगुप्तने पाटलीपुत्र पर आक्रमण किया तब उसे अपने पिता धनानंदका सामना नहीं करना पड़ा बल्कि अपने भाई से लड़ना पड़ा। उसका कोई सौतेला भाई उस समय मगधपर राज कर रहा था।

नंद साम्राज्यका महान रचयिता स्थापक धनानंद के मौत के बाद को कौटिल्य का काम करना सरल हो गया, उस राजा के अंतिम वर्ष में कौटिल्यने पाटलीपुत्र छोड़ दिया। जाते समय उसने नंद घराने का खात्मा करने की कसम खाई। नंदके जुल्मी व्यवहारसे पहले ही जनता पीड़ित थी, उसके पुत्रों का व्यवहारभी इसी तरहसे अत्याचार से भरा हुआ था। इसलिए जब चाणक्यने, इस बात का खुलासा किया तब उसने नंदवंश की

बुराई शकटाल जैसे लोगों के सामने रखी और शकटालसहित बहुत अधिकारी उसकी तरफ बढ़े। सरकारका बरताव इस प्रकार खोखला हो गया था कि उनके मुहपर चांटा लगाने का ही काम चाणक्य के लिए बचा था। उसका संदर्भ इस प्रकार मिलता है: *चाणक्यो नक्तमुपयन् नंदक्रीडा गृहं यथा* ! एक रात में चाणक्यने क्रीडांगण में प्रवेश किया और उसने नंदराजा योगानंद का खात्मा किया। बाद में खाली सिंहासन पर पहले नंदका पुत्र चंद्रगुप्तको बिठाया। बृहत् कथामे आने वाले श्लोक के संदर्भ के अनुसार :

“बादमें चाणक्य चोरी छिपे शकटाल के पास रहा और राजा को उसके पुत्र के साथ मारने के षड्यंत्र में शामिल लोगों को भेज दिया । प्रथक नंद का पुत्र चंद्रगुप्तको चाणक्य ने अपने बलबूते पर राज्य प्रदान करवाया। योगानंद नंदोंका अंतिम राजा था। चंद्रगुप्त ने जब विजय प्राप्त किया तब वही (योगानंद) सिंहासनपर विराजमान था। ”

ईसा की ७ वी सदी में कवी विशाखादत्त ने ‘मुद्राराक्षस’ नामक नाटक लिखा। उसमें चंद्रगुप्त प्रथम नंदका पुत्र था इस बात को मान लिया था।

अंतिम नंदका 'शकटाल' मंत्री था। उसे दो पुत्र थे । एक स्थूलभद्र और दुसरा श्रीयक। वररुची नामक व्याकरणकर्ता ने लिखा है :

“राजा नंद अपने मंत्री के बारेमें कुछ नहीं जानते। वह उसे मारकर अपने पुत्र श्रीयक को राजपर बिठाएगा। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि, नंदके अंतिम दिनों में उसके बहुत मंत्री चाणक्यने जिते थे। श्रीयक को राजा नहीं बल्कि मंत्री बनाया गया। राक्षस का नाम वक्रनास था। वह मुख्य मंत्री नंद के साथ अंतिम समयतक वफादारी से रहा। ”

'मुद्राराक्षस' नाटक में चाणक्यने वक्रनास को अपनी तरफ खींचने के किस प्रकार प्रयास किए यह बताया है। वह चंद्रगुप्तका मुख्यमंत्रीपद भूषित करे ऐसी चाणक्य की चाह थी। क्योंकि यह मुख्यमंत्री वफादार और निष्ठावंत था।

वक्रनासने उसे मना कर दिया, क्योंकि वह नंद राजा को बचा न सका । चाणक्य के दावपेचों को वह विफल न कर सका। नंदराजा को बचा न सका और चाणक्य को भी चुनौती न दे सका।

मुद्राराक्षस नाटक में चंद्रगुप्त के बारेमे कई संदर्भ मिलते हैं। चंद्रगुप्त नंद वंशका था – *नंदान्वय एवायमिति* (४-७) फिर से ५ – ५ में *नंदान्तलबिना मौर्येण* - वह मौर्य, नंद के परिवारसे, नंदवंशका था) मुद्राराक्षसमें राजा मलयकेतु मुख्यमंत्री राक्षस से कहता है। मौर्योसौ स्वामिपुत्रः। भले ही मौर्य हो पर वह पहले तुम्हारे स्वामि का पुत्र है।

मुद्राराक्षस में निःसंदेह शब्दों में बताया है कि चंद्रगुप्त नंदराजा की शूद्रवर्णीय पत्नी मुरा का पुत्र था। उसका वर्णन दिखने में सुंदर अर्थात् प्रियदर्शी ऐसा है।

नीतिवाक्यामृत में (१०-४) इस प्रकार लिखा है:

ऐसा सुनने को मिलता है कि, अधिकृत न होने पर भी विष्णुगुप्तकी कृषावृष्टि के कारण चंद्रगुप्त सम्राटपद प्राप्त कर लेगा।

पंडित भागवतदत्त शर्मा लिखते हैं कि, मौर्य मूर्ति बनानेवालों की एक जाति है। शुद्ध और क्षत्रियों के मिलापसे यह जाति उत्पन्न हुई है। चंद्रगुप्त जब राजा बना तब उसकी उम्र मात्र २० साल थी: बाली एव महोदय ! (मुद्रा ७-१२) शूद्रक के मृच्छकटिक में कौटिल्य को 'आचार्य' कहा है।

मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार (४४१-४४२) चंद्रगुप्त की मौत अन्नविषबाधा के कारण हुई थी, उसके बाद उसने अपने पुत्र बिंदुसार को राजा बनाने की व्यवस्था पहले से ही कर रखी थी। क्योंकि वह बिलकुल छोटा बालक था।

चंद्रगुप्त का राज्य:

नंद का राज्य पुरे भारतवर्षपर था। वह दक्षिण में म्हासूर तक फैला हुआ था। चंद्रगुप्त ने जब विजय प्राप्त किया उसमें पंजाब का पर्वतक अर्थात् पोरस राजा का बहुत बड़ा हाथ था। जो लाभ होगा उसका आधा हिस्सा पोरस को देना होगा, यह निश्चित किया था। नंद के खिलाफ चंद्रगुप्त ने विजय प्राप्त किया तब आश्चर्यजनक बात यह हुई कि पोरस राजा की भी मौत हो गई। ऐसा कहा जाता है, पर्वतकको एक सुंदर विषकन्याने बिस्तरपर आने के लिए मोहित किया था। उसके आलिंगन से ही पर्वतककी मौत हुई। तब चंद्रगुप्त ने अपने मित्र के राज्य का हिस्सा बिना तकलिफ अपने राज्यक साथ जोड़ दिया। मुद्राराक्षस नाटक में यह वाक्य है: *क्षपणको जीवसिद्धी विषकन्यया पर्वतेश्वरं घातितवान्* । जैन साधु जीवसिद्धीने महाराजा पर्वतक का (चंद्रगुप्तका मित्र) विषकन्याद्वारा (जहर से भरी कन्या द्वारा) खात्मा कर दिया। यह जीवसिद्धी चाणक्य का गुप्तचर था। पर्वतक के मृत्यु के बाद उसका पुत्र मलकेतु अपनी जान बचाने के लिए भाग गया। उसका भाई वैरोचक तब पाटलीपुत्रमें था। उसने राजभवन के कुछ नोकरो को अपने वश में कर लिया।

दारुवर्मा नाम के एक बढ़ई को प्रवेशद्वार के पास कमान बनाने का काम दिया था। साजीश यह थी कि, सजाए गए हाथी से चंद्रगुप्त जब प्रवेशद्वार के भीतर आने लगेगा तब वह कमान चंद्रगुप्त के सिर के ऊपर गिर जाए और उसकी मौत हो जाए। पर बढ़ईके हाथों कमान चंद्रगुप्त के प्रवेशद्वारतक पहुंचने से पहले ही गिर पड़ी। आर्य चाणक्य तुरंत ही जान गया कि कुछ तो गड़बड़ है। उसने दारुवर्मा को अच्छे काम के लिए

शाबासी भी दी। उसने कहा, "अचिरादेव अस्य दाक्ष्यस्य अनुरूपं फलं अभिगमिमिष्यसि दारुवर्मन्-रे दारुवर्मा ! इतना अच्छा काम करने के लिए तुम्हें उपहार मिलना चाहिए।" उसने यह बात इस प्रकार कही कि, दारुवर्मा के मनमें कोई शक नहीं पैदा हुआ)

चाणक्य ने मलयकेतु के भाई वैरोचक को आधा राज्य देने का वादा किया। वैरोचक भोला था। चाणक्यने उसे अपनी तरफ कर लिया। प्रथम वही प्रवेशद्वार में आए, और उसके बाद चंद्रगुप्त ऐसा उसने वैरोचकसे वादा लिया। बाद में उसे उत्तम पोषाख परिधान करवाके, सजाए गए हाथी से, प्रथम प्रवेशद्वारसे लाया गया। चंद्रगुप्त को पहले किसी ने भी देखा नहीं था। हाथी चलाने वाले बर्बरकको भी चंद्रगुप्त के विरोधकों ने रिश्वत दी थी। कमान के गिरने के बाद जो गड़बड़ होती उसमें चंद्रगुप्त मारा जाए ऐसा षड्यंत्र भी रचा गया था।

पर बर्बरकने जल्दबाजी की। हाथी प्रवेशद्वार के पास पहुँचते ही उसने छोटी तलवार बाहर निकाली और उससे वैरोचकपर वार किया। पर वह हाथी को लग गई। हाथी यहाँ वहाँ भागने लगा। उसी समय दारुवर्मनि कमान निचे कर दी। जिसके निचे बर्बरक की मौत हुई। उस गड़बड़ में दारुवर्माको लगा शायद चंद्रगुप्त भाग जाएगा इसलिए उसने चंद्रगुप्त समझकर वैरोचकको मार डाला।

इस प्रकार चंद्रगुप्त के शत्रुओंका पुरा षड्यंत्र विफल हो गया। दारुवर्माको पत्थर मार के जान से मार डालने का हुक्म फर्माया गया। इसप्रकार चंद्रगुप्त के प्रवेश में आने वाली बाधाएँ दूर हुई। पहला वैद्य और दूसरे निजी नोकरी की भी बैंक से परख कर सुयोग्य स्थानपर नियुक्त किया।

किसी भी मौर्य राजाने बुद्ध धर्म नहीं स्वीकारा था। इसका अर्थ यह नहीं है बुद्ध धर्म के शत्रु थे। हिंदु लोग हमेशा से ही बरदाश्त कर रहे थे। जैन साधु जीवसिंधी और उसके शकटाल जैसे भक्तों को चाणक्य ने आसानी से जित लिया था।

अपना ईप्सित पूरा होने पर चाणक्य के पूर्वका प्रधानमंत्री अमात्य राक्षस को चंद्रगुप्त के लिए अपना वह स्थान फिर से भूषित करने के लिए अनुरोध किया। उसने अनुरोध जब स्वीकार किया तब चाणक्यने चंद्रगुप्त के सलाहकार का स्थान त्यागकर वह फिरसे राज्यशास्त्र के अध्यापक के तोर पर विश्वविद्यालय में काम करने लगा। 'अर्थशास्त्र' नामक उसके पुस्तक में इन विचारों को प्रकट किया है।

हम अब राजनीति के बारे में उसके पुस्तकमें प्राप्त होनेवाले विचारों की तरफ बढ़ते हैं। भारत के राजाओंने राज्य करते समय कौनसे तत्वों को वैदिक काल में स्वीकारा होगा, यह बात स्पष्टतापूर्वक ज्ञात होती है।

३.२ अर्थशास्त्र:

अर्थशास्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है : 'भूमी प्राप्त करना और उसकी रक्षा करना। (पृथिव्यां लाभे पालने च। यह राजनीतिका शास्त्र है। जमिन के सहारे से आदमी अपना पेट पालता है और उसी पर वह रहता है। इस शास्त्र का महत्वपूर्ण विषय है कि, यह जमीन किस प्रकार प्राप्त की जाए और वह अर्थ मतलब संपत्ती प्रदान करती है उसकी रक्षा किस प्रकार की जाये।

तानाशाही किस प्रकार निर्माण हुई?

महाभारत के शांतिपर्व में लोग किस प्रकार राज करते थे, इस बारे में संदर्भ मिलता है !

न वै राज्य न राजा आसीत् न च दंडो न दांडिकः ।

धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

शुरुवात में कुछ राजनैतिक पक्ष नहीं था। राजा भी कोई नहीं था। दंड के लिए कोई हथियार नहीं थे और दंडित करनेवाला भी कोई नहीं था। धर्म का अर्थ सुस्थिती में रहना, इसी भावना से लोग एक दुसरे की रक्षा करते थे।

“जिसकी लाठी, उसकी भैंस।” इस कानून से लोग रहने लगे। उसके पूर्वकाल का कौटिल्य चित्रण करता है। वह कहता है, “*मत्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे*” १-४३-५ “मछलियों के कानून से लोग डर गये, मतलब बड़ी मछली छोटी मछली को खी जाती है, इसी सोच से वैवस्वतका पुत्र मनु को राजा बनाया।” यह पहला राजा था। यही तानाशाहीकी शुरुवात थी। अधिकतर लोग शांती से रहना पसंद करते हैं। पर कुछ लोग ताकद का प्रयोग कर ज्यादा ही अंमल कर रहे थे। अपनी रोटी पर ज्यादा घी छिन रहे थे। इसलिए कोई तो नेता हो, जो उन सबकी रक्षा करें, ऐसी उम्मीद लोगों के मन में जगी। ऐसी स्थिती मे लोग अपना व्यवसाय सही से कर सकते हैं और प्रत्येक मनुष्यकी नीजी तरक्की भी होती है।

लोगों ने तय किया कि राजा को अपनी तनखाँ का १/६ हिस्सा दिया जाए, दुसरा कुछ माल हो तो उसका १/१० दिया जाए, पैसा, सोना, चांदी होने पर उसका भी १/१० हिस्सा दिया जाए। (१-१३-६) इस प्रकार अपनी रोजीरोटी की सुविधा होने पर राजा लोगों के हित के पक्ष में कुछ कर सकता था और उनकी रक्षा भी

करने लगा। लोगों का यह कर्तव्य है कि, वे राजा को आयकर (टैक्स) दे और राजाका कानून तोड़ने पर जुर्माना भरे।

गुन्हेगार को दंडित करना राजा का कर्तव्य होता है। जो गुनाह नहीं करता अर्थात् जो नियमों का पालन करता है उसकी रक्षा करना भी राजा का कर्तव्य है। मनु यह नियम बताते हैं :

“बेगुनाह को सजा देने से राजा पापी बन जाता है। गुन्हेगार को यदि राजा दंडित न करे, तो वह भी राजा की गलती है। इसलिए राजा को कानून के मुताबिक दंड देना चाहिए। इसप्रकार बरताव करने से राजा गुणवान साबित होता है। उसे पुण्य मिलता है।”

राजा कानून के अनुसार अपना कर्तव्य पूरा कर सके इसलिए जंगल के अधिकारियों को (लोगों को) भी राजकोश में सही आयकर भरना चाहिए। राजाको वेदोंका और उसी के साथ द्वितीय स्तर के शास्त्रों का भी ज्ञान होना चाहिए। राजा अत्यंत चतुर और होशियार होना चाहिए। उसे बहुत महनत करनी चाहिए और धर्म का अनुसरण करते हुए बरताव करना चाहिए। उसका व्यवहार विनम्रतापूर्ण होना चाहिए और उसका स्वभाव परोपकारी होना चाहिए।

वेदवेदांगवित् प्राज्ञः सुतपस्वी नृपो भवेत् ।

दानशीलश्च सततं यज्ञशीलश्च भारत ।। शांतीपर्व ६१-३१

अपने ऋषीमुनी यों की समाज को बांधे रखने की सूझता दर्शाती है, उसके अनुसार बहुत ही थोड़े लोग होते हैं जो सभी कलाओं में और शास्त्रों में निपुणता प्राप्त करते हैं और साधारण जनता का नेतृत्व कर सकते हैं। राजाको किस प्रकार चुना जाए, इस बारे में वेदों में (ऋग्वेद १०, १७३, १७४) कुछ कसौटियाँ निश्चित रूपमें दी हैं। महाभारतकालीन उपरोक्त श्लोक के अनुसार राजा को कला और शास्त्रों का गहरा ज्ञान होना चाहिए। इसके आलावा उस में धैर्य, आत्मविश्वास और नेतृत्व के गुण होने चाहिए। सभी सत्ता राजा नाम एक ही व्यक्ति की ओर घिरी हुई थी, ऐसा मानना गलत है। राजाको मंत्री मदद करते थे और सुझाव भी देते थे। अंतिम निर्णय राजापर निर्भर करता था। ऐसी स्थिती आज भी है। आज भी प्रधानमंत्री सलाहकार समिति द्वारा दिए गए सुझावों का हर तरफ सोचविचार करने के बाद अपना अंतिम निर्णय लेते हैं।

कौटिल्य राजाकी तुलना इंद्र और यम के साथ करते हैं। ये दोनों देवता उचित न्याय करके सजा तय करते हैं। बेशक से देवता खुशमिजाज नहीं थे। मनुष्य जाति के कल्याण हेतु जो नियम निश्चित किए गए हैं उनका वे पालन करते थे। मनुस्मृति ७-३-८ में 'राजा' नामक अधिकारपदका संबंध प्रजामें कानून और सुयोजना प्रस्थापित करने की जरूरत से जुड़ा हुआ है। अन्यथा उसे अंदाधुंदी और शोरगुल हानी पहुँचाएंगे। राजा मनुष्य रूप में ईश्वर ही है।- *'महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति'*

परंतु यह कल्पना, राजाओं के अधिकार देवताओं द्वारा प्रदान किए जाते हैं, इस पाश्चात्यों के कार्यकारण संबंध के समान नहीं है। भारत के ग्रंथों में देवता कभी भी द्वेष नहीं करते ऐसा संदर्भ मिलता है। वे प्रजा के हित के लिए सदैव जुटे रहते हैं। अपराधी को वे दंडित भी करते हैं। धर्म राजा से भी अधिक श्रेष्ठ है। हिंदु संस्कृति के अनुसार हर जीव में ईश्वर का वास होता है। हर प्राणीका मूलतत्त्व ईश्वर ही है।

कौटिल्य के मत के अनुसार राजा स्वयं धर्माचरण करता है और प्रजा भी बिलकुल वैसा ही करे उसपर वह ध्यान देता है। धर्म अर्थात् सद्वर्तन (३-१-३८)। इस प्रकार आचरण करनेवाला राजा स्वर्ग में पहुँचता है। (३-१-४) प्रजा की रक्षा करना और अपना हित साध्य करने के लिए उसकी सहायता करना राजा का कर्तव्य है। समाज विघातक आचार करनेवाले लोगों से, उदा.- धोकादड़ी करने वाले कलाकार, व्यापार करने वाले, चोर, डाकु, खुनी इन सबसे, तथा भूचाल, प्रलय जैसी अमानवीय आपत्तियों से बचाना भी जरूरी होता है। बाहरी विपत्तियों से अथवा शत्रुओं के हमलेसे प्रजाको बचाना उसका परम कर्तव्य होता है।

३.३ राजा का दायित्व:

राजा हमेशा कृतीशाली होना चाहिए। देशमें और सरहद पर घटने वाली घटनाओं के बारे में उसे हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए। प्रजाके हित का अगर उसने खयाल नहीं रखा तो प्रजा नाखूष रहेगी और उसकी सत्ता तहसनहस हो जाएगी। अगर वह सरहद के बारे में सावधानी न बरखेगा तो शत्रु बलशाली हो जाएगा और उससे राज्य छिन लेगा। उसके राज्य का अंत हो जाएगा।

इसलिए उसे दिन और रात के आठ हिस्से करने पड़ते हैं। दिनके पहले हिस्से में देश के रक्षण हेतु चीजों की ओर ध्यान देना चाहिए। वैसे ही प्राप्त धन और खर्च कितना हुआ। इसबारे में सोचविचार करना चाहिए। दूसरे प्रदेश के लोगों के और देश के समाचारों की तरफ ध्यान देना चाहिए। तिसरे हिस्से में राजाको स्नान और भोजन कर अध्ययन करना चाहिए। चौथे हिस्से में रोख में वसुली करनी चाहिए। और हर विभाग के मुखिया को काम निश्चित करना चाहिए। दिन के पाँचवे हिस्से में सलाहकार समिती के सदस्यों से चर्चा

करे, जरूरी डाकव्यवहार करे और गुप्तचरों द्वारा लाए गए समाचार सुने। छठे हिस्से में मनोरंजन करे और सुझाव सुने। सातवे हिस्से में हाथी, घोड़े, रथ और सेना की देखरेख करे। आठवे हिस्से में गाने सुनने चाहिए।

रात के पहले हिस्से में गुप्तचरों के साथ बातचीत करे। दूसरे हिस्से में स्नान, भोजन और अध्ययन करे। तिसरे हिस्से में शयन कक्ष में सुरीला संगीत सुनना चाहिए। चौथे और पाँचवे हिस्से में निद्रा लेनी चाहिए। छठे हिस्से में वाद्यवृंद की ध्वनी से जागकर सिखे हुए शास्त्र पर विचार करना चाहिए, राजनीति के बारे में सोचना चाहिए। दिनमें क्या काम करे, इस बारे में सोचविचार कर योजना बनानी चाहिए। सातवें हिस्से में सलाहकारों की राय लेनी चाहिए और गुप्तचरों को भेजना चाहिए। आठवे हिस्से में उपाध्याय और गुरुओं का आशीर्वाद लेना चाहिए। वैद्यराज मुख्य रसोईया और ज्योतिष कथन करने वालों को मिलना चाहिए। सवत्स गाय की ओर प्रदक्षिणा कर राजसभागृह में प्रवेश करें। अथवा अपना दिन और रात बह अपने हिसाब से और सुविधा के अनुसार बाँट लेना चाहिए और उस प्रकार कार्य पूरा करना चाहिए।

राजसभामें आने के बाद, किसी काम से आने वालों को मिलने की अनुमति दे। जिस राजासे आसानी से मुलाकात नही हो पाती, उसके नजदिकी लोग उसे जो करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए उसके विपरित करने के लिए उसे मजबूर करते हैं। उसके परिणामस्वरूप प्रजा विपरित हो जाती है अथवा शत्रु उसे मात दे देता है। इसलिए देवताओं के देवालय, ऋषियों के आश्रम, नास्तिक, वेदसंपन्न ब्राह्मण, जानवर, पवित्र स्थल, अज्ञानी और वयस्क, बिमार, दुखी, बेसहारा, नारीयाँ इस क्रम के अनुसार अथवा जो बाते महत्त्वपूर्ण हो उस हिसाब से उन चीजोंपर ध्यान देना चाहिए।

उपर्युक्त समूह के लोगों को मिलने के लिए राजा को महत्त्व देना चाहिए। लोगों को पूछताछ करने वाला राजा पसंद होता है।

जरूरी चीजों की ओर तुरंत ध्यान दे। अनदेखा करने पर सरल चीज बाद में कठिन बन जाती है। वेदों का अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों की ओर ध्यान दे। साधुसंतों के बारे में पूछताछ करे। यज्ञशालामें जाना चाहिए और उस समय अपने पुरोहित और आचार्य को साथ ले जाना चाहिए। अपने आसन से उतरकर, विद्वान और साधुओं को प्रणाम कर उनके बारे में पूछताछ करे। साधु और जादूटोणा, चमत्कार करवाने वालों के बारेमें पूछताछ करते समय, तीन वेदों का अध्ययन करने वालों के बारे में पूछताछ करते समय, तीन वेदों का अध्यापन करने वाले पंडितों को साथ लेकर ही पूछताछ करनी चाहिए। अकेले न करे क्योंकि अवसर आनेपर उनका क्रोध जाग जाता है। यज्ञदीक्षा ग्रहण करना राजाका कर्म है, राजनीति को संभालना एक यज्ञ है, निष्पक्ष बरताव उसका वेतन और यज्ञकर्म में ध्यान देना ही राज्याभिषेक है।

प्रजा कि संतुष्टी में हि राजा का आनंद होता है। प्रजा का जिस में फायदा हो उसी में राजा का भी फायदा होता जिसे लोग पसंद करते है उसी में राजा की भलाई होती है।।

सदैव काम करते रहना, प्रजाकी भलाई की चीजे करने में व्यस्त रहना अच्छा होता है। भौतिक सुस्थिती का मूल हमेशा कार्यमग्न होने में छिपा हुआ है। कार्यमग्न न होने का अर्थ भौतिक अरिष्ट को बुलावा देना है।

कार्य न करने से जो कुछ प्राप्त हुआ है और होनेवाला है उसका भी निश्चित रूपमें खात्मा हो जाता है।

कार्य करते रहने से अपना निश्चितरूपमें फायदा होता है और बहुत सारा धन भी प्राप्त होता है।

राजा के लिये नियुक्त कर्तव्यों को देखने पर नजर आ जाएगा कि, राजा के सरपर कितना बड़ा बोझ रखा हुआ होता है। जिसके पास सच में कर्तृत्व, ज्ञान और लोकप्रियता हो उसी को राजा चुना जाता है। राजा सिर्फ तीन घंटे विश्राम ले यही उम्मीद होती है। बाकी सब समय का राजपाठ चलाने के लिए उसे होशियारी से उपयोग करना चाहिए। हमें ध्यान में लेना चाहिए कि कौटिल्य स्वयं कामकाज देखनेवाला था। उसने ये कर्तव्य बड़ी बारिकीसें और व्यवहार के बारे में सोचके लिखी है जो प्रत्यक्ष आचार में लाने के योग्य है।

राजप्रासाद:

वास्तुशिल्प के तज्ज्ञों द्वारा सुझाव दी गई जमिनपर अपना राजप्रसाद बंधवाना चाहिए और उसकी तरफ प्राकार, पानीकी खाईयाँ, प्रवेशद्वार और बहुत बड़े बड़े दालन राजभवन में होने चाहिए। प्रासादका खुदका देवालय होना जरूरी है। अंदर से भूमी के नीचे जानेवाले मार्ग होने चाहिए, जिनसे संकटसमय पर बाहर निकला जा सके। प्रासाद की अग्नि, जहरिले साँपों से रक्षा करनी चाहिए। शक से पीडित रानीथों से और राजपरिवारको अन्य पुरुष और स्त्री- समूह से राजा की रक्षा हो, इसलिए बहुत सूक्ष्मतर नियम बनाए गए हैं।

प्रजाका योगक्षेम:

प्रजा का हित ही राजा का पहला दायित्व है। इस बातपर कौटिल्यने बहुत जोर दिया है। *प्रजानां योगक्षेमः।* योग का अर्थ अपना ध्येय सफलतापूर्वक पूरा हो सके। क्षेम का अर्थ शांतिपूर्ण और निश्चितता से उस पूर्ती का स्वाद ले! प्रजामें बरकत कैसे आएगी और प्रजा खुश कैसे रहेगी, यह देखना राजा की जिम्मेदारी होती है। इसलिए राजाको नूतन जमिन पर किसानों को बसाने का काम हाथ में लेना चाहिए। राजाको नहरे, तालाब बंधवाने चाहिए। जानवरों के लिए हरियाली बचाके रखनी चाहिए और व्यापारियों के लिए रास्ते बंधवाने चाहिए। खदानों की देखभाल और खदानों के कारागिरों के सुरक्षा का प्रबंध करना चाहिए।

कौटिल्यने राज्य में सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए कहा है। खदानों के, कारखानों के, जंगली हाथिके, जंगलके जानवरों के समूह से जुड़े, व्यापारियों के लिए रास्ते बनवाने के काम शुरू करवाने चाहिए। राजा जल-मार्ग, और हवाई मार्ग स्थापित करे। बारिश के पानी से अथवा किसी और स्थल से पानी लाकर नहरों के काम करें।

दूसरा कोई ये काम कर रहा हो तो, उसे जमीन रास्ते, पेड़, हथियार देकर सहायता करनी चाहिए। पवित्र स्थल और बड़े बगिचे के निर्माण में सहायता करना राजा का कर्तव्य होता है। नहर बनाने का काम पुरा होते ही उन कारागिरों को और बैलगाड़ीयों को उनके हिस्से का काम करने के लिए कहना चाहिए। खर्चों में उनका हिस्सा उठाने के लिए कहा जाए और फायदे का हिस्सा उसे न दे। नहर बनाने के काम में शामिल मछलियाँ, बत्तख, हरी सब्जियों की कमाई राजाको सौंप दे।

राजा बेसहारा बच्चों की ओर, बुढ़े और दुखी लोगों की तरफ ध्यान दे। जिस स्त्रीकी संतान न हो और परिवारका सहारा न हो, संक्षेप में कहा जाए तो दुखी अकेली स्त्रीको राजा सहारा दे।

अज्ञात बालक की जमीन-जायदाद और धन हो तो बड़े लोग उसे बढ़ाने में सहायता करे। देवालियों की संपत्ती बड़े बुजुर्ग सँभाले।

जिसके हालात अच्छे हैं, अगर वह बीवी बच्चे, माँ बाप, नाबालिक भाई और विधवा बहनें अथवा कुँवारी बहनोंवर ध्यान न दे तो उससे १२ पणों का जुर्माना लेना चाहिए। अगर उन्हें जाति से बाहर कर दिया हो तो जुर्माना देने की जरूरत नहीं है। माँ को भले ही जाति से बाहर कर दिया हो पर बेटे को उसका त्याग नहीं करना चाहिए। उसे सहारा देना चाहिए।

जो जमीन शत्रुओं की सैनाने ऐसे ही छोड़ दी हो, बीमार होनेसे अथवा अकाल में पड़ी हो, उसपर राजा आयकर न वसूल करे। राजा को महंगे खेलोंपर रोक लगाना चाहिए।

जिस खेत के काम में किसान परेशान कर रहे हो अस खेती की राजा रक्षा करे। जानवरों के समूह को अगर चोरोसे पीड़ा हो रही हो अथवा जंगली जानवरों का डरही अथवा जहर और घड़ियालों ने डर हो तो राजा उन्हें सुरक्षित करे।

व्यापार हेतु उपयोग किए जानेवाले रास्ते हमेशा खुले होने चाहिए। राजा के चहेते लोग, काम करने वाले अधिकारी, चोर, सरहद के अधिकारी और जानवरों के समूह चलते रास्ते पर रुकावट न डाले इसपर राजा को नजर रखनी चाहिए। जंगल से मिलनेवाली संपत्ती की राजा रक्षा करे। हाथियों के लिए आरक्षित जंगल, नहरोंका काम, खदान आदिकी रक्षा करे और नये काम शुरू करे।

सामाजिक सुव्यवस्थाके रक्षणकर्ता:

वर्णव्यवस्था और आश्रम प्रणाली पर आधारित समाज रचना को मंजुरी देना आवश्यक था। हमारे १२वें खंड में इस मुद्दे पर सही तरह से चर्चा की गई है। वर्ण का अर्थ जाति नहीं है। मानव की रुची और उसने चुना हुआ व्यापार, इन पर वर्णव्यवस्था निर्भर करती है। समाज के सभी घटकों का इस व्यवस्था के कारण फायदा होने से यह व्यवस्था ठीक तरह से जतन की जाए इस बात पर राजा को ध्यान देना चाहिए।

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राजा दंडेन पालितः।

स्वधर्मकर्माभिरतो वर्ततेस्वेषु वर्त्मसु॥१-४

इस प्रकार, सुविहित कार्य यंत्रणाद्वारा राजा समाज के हित का भरोसा दे सकता है। इसे 'दंड नीति' कहते हैं। राज्य चलाने के अधिकार का चतुरता से और संतुलन बनाए रखकर उपयोग करना आवश्यक है। प्रजा में असंतोष नहीं फैलना चाहिए। वैद्य अपने प्रदेश के अधिकारी और छोटे समूह के अधिकारी को बीमारी के बारे में सभी जानकारी दे, मरीज को न बताते हुए चूपचाप दवाई का प्रबंध करे और मरीज की रक्षा करे। राजा के अधिकारी दुष्टों का खात्मा करे। समाज के लिए हानिकारक चीजें करने वालों के नाम राजदरबार में बताकर, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को राजकार्य में सहायता करनी चाहिए।

समाजका हित एकमेव इन्तिहान :

राज्यपर और राजापर आने वाली विपदाओं की जानकारी कौटिल्य ने अपने क्रमांक ८ के ग्रंथ में दी है। इस प्रबंध में राजा के नियुक्त कार्यों का वर्णन मिलता है।

संभवतः राजा को सभी हमलों का सामना करना पड़ता है और सरहद के पार के शत्रुओं के आक्रमण का भी डर लगा रहता है। आपसी हमले अधिक दगाबाज होते हैं, क्योंकि कभी मंत्री या कभी नाराज लोग उसका नेतृत्व करते हैं। इसलिए खजाने की चाबीयाँ और सेना राजा को अपनी हिरासत में रखनी चाहिए, ऐसी चाणक्य की सलाह है। राजा और युवराज अथवा दो भाईयों का संयुक्त राज्य हो तो भितरी गड़बड़ अथवा राजकीय अप्रीति पैदा होने पर भी प्रजा को खतरा नहीं होता। द्वैराज्य और वैराज्य रितिके फायदे-नुकसानों के बारे में इसमें कौटिल्य ने बताया है। वैराज्य अर्थात् दूसरे राजा द्वारा इस राजा को हटाकर चलाया हुआ (राज्य)। वैराज्यसे द्वैराज्य ठीक, ऐसा कौटिल्य का कहना है उसकी बजह है अन्य सत्ताधीश को जिते गए समाज के

कल्याण की कोई चिंता नहीं होती, वह सारा खजाना खाली कर देता है और प्रजा को भिकारी बना देता है। अगर उसके प्रजा के लिए घृणा हो तो वह सारी दौलत पुरी तरह से लुटाकर प्रजाको किस्मत के भरोसे छोड़ देता है।

ब्रिटिशों के बारेमें भी यही तजुर्बा है। यहाँ के प्रजा की भलाई के बारे में उन्हें कोई चिंता नहीं थी। उन्होंने लूटमार कर हमें दरिद्री बनाकर वे चले गए।

कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि, राजा का भलेही एकलौता बेटा हो पर वह अनुशासन में न रहता हो, तो उसे राजभार नहीं सौपना चाहिए। (७-१९-५१)

राज्यशास्त्र के नियमों का पालन करे। अगर राजा नियमों का पालन न करे तो उसके अंधे रिश्तेदार को भी सिंहासनपर बिठाया जाए क्योंकि कुशल मंत्रियोंकी सहायता से वह अच्छी तरह से राजभार संभाल पाएगा। (८-२-११)

कौटिल्य नए राजासे अधिक बिमार राजा ठीक है, ऐसा मानता है। बिमार राजा पुरानी रीतिसे ठीक तरहसे राज चला सकता है, ऐसा उसका कहना है। (८-२-१६) अगर नए राजाने जबरदस्तीसे राज्य प्राप्त किया हो तो उसका व्यवहार बंधनरहित हो सकता है।

दुर्बल पर बड़े घराने में जन्मा राजा और बलशाली पर छोटे घराने में जन्मे राजा के बीच प्रजा कुलीन राजा की चुने, ऐसा कौटिल्य का मानना है। (८-२-२३) कौटिल्य के सामने नीच वर्णीय नंदका उदाहरण भी था। नंद दुष्ट और लालची थे। नंद के राज में कही बात अच्छी थी कि, उनका प्रधानमंत्री राक्षस प्रजा के हित के पक्ष में सोचता था।

इतनी बारिकी से कौटिल्य जानकारी देता है क्योंकि उपर दो प्रकार की राज्यपद्धति बताई गई है, उनमें से प्रजा किसे चुने, कौनसी राज्यपद्धति हमारे राज्य में हो इस बारे में लोगो को सतर्क होना चाहिए। समाजहित के पक्ष में जो राजा न हो उनके राज्यको प्रजा खारिश करें।

कुल संघ:

(१-१७-४३) में कौटिल्य कुल (परिवार) राज्य पर ध्यान देता है। राज्यपद्धति को जितना मुश्किल होता है पारिवारिक प्यारसे उसकी एकता प्रबल बन जाती है। ऐसी रीति दीर्घकाल तक राज कर सकती है। चाणक्य के दुसरे ग्रंथ के अनुसार एक राजा के राज्य करने से बेहतर राजपाठ चलानेकी अन्य दो रीतियाँ थी। प्राचीन काल में वे प्रचलित थी। एक शस्त्रोपजीवी समूह अर्थात् एक शस्त्र बनाने वाले और उसे ही अपनी रोजी रोटी का जरिया माननेवाले, और दुसरा राजशब्द योगी समूह - जो राजा शब्दका उपयोग कर

राज्यकर्ताओंका समूह बनाते हैं। पहले भेदमें कंबोज, सुराष्ट्र आदि थे, तो दूसरे भेद में लिच्छविक, वृष्णिक, मद्रक, कुकुरु, कुरु, पांचाल और अन्य अनेक राज्य पद्धति प्राचीन काल में भारत में थी। इस रीति से राज्य अच्छी तरहसे ग्रथित होता है। शत्रुओंका हमला इनपर कभी न होता था। लिच्छवी राति गुप्तकाल तक प्रचलित थी। बाकी सब रीतियाँ मौर्य कालके बाद लुप्त हो गई। कौटिल्य के सुझाव के अनुसार इस रीतिपर विजय प्राप्त करने के लिए मार्गों के बारे में अब चर्चा करने की जरूरत नहीं है।

कुलवान कर्तृत्वशाली क्षत्रिय जिसके लिए महत्वपूर्ण है ऐसी नृप-प्रणाली कौटिल्य अधिक पसंद करते थे।

राज्य के घटक :

(६ + १) राजा, मंत्री, देश, प्राकार सहित शहर, खजाना, सेना और मित्रराष्ट्र आदि राज्य के घटक हैं, जिन्हें 'प्रकृती' कहा जाता है।"

राजा के गुणविशेषों में अगली बातें शामिल हैं : अच्छे कुल में जन्म, भाग्यशालित्व, चातुर्य, धैर्य, ज्येष्ठ लोगों के लिए सम्मान, शुद्धाचरण, सत्यवचनी, वचन का भंग न करनेवाला, कृतज्ञ, उदारतापूर्ण, पड़ोस के कमजोर राजाओं के लिए दृढनिश्चयी, सलाहकारों को नीची चीजे करने के लिए प्रोत्साहित न करनेवाला, ज्ञानप्राप्ति के लिए हमेशा तैयार रहनेवाला, ऐसे राजासे मिलना सुलभ होता है। अच्छा राजा अपने सरहद के राजाओं को हमेशा कमजोर बनाए रखता है।

अध्ययन और श्रवण की चाहत, समझदारी, सोच विचार करना, गलत रायको ठुकरा देना, सत्य के लिए जिद्दी होना ये सब बुद्धी के गुण हैं। वक्तृत्व, साहस, अच्छी स्मरणक्षमता, बुद्धीमान, बलशाली होना उच्चपद को सहजतापूर्वक संभालना, कलाओं में निपुण, दुर्गुणों से कोसो दूर रहना, सेनाका नेतृत्व करना, कृतज्ञता प्रकट करना, उपकार और नुकसान को सही मार्ग से लौटा देना, बुरी चीजों के लिए लज्जित होना, आपत्ति के समय सही व्यवहार करना, शांति के समय पर आगे का सोचना, वक्त पर होना, मानव के प्रयासों की कद्र करना, शांति और युद्ध के बीच विवेक करना, किसी की देन को समयपर वापस करना, कुलमिलाकर सब स्थितीपर नजर रखना, शत्रुओं की खामियों को पहचानना, उनके दोषों का लाभ उठाना, सावधानी बरखना, जो शोभा न दे ऐसा न हँसना, नजरे सीधी होना, भावनाओं पर काबू रखना, क्रोध, लालच, कठोरता चंचलता, परेशानी आदि से दूर रहना, हँसते हुए और ऐंट में वार्तालाप करना, ये सब भलाई के गुण हैं।

इससे समझ आता है कि, राजा को इन सब गुणों को खुद के लिए तथा मंत्री, अधिकारी, सैनिक और सामान्य जनता के लिए प्राप्त करने के यत्न करने चाहिए। अपने प्राचीन समाजवादीयों ने सभी मानवों की हर तरह से तरक्की हो इसलिए कितने उच्च लक्ष्य सोच लिए थे इस बातका ज्ञान होता है !

किसी भी राष्ट्र के लिए ये सब घटक आवश्यक होते हैं। और इन सबको सुस्थिती में रखना किसी भी देश के हर नेता का आद्य कर्तव्य होता है। इतिहास से नजर आता है कि, अनेक राजा हो गुजरे। उपनिषद् काल के कुछ राजाओं का संदर्भ देते समय हिलब्रांट कहता है, "तत्त्व के अध्ययन पर जोर देना प्रमाण ग्रंथोंकी मूल जरूरत नहीं होती है। हमें इस कल्पना को त्यागना होगा कि, भारतका भाग्य विषयासक्त और आलसी तानाशाहों के हाथों सौंपा गया था, उनकी जगह पर इतिहास के दृष्टांतोद्वारा चित्रित किया गया कि भारत के राज्यकर्ता समकालीन संस्कृति के सबसे उपरी पायदान पर खड़े थे।" कौटिल्य कहता है:

“राजा अगर अपने कर्तव्य में तत्पर हो तो उसके नौकर चाकर उसके नक्शे कदमों पर चलते हैं। अगर राजा भट्ट, कर्तृत्वहीन हो तो नौकर भी वैसे ही बन जाएंगे। ऐसा होने पर राजा के मनमें आनेवाले अच्छे प्रयोजन उपयुक्त साबित नहीं होंगे। उसके नौकर उन्हें नाकारा साबित कर देंगे। उसके शत्रु हमला करेंगे। राजा के कर्तव्य के लिए सावधानी बरखना अत्यंत आवश्यक होता है। राजा को हमेशा कर्तव्य के लिए तत्पर और कार्यशील होना चाहिए।”

खजाना राजाकी नीजी संपत्ती नहीं है। वह देश की संपत्ती है। भारत के राज्यशास्त्र के अनुसार राजा राज्य का उपभोग न लेने वाला स्वामी होता है इधर उधर दौड़ने वाले अपने इंद्रियोंपर उसका संपूर्ण रूप में काबु होना चाहिए।

तीन शक्तियाँ:

शास्त्र अथवा राज्य शास्त्र में तीन शक्तियाँ बताई जाती हैं। जिनके कारण राज्य चलता है। पहली उत्साह की शक्ति, नीजी शक्ति, यह राजा की खुदकी शक्ति है। दूसरी प्रभाव शक्ति - सेना और खजाने की शक्ति। तिसरी मंत्रशक्ति - सलाह देने की शक्ति और राजनीति की शक्ति। एक देश का दुसरे देश से मित्रतापूर्ण संबंध रखने के लिए इस शक्तिका उपयोग होता है।

देश में चलनेवाले नीजी कामकाज के साथ उनका कोई संबंध नहीं है। पूर्व आचार्य के मतों के खिलाफ जाकर कौटिल्य कहते हैं, उत्साहशक्ति से अधिक प्रभावशक्ति महत्वपूर्ण होती है। और मंत्र शक्ति दोनों शक्तियों से श्रेष्ठ है। उत्तम सुझाव और दावपेचों से राजा उत्साही और बलवत्तर शत्रुओं पर सरलता से विजय प्राप्त कर सकता है। (९-१२-१६)

राजा और मंत्री के आपसी महत्त्व के बारे में बातचीत करते समय कौटिल्य राजा के नीजी कर्तव्यों के बारे में बताता है। मंत्रियों की नियुक्ति अथवा उन्हें पदच्युत करना, उनके कामकाज निश्चित करना, ये सब राजाको ही करना चाहिए। किसी भी कृति को खामी अथवा दोषों के कारण नुकसान न भुगतना पड़े इस बात का भी राजाको ध्यान रखना पड़ता है। राजा क्षमता के अनुसार किसी गुणवान आदमी का सम्मान करता है और किसी गुन्हेगार को सजा सुनाता है। सभी राजपाठ की योग्य दिशा दर्शाने का कार्य राजा ही करता है, क्योंकि वह राज्य का मुखिया होता है। (८-१-१३-१८) राजा का सार्वभौमत्व स्पष्टता से कौटिल्य ने वर्णित किया है।

मंत्री :

राज्य का दुसरा महत्वपूर्ण घटक मंत्री है। उसकी ईप्सित सहायता राजा को प्राप्त करनी पड़ती है। सहाय्यकारीयों की मददसे राजा राज्यकर्ता का किरदार सफलता से निभा सकता है। रथ के दोनों चक्रों को काम करना पड़ता है एक ही चक्का घुमनेपर कोई फायदा नहीं होता। इसलिए राजा ही मंत्री को नियुक्त करे और उसका कहना भी सुन ले। आर्य चाणक्य व्यवहारकुशल राज्य चलानेवाले है। रोज के व्यवहार की बातें देखकर, एक चक्का काम नहीं कर सकता 'चक्रं एकं न वर्तते।' ऐसा कौटिल्य कहना चाहते हैं। मंत्री बहुत होते हैं। अमात्य अर्थात् राज्य का सबसे बड़ा अधिकारी। उनके काम इसप्रकार हैं : मंत्र अर्थात् सही सुझाव देना, कर्मानुष्ठान- राजा के निर्णय को वास्तव में लाना, दंडप्रणयन- सजा देना, शून्यो निवेशोपचयन - प्रदेश बसाना, और उनमें सुधार लाना। दंड करानुग्रह- जुर्माना आयकर वसूल करना आदि। मुख्य मंत्री की देखरेख में ये सब काम अधिकारी पुरे करते हैं।

३ अथवा ४ मंत्रियों का एक मंडल नियुक्त करनेका सुझाव राजा को दिया जाता है। एकही मंत्री के लिये पुरा राजभार संभालना मुश्किल हो जाता है। दो मंत्री होने पर कलह होगा तथापि दो मंत्री आपस में हाथ मिलाकर राजा को हटा सकते हैं जिससे देश को हानी पहुँचेगी। ज्यादा मंत्री होनेसे सलाहकारों की समिति में जो गूढ़ता रखनी जरूरी है, वह न रखी जा सकती है।

पुरोहित :

राजा पुरोहित अर्थात् उपाध्याय को नियुक्त करता है। धार्मिक विधि में ही वह केवल निपुण होता है ऐसा नहीं बल्कि वेदशास्त्र में भी पारंगत होता है। सभी कला और शास्त्र उसे ज्ञात होते हैं। राजनीति में भी वह पंडित होता है। उसे अर्थशास्त्र का भी ज्ञान होता है। देश के विपत्ती के समय पर काम आनेवाली तंत्र (जादूटोना) विद्या भी उसे अवगत हो, यह जरूरी है।" पुरोहित की राजनैतिक सत्ता पूरी तरह से उसी की

तरफ ग्रथित हो जाती है। यज्ञ करते समय अथवा जादूटोना करते वक्त वह राजा पर जो असर डाल सकता है उसपर उसका राजनैतिक महत्त्व निर्भर करता है।"

जिस प्रकार शिष्य अध्यापक की बात मानते हैं अथवा पुत्र पिताकी बात मानता है अथवा नौकर मालिक की सुनता है, उस प्रकार राजा पुरोहित की बात माने। क्षत्रियकी ताकद बढ़ाने में ब्राह्मण मदद करता है और मंत्रियों के सुझाव से वह और भी बढ जाती है। अत्याधुनिक शास्त्र निर्मिती करनेवाले शास्त्रज्ञों के कारण और राजनैतिक घटनाएँ, दावपेचों के कारण पुरोहित भारी पड जाये और घमंड दिखाये ऐसा दिखाने पर राजा उसें पद से हटा सकता है (१०-२)।

कुछ भी हो मंदिरो कि सुसंघटीत संस्था का वह सदस्य नहीं है! राजसत्तासे ताकदवर उसकी सत्ता है ऐसा वह नहीं कह सकता। देवालय और राजा, के बीच मनमुटाव की स्थिति भारत की राजनीति में नहीं हैं। विदेशमें इस प्रकार संघर्ष हुए और वे बहुत बिगड भी गए। भारत की राजनीति में राजा और पुरोहित से अधिक धर्म श्रेष्ठ था। पुरानी परंपरा में धर्मनियम दोनों पर हक जताते थे। प्राचीन समय में मंदिर संघटित संस्था नहीं थी और आज भी नहीं है।

परीक्षा:

मंत्री और उच्च अधिकारियों का परीक्षण कर, वे (१) पवित्र है क्या, २) रिश्तत स्वीकारते हैं क्या ३) उनका चारित्र्य साफ है क्या, ४) उन्हें राजासे भय है क्या, इस बात की कसौटी लगानी होती है। कौटिल्य सुझाव देता है कि, मंत्री का परीक्षण राजा अथवा पटरानी स्वयं न करे। उदा.-गुप्तचरोंको भेजकर 'राजा पापी है। चलो, दुसरे राजा को राजपर बिठा देते है।' ऐसा कहकर राजा मंत्री की परीक्षा न ले। पानी में जहर न मिलाए। राजपरिवारके बाहर की व्यक्ती, उपर्युक्त चार चीजों के बारे में मंत्री का परीक्षण करने हेतु, गुप्तचरों के तौरपर नियुक्त करे।

मंत्र (सुझाव) का अर्थ क्या है?

मंत्र अर्थात् पाँच अंग, जिसमें पाँच तरीकों से चर्चा की जाती है :

१) जिम्मेदारी लिए गए काम की शुरुवात कैसे करे ? २) उसके लिए आवश्यक मानव संसाधन और सामान कहाँसे और कैसे लाया जाए? ३) काम के लिए स्थान कौनसा चुना जाए और किस समय नियोजित काम किए जाए? ४) रुकावटों को रोकने के लिये पहले से ही किस प्रकार प्रबंध किया जाए ५) सफलतापूर्वक काम कैसे पूरा किया जाए ? (१.१५.४२)

तीन-चार मंत्रियों की मंत्री परिषद होनी चाहिए, पहले पंडितों की सोच के अनुसार १२, १६ अथवा २० सदस्य होने चाहिए। कौटिल्य के मनके अनुसार संख्या निश्चित नहीं होनी चाहिए। यह संख्या देश के आकारमानपर और सामर्थ्यपर निर्भर रहेगी। (१.१५-४७.५०) परिषद के काम आगे दिए हैं।

१) जिम्मेदारी लिए गये काम की शुरुवात करना।

२) पहले से शुरू हुआ काम आगे भी चालू रखना।

३) काममें सुधार लाना।

४) हुक्मको वास्तव में लाना। (१.१५.५२) इसका अर्थ यह है कि राजाने जिस हिस्से के काम वास्तव में लाने के बारे में निश्चित किया हो, उन हिस्सों के मुखिया की पंचायत अर्थात् मंत्रिपरिषद जो राजा के साथ वफादार नहीं होते, उनपर ध्यान देना भी मंत्रिपरिषद का काम है। (१-१५-५७) ऐसा माना जाता है कि, बहुत जरूरी काम हो, तो मंत्री और मंत्रिपरिषद् को बुलाकर उनका सुझाव ले। इस पंचायत के बारे में, जो बहुमत हो अथवा हेतु सफल होने के लिए जो संभव हो उस प्रकार राजा व्यवहार करे। (१.१५.५८.५९)

आधुनिक रीति के अनुसार चार अंतस्थ सलाहकार अथवा मंत्री, मंत्रिमंडल नहीं कहलाते। बहुमत के सुझाव का यह अर्थ नहीं है कि आजकी घटनात्मक राजपद प्रणाली का अनुसरण कर राजाने व्यवहार करना चाहिए। राजा प्रजा के लिए पितासमान होता है इस बात को कदापि न भूलें। धर्म उसका मार्गदर्शन करता है। सभी राज्य एक ही परिवार हैं ऐसा माना जाता है। पिता जिस प्रकार परिवार के हित के लिए कार्यरत होते हैं उसप्रकार राजा प्रजा के साथ व्यवहार करे। पर पिता मौजी और गलत रास्ते पे चल पड़े तो परिवार उसकी न सुने। तद्वत राजा विचित्र अथवा अत्याचार करने वाला हो तो प्रजा उसे पदच्युत करें।

पौर और जनपद:

शहर में रहनेवाले पौर और देहातों में रहनेवाले जनपद। सवाल यह है कि, राज्यकार्य में उनका कोई हाथ होता था क्या? मंत्रियों के गुण बताते समय कौटिल्य कहता है, उनका घर देहातों में होना चाहिए। यह सबसे पहली शर्त है। भलेही वह देहात में रहनेवाला हो पर बड़े परिवारसे हो कल्याण प्रद योजनाओं को अमल में लाते समय नगरवासी और देहातवासीयों की तरफ अधिकारी ध्यान दे, सतर्क रहे, राजा हर रोज देड घंटा लोगों से मिले और उनके शिकायतों पर ध्यान दे। कौटिल्य यह अच्छी तरह से जानता था कि शहर और देहाता दोनों में कुछ होशियार और स्पष्टवचनी लोग होते हैं। कुछ सामान्य होते हैं। भले ही सभा, समिती अथवा नागरिकों की सभा इन सबकी योजना कौटिल्य अर्थशास्त्र में न हो फिर भी जनमत के लिए राजा ही जिम्मेदार होने से शहर और गाँवों के वयस्क लोगों की सभा जनता के मन की बात का अंदाजा लगाने के लिए ली जाए।

भले ही राजाकी बेछूट सतापर राज्ययंत्रणा के कारण दबाव हो फिरभी राजाको विशेषरूप में दंडनीती की शिक्षा इसप्रकार होती है कि उसके कारण राजापर अप्रत्यक्ष रूप में काबू रखा जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। वैदिक नियमों के अनुसार जीवन बिताना पुण्यकारक होता है ऐसी सीख उसे दी जाने के कारण उस योजना के अनुसार अपना कर्तव्य करना आत्मोन्नती के लिए कारण होता है यह बात मन में रखते हुए राजाका व्यवहार सुलभ होता है। पुरोहित राजाको हमेशा सतर्क करता रहता है। राजापर अपने मतोंको थोपने का अधिकार पुरोहित को नहीं है। ग्रंथ में बताया है कि, राजा पुरोहित अथवा मंत्रियों की सलाह के अनुसार व्यवहार करे, क्योंकि वे शास्त्र और कलाओं में निपुण होते हैं। लोग उनका सम्मान करते हैं। राजा के बरताव पर नजर रखना, राजा कुछ भीषण कृत्य कर रहा हो या रस्ते से भटक रहा हो तो उसे सही रास्ता दिखाने के काम में उन्हें नियुक्त किया जाए।

वंशपरंपरा से चलती आई राजसत्ता:

राजसत्ता वंशपरंपरासे चले, यह कौटिल्य का मत है। अपात्र पुत्रको राज्य नहीं दिया जा सकता, क्यों की राजा को हमेशा अंतर्गत व बाहरी आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। राजा को पदच्युत करने का प्रयास अधिकारी षड्यंत्र से करते हो अथवा अन्याय से त्रस्त, बगावत करनेवाले प्रजाद्वारा किए गए हो, उसका परिणाम एक राजा के बाद दुसरा राजा अथवा एक वंश के जाने के बाद दुसरा वंश आने में होता है। सत्तांतर यशस्वी होनेपर भी कामकाज वैसे ही चलता रहता है। सार्वभौम सत्ता एकछत्र राज्य में अथवा लोकसत्ताक राज्यों में सदस्य मंडल के अथवा लोगों के हाथ में नहीं देनी चाहिए।

३.४ सामाजिक जीवन :

समाज और सामाजिक जीवन वर्ण और आश्रम पद्धति पर स्थित है। तत्त्व की दृष्टि से यह फायदे मंद है, ऐसा माना गया है। क्यों की इसे वेदोंद्वारा निश्चित किया गया है और समय के चलते वह उपयुक्त और सुविधाजनक साबित हुई है। कौटिल्य के मत के अनुसार सेना में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होने चाहिए। शत्रु यदी ब्राह्मण सेनापती के पैर छुए तो उसे अपनी तरफ खींचने शत्रु सरलता से सफल हो जाते हैं। ब्राह्मणों की सेना के लिए मनाई नहीं है। पर उनका कोमल होना संभव है, और शत्रुओं के दुष्ट साजिशोंसे वे तुरंत कमजोर बन सकते हैं।

शूद्र आर्य ही है। वर्णाश्रम के बाहर रहनेवाले लोग अपने बच्चों को बेच सकते हैं, अथवा गिरवी रख सकते हैं। पर आर्य अपने बच्चोंको नहीं बेच सकते, शूद्र भी नहीं। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्रों को गुलाम नहीं बनाया जा सकता - *नत्वेवार्यस्य दासभावः (२-१३-१४)*

ब्राह्मणों के पास शिक्षा देने का एकाधिकार है। पुरोहित बनने का भी उनका हक है। ये दो व्यापार उनके पास होने से ब्राह्मणों का समाज में अलग ही स्थान है। पर वे अपने अधिकारों का गलत इस्तमाल न करें। जिसप्रकार राजा अपने अधिकारों का अपने मन के मुताबिक उपयोग नहीं कर सकता उसी प्रकार ब्राह्मण भी नहीं कर सकते। ब्राह्मण नीजी मतलब के लिए अपने समाज के स्थान का अर्थार्जन हेतु उपयोग नहीं कर सकता। वैश्य और शूद्र अर्थार्जन कर सकते हैं। ब्राह्मणों में श्रोत्रिय अर्थात् बहुत विद्वान ब्राह्मण इस प्रकारका लाभ उठा सकते हैं उन्हें बक्षिस अथवा दानमें प्राप्त जमिनपर आयकर अथवा दंड नहीं भरना पड़ता । (२१-७)

खेती का उद्यम भले ही शूद्रों का हो कर फुरसत में ब्राह्मण और क्षत्रिय कर सकते हैं।

दुसरोँकी इज्जत उछालना, रिश्तत लेना अथवा अपमानित करना, इस तरह के गुनाहों के लिए वर्ण के अनुसार सजा और जुर्माना चुकाना पड़ता है। ब्राह्मणों को इन्ही गुनाहों के लिए कम सजा मिलती है। अज्ञात बालक को बेचने अथवा गिरवी रखने के लिए ब्राह्मणको अधिक से अधिक दंडित किया जाता है। बेहतरीन शिक्षा के कारण ब्राह्मण बुरे शब्दों का प्रयोग नहीं करेगा दुसरोँका अवमान नहीं करेगा, इस बातको मान लिया जाता है।

'गवाह' खड़े करने के लिए हर वर्णके व्यक्ति के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ब्राह्मण को न्यायाचार्य कहेंगे, 'सच बोलिए।' क्षत्रिय-वैश्य को कहेंगे, "अगर तुम झूठ बोल रहे हो तो यज्ञकर्म अथवा दानकर्म का फल तुम्हें न प्राप्त हो। " शूद्रसे कहेंगे 'अगर तुम झूठ बोल रहे हो तो तुम्हें सच बोलने पर मिलनेवाला बक्षिस राजाको जाएगा और उसका पाप तुम्हारे सरपें आ जाएगा। " शायद यह एक उपचार हो प्रत्येक व्यक्ति की परवरीश पर यह निर्भर रहेगा (३.११.३४-३७) प्रत्येक वर्ण के लोग विभिन्न स्थानोंपर अलग अलग रहते थे।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र सामाजिक संघटनाओं पर कोई भाष्य नहीं करता। प्रत्येक वर्ण की उस समय की स्थिती के बारेमें उसमें लिखा है। आश्चर्य की बात यह है कि, उसमें अछूत के बारे में कोई संदर्भ नहीं है। चांडालों का संदर्भ १.१४-१० में दिया है। चांडालो ने उपयोग किया हुआ कुआ उन्ही के काम आता था। वैदिक साहित्य में केवल त्रिशंकू ही चांडाल था। यह आर्यों से बाहरी समाज का था। एक तरह का अछूत था। आर्य लोगों का संबंध तब विदेशीयों के साथ भी था, पर वे किसी भी वर्ण में समा जाते थे। जो लोग नियमों का पालन नहीं करते थे, उन्हें 'म्लेच्छ' कहा जाता था, उन्हें पराया समझा जाता था ।। ३-१८-७ में एक ऐसा समुदाय जो मानहानी के गुनाह के संबंध में उल्लेखित है कि, वे 'अन्तावसायिन' अर्थात् गाँव के किनारे अथवा शमशान के पास रहते थे। ये लोग चांडाल अथवा पाखंडी के नामसे जाने जाते थे। (२-४-२३) शायद इन्हें ही

आगे अछूत माना गया। बुद्ध सभी स्थानों पर जब फैले थे और मौर्यराजा सत्ताधीश बने उससे पहले की यह बात है। पाखंडियों को शहर में भी शामिल किया जाता था। (३-१६-३२-३३) कौटिल्य के समय में भलेही जन्मको जाति निश्चित की गई हो, पर आगे यह रिवाज अधिक कठोर बन गया।

डी. ए. सुलेकिन कहता है, उसके मत के अनुसार ईसा के ४ थे से ९ वे शतक में जातिव्यवस्था प्रबल बनी। ऐसी इन शहरों में और देहातों में रहने वाली जातियों के अलावा बनमें रहनेवाली आदिवासियों की भी एक जाति थी। उन्हें अटवी अथवा अटविक कहा जाता था। उन्होंने भीषण वन में अपने पैर मजबूती से जमाए थे। उनसे राज्यको खतरा होता है ऐसा माना जाता था। वे संघटित थे और वीर भी थे। वे आझाद थे। लूटमार करना या खूनखराबा करने के बारे में उनमें कोई विधिनिषेध नहीं था। (८-४-४३)

और एक तरह के लोगों को 'बहिरिक' कहा जाता था। वह एक स्थानपर न रहते हुए हमेशा भटकते रहते थे। इन लोगों से देश और समाज को डर था। शहर में प्रवेश करने के लिए उन्हें मनाई थी। अगर वे शहर में प्रवेश करें तो शहर के प्रवेशद्वार से उनसे आयकर लिया जाता था। (२-६-२)

इस शास्त्र में समाजका जिसप्रकार चित्रण किया गया है वह थोड़ा बहुत आधुनिक समाजके चित्र से मिलता जुलता है। हिलब्रांट कहता है, उस प्रकार कौटिल्य जैसा संतुलित विचार करनेवाला लेखक, कायदे कानून की पुस्तकों से और "महाकाव्यसे सहमत है। और वह (वर्णों के कर्तव्य आदि) सभी विषयों के बारे में विरोधपक्ष में कुछ नहीं लिखता इससे भारती के समाजके विभिन्न घटक दर्शानेवाली सीमाएँ कितनी स्पष्ट थी यह सिद्ध होता है।

समाज भलेही वर्णाश्रम व्यवस्थापर खड़ा था फिर भी विभिन्न जनसमुदाय में मूलतः कोई बैर नहीं था। सभी जातियाँ मित्रतासे रहती थी। राज्य और राजपर सभी की निष्ठा थी। राजाके नूतन प्रदेश जितने पर भी नये प्रजा के साथ उसका व्यवहार, परिधान, भाषा आदि सब के कारण वहाँ की प्रजा राजा को पसंद करने लगती थी। (१३.५.७) इतना ही नहीं, राजाद्वारा जिते गए नए प्रदेश के मंत्री भी नये प्रदेश में आया करते थे और उन्हें वह यकीन दिलाता था कि, उनका हित राजा का आद्यकर्तव्य है।

विवाह संस्था :

विवाह हिंदु पारिवारिक संस्था का महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह-संस्थापर लिखे गए पाठ की शुरुवात चाणक्य इस प्रकार करता है: "सभी व्यवहार विवाह से शुरू होते हैं (३-२-१) 'विवाहपूर्वो व्यवहारः।'

जीवन का प्रमुख स्तर गृहस्थाश्रम है और उसका मूल विवाह के बाद घर बसाने वाले मानव को संसार में है। शादी के बाद दुल्हा-दुल्हन नागरीक के तौर पर जिने लगते हैं। शादी के बाद मानव 'गृहस्थ' के नाम से जाना जाता है और घर बनाकर रहने लगता है।

विवाह के प्रकार ऐसे हैं:

१) ब्राह्म-विवाह : आभूषणों द्वारा सजाई गई वधु (पुत्री) उसके मातापिता द्वारा बर को प्रदान की जाती है।

२) प्राजापत्य : वधुवर धर्म का पालन कर सद्गर्तन से रहने की शपथ लेते हैं। | इकट्ठा हुए सभी ज्येष्ठों द्वारा उन्हें आशीर्वाद दिया जाता है।

३) आर्ष : वरसे जानवरों की जोड़ी वधुके माता पिता ग्रहण करते हैं और वरको अपनी कन्या सौंपते हैं।

४) दैव-यज्ञकी बेदी पर यज्ञकर्म करने वाले पुरोहित को कन्या देते हैं।

५) गांधर्व : प्रेमिक साथ आते हैं और विवाह करके पत्नी-पत्नी बनकर रहने की शपथ लेते हैं।

६) असुर : कन्या के मातापिता दहेज लेते हैं और वरको अपनी कन्या प्रदान करते हैं।

७) राक्षस : जबरदस्ती से कुंवारी कन्या को भगाकर ब्याह रचाते हैं।

८) पैशाची: सोई हुई कुंवारी लड़की का अपहरण कर ब्याह रचाते हैं।

पहले चार प्रकारों को पवित्र माना जाता है। उसमें भी दहेज देने की प्रथा है। वह दहेज शादीशुदा औरत के अधिकार में होता है। पहले तीन वर्णों में पाणिग्रहण करने से पूर्व विवाह रोका जा सकता है और शूद्रों में शारीरिक संबंधों से पहले शादी को खारिश किया जा सकता है। पहले चार प्रकारों में अत्याचार होने पर ही वधु-वर अलग हो सकते हैं, पर अगले चार प्रकारों में अगर पती पत्नी के बीच नफ़रत हो तो विवाह विच्छेद किया जा सकता है।

कन्या की उम्र १२ साल और वर की उम्र १६ साल सही मानी जाती थी।

शादी शुदा औरतों के उपजीविका का प्रबंध और उनके हक क्या थे, इस विषय में बहुत छोटे मोटे नियम बताए हैं।

विरासत:

माता पिता के जीवित रहते उनकी संतानका अपने पिताकी संपत्तीपर कोई अधिकार नहीं होता। अगर बँटवारा करने की पिता की चाह हो तो वे वैसा कर सकते हैं। पर ऐसा बँटवारा करते समय किसी एक पुत्र पर जादा मेहरबानी नहीं दिखा सकते। बिना वजह किसी एक पुत्रको कोई भी हिस्सा न देना, ऐसा भी नहीं कर सकते। अगर कोई पुत्रहीन चल बसे तो उसके सगे भाई और बहनों को उस जायदाद में हिस्सा मिलेगा। एक ही स्त्री को विभिन्न पुरुषों द्वारा हुए बच्चों को अपने अपने पिताद्वारा विरासत में जायदाद मिलेगी।

अगर जमीन और पैसा न हो तो बड़ा भाई छोटे भाई की सहायता करे। शादीशुदा भाईके शादी का खर्चा पिताकी संपत्ती से किया जाएगा। बेटी को भी शादी का खर्चा मिल सकता है। बड़े बेटे को अपना कर्तव्य पुरा करने के लिए अलग पैसे मिल सकते हैं।

परिव्राजक :

सदैव संचार करने वाले साधु अथवा संन्यासी एक स्वयंचलित संस्था ही है। सामान्यतः परिवार के सदस्योंका पूरी तरह से प्रबंध किए बिना संन्यास नहीं लेते। कानून की इजाजत के बिना मनुष्य संन्यास नहीं ले सकता। स्त्री को संन्यास लेने के लिए कोई भी प्रेरित नहीं करता। किसी मामुली कारणवश कोई संन्यास न ले ऐसा प्रबंध किया गया है। बुद्ध के कालमें कोई भी यँही संन्यास स्वीकार लेता था। संन्यास के लिए उत्तेजित न करे पर वानप्रस्थाश्रम में संन्यास के लिए अनुमति दे।

ब्राह्मण संन्यासी और संन्यासिनी उस काल में थे ऐसा दिखाई देता है। पर ऐसी घटनाएँ गुरुद्वारा प्राप्त की गई खास दीक्षाविधि के कारण घटती थी। युवाओं के लिए संन्यासी बनना सरल नहीं था। उनके विरक्ति और संयम की परीक्षा ली जाती थी। किसी संस्था के लिए उन से क्या लाभ होगा इस बातका परीक्षण किया जाना था। उदा - आज के समय रामकृष्ण मिशन, अथवा जैन संप्रदाय अथवा दुसरे संप्रदाय है। इस संप्रदाय के लोग पूरा जीवन मठी में रह कर संस्था के लिए काम करनेकी शपथ लेते हैं।

अवैदिक अथवा अन्य निरीश्वरवादीय संप्रदायों के शिष्यों को वृषल अथवा पावंड कहते थे। उन्हें शाक्य भी कहा जाता था। वे बुद्ध के अनुचर थे। 'आजीवक' नामक प्रकार गोशाल मखलीपुत्रने स्थापन किया था। यह महावीर का समकालीन था। वे शहर में अपने हिसाब से रह सकते थे। उन्हें उचित सम्मान दिया जाता था। उनके पास धन कम रहता था। ऐसे लोगों के गुनाह के लिए संस्थासे नुकसान की वसूली की जाती थी। अगर उनके पास धन न हो तो उन्हें व्रत करना पड़ता था अथवा धर्म के अनुसार उचित व्रत करना पड़ता था। इससे उनका पाप धोया जाता था। अगर राजा को धन की आवश्यकता हो तो वह ऐसे संस्थाओं का धन अपनी हिरासत में ले सकता था। (५-२-३७)

वैदिक रीति :

राजा वैदिक रीति का स्वीकार करता था। क्योंकि वह रीति समाज के लिए कल्याणजनक है ऐसा माना जाता था। राजा को वेदशास्त्रों के अनुसार विधि करने पड़ते थे और यज्ञकुंड हमेशा प्रज्वलित रखना पड़ता था, और वैदिक यज्ञ भी संपन्न करने पड़ते थे।

अलग अलग देवताओं के मंदिर हर जगह पर थे। मूर्ती की स्थापना और पूजा की जाती थी। पुजारी षोडशोपचारों द्वारा पूजा करते थे। मंदिरमें मूर्तीपूजा करने के लिए आने वाले लोग मूर्ती के सामने साष्टांग प्रणाम करके पूजा करते हैं, वैसा रिवाज ही है। (९-७-८३) पूजा के समय भगवान की वस्तु, फूल फल आदि अर्पण किए जाते हैं और अगरबत्ती जलाते हैं। बहुत कोटीकी देवताए हैं अर्थात् विभिन्न देवताओंकी विभिन्न प्रतिमाए हैं।

शहर के केंद्रीय स्थानपर अपराजित, अप्रतिहत, जयंत, वैजयंत के लिए प्रार्थनास्थल तथा शिव, वैश्रवण अश्विन, श्री और मदिरा के मंदिर राजा बंधवाए ऐसा माना जाता था। जिस प्रदेश में जो देवता महत्त्वपूर्ण हो वहाँ राजा उसकी स्थापना करे ऐसी उम्मीद की जाती थी। शहर की दहलीज पर ब्राह्मण इंद्र, यम और सेनापती का अधिकार हो। शहर के बाहर स्तंभ से सौ धनुषों का अंतर रखते हुए पवित्र स्थल, फलोंके उद्यान, पानी की सुविधा के स्थान निर्माण करे। प्रत्येक वास्तुकी देवता उन संबद्ध वास्तुओं में स्थापित करे, ऐसा माना जाता था।

पहली चार देवताएं विलक्षण हैं। आज के समय वे दिखाई नहीं देती। विजयदेवता के वे विभिन्न रूप हैं। श्री लक्ष्मी है। मदिरा नशा दिलानेवाली देवता है। वह काली अथवा दुर्गादेवी का रूप है। आज वैश्रवण अर्थात् कुबेर का मंदिर कहीं नजर नहीं आता। ब्रह्मा और इंद्र के देवालय भी नहीं हैं। पुरे भारतवर्ष में ब्रह्मा का केवल एक मंदिर राजस्थान के पुष्कर में है। यम का मंदिर कहीं भी नहीं है। स्कंद (सेनापती) के मंदिर तमिलनाडू में हर जगह दिखाई देते हैं। इस देवता को वहाँ सुब्रह्मण्यम् कहा जाता है। वरुण का भी मंदिर होता है। (१३-२-१६)

वरुण देवता को आजकल मंदिरों में स्थापित नहीं किया जाता। उस समय नागराज के मंदिर प्रचलित थे। अलग अलग प्रदेशों में विभिन्न देवताओं की कल्पना कर उनकी पूजा की जाती थी। (१३-२-१५) शहर में अलग नगरमंदिर होते थे। राजभवन में राजा के लिए मंदिर हुआ करता था, उसके पसंदीदा देवता की वहाँ स्थापना की जाती थी। भगवान के आगे रखी गई चीजे और धन पर मंदिर का अधिकार होता था। बहुत सारा धन प्राप्त होता था। अतः मंदिर को संपत्ती, जानवर, मूर्ती, जमीन, घर, सोना, हिरे और अनाज आदि रूपों में

प्राप्त होती थी। मंदिरका धन चुराना बहुत बड़ा जुर्म माना जाता था। बड़े जुर्म के लिए मौत की सजा भी सुनाई जाती थी।

देवताध्यक्ष :

देवदासी (मंदिर की सेविका) प्रथा उस वक्त थी। "देवताध्यक्ष नामक राज्य का एक अधिकारी होता था। मंदिरकी संस्थाएँ और वहाँ की संपदा का व्यवहार ठीक से चल रहा है या नहीं इस बात का ध्यान रखना उसका काम था। अगर मंदिर का धन राज्य के कामकाज के लिए उपयोग करना हो तो यह अधिकारी उसे प्राप्त करने के लिए हर एक तरकीब आजमाता था। विशेष अवसरपर भोले लोगों की मासूमियत का फायदा उठाकर अधिकारी पैसा वसूल कर लेता था। लोगों की नजरो में गिर चुके अन्याय करने वाले, राजा के विरोध में बगावत करने के लिए मंदिर के पैसों का उपयोग करने की अनुमती थी। (१-१८-९)

देवस्थान संस्कृती के केंद्र स्थानपर थे। देवताओं के महापूजा के दिनपर मेले और जश्न हुआ करते थे। कौटिल्य सुझाव देता है, लोगों के श्रद्धा का उपयोग कर राजा अपना खाली खजाना भर दे। खाली स्थान पर वह किसी देवता को स्थापित करे और मूर्ति वहाँ आश्चर्य से पैदा हुई है, ऐसा डिंदोरा पिटें। उस स्थान पर मेला लगाया जाएगा, अथवा भगवान को पैसा, विभिन्न चीने अर्पण की जाएगी ऐसा कहकर अधिकारी वे सब इकठ्ठा करे और राजा के हित के पक्ष में उसका उपयोग करे। ख्रि.पू.१५३४ में अर्थात् इतने प्राचीन काल में अर्थशास्त्र लिखा गया, इससे यह साबित होता है कि देवालय संस्थाएँ बहुत प्राचीन थी और आजतक वे वैसी की वैसी ही हैं। इससे इस शृंखला के प्रतिपादन का उद्देश्य यह है कि भारतीय संस्कृती बिना रुकावट के वैसी ही हमेशा से चलती आ रही है, यह अपने आप सिद्ध हो जाता है।

दैवीय आपत्ती :

मानव पर आगे बताई गई आँठ तरह की दैवीय विपदाएँ आती हैं, उनसे राजाको प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए - १) आग २) प्रलय ३) बिमारी ४) अकाल ५) चुहे ६) हिंसा करनेवाले जानवर ७) साँप ८) दुष्ट पिशाच (४-३-१)

इन आपत्तियों का सामना करने के लिए कौटिल्यने उपाय बताए हैं।

आगसे बचने के लिए धूप के दिन में जनता खुले में बाहर खाना बनाए। बड़ी आग लगने पर अग्निशमनदल का उपयोग किया जाए। बारिश के मौसम में लोग सावधानी बरखें। नदी से दूर रहें। संकट काल में लकड़ी के फलक, बाँस, नौका आदि तैयार रखें।

कौटिल्य संकटोंसे बचने के लिए बारिकी से सूचनाएँ देता है। फैलाव की बिमारी के लिए बैद्य और दवाई तैयार रखे। दुर्भिक्ष में अनाज इकट्ठा करके रखें। केंद्रभूत स्थान पर यह अनाज रखे।

उसी प्रकार दुसरी फैलाव की बिमारी के लिए दुसरे उपायोंका सुझाव दिया है।

जादूई तंत्र :

दुष्ट शक्तियों के क्रोध के कारण अगर हमपर संकट आए तो उसके विनाश के लिए अथर्ववेद में कुशल और जादुटोना करने में निपुण लोग धर्म से जुड़े हुए कार्य करके उनका विनाश करे। अवसर के दिनों में राजा चैत्य पेड़ोंकी पूजा करने का आदेश दे। ऊँचे आसन, छाता, अन्न, छोटे ध्वज, अज इन सबका अर्पण करे। इसलिए जादुटोना करने में निपुण, पवित्र तपस्वी, दैवीय संकटों का सामना जो कर सके वे शहर में रहे और उन्हें सम्मान दिया जाए। यह स्पष्ट है कि ऐसे उपायोंपर लोग विश्वास करते थे। इस श्रद्धा का उपयोग कौटिल्य ने राजा के हितपक्ष में करवाया था। पाठ १४ में दुष्टों के खिलाफ गूढ़तासे किस प्रकार इलाज खोजे जाते थे और चारों वर्णोंकी रक्षा किसप्रकार की जाती थी, यह बताया है।

स्वयं कौटिल्य इस जादुटोनेपर विश्वास नहीं करते थे, ऐसा दिखाई देता है। लोगोसे वह जोर देकर कहता है कि क्रोध पर नियंत्रण रखे, पराए लोगों का सम्मान करे, बिना बजह उदास न हो, शर्म छोड़ दे, नीचता का त्याग करें, सहानुभूती से व्यवहार करे, पवित्रता प्राप्त करे, उदारतापूर्ण रहे, घमंड, द्वेष न स्वीकारे जो हमारे बसमें हो उसे हीन न समझे, दुष्टता, अविश्वास, डर का स्वीकार न करे। अपने विफलता का कारण हम प्रति हमला नहीं कर सकते, ठंड बरदाश्त नहीं कर सकते, गरमी सह नहीं पाते, बारिश को क्लेशजनक मानते हैं। पवित्र दिनों में रुची, ग्रहों का समुदाय, इन सबसे दूर रहे। जो सदैव ग्रहों की स्थिती जानना चाहता है वह मूर्ख मनुष्य अपना लक्ष्य खो बैठता है। सयाना मनुष्य सोचविचार कर पूछता है, "बुरे ग्रह मेरा क्या बिगाड सकते हैं भला?"

सौ बार यत्न करनेपर भी संपत्ती के बिना मनुष्य अपना ईप्सित नहीं प्राप्त कर सकता। वस्तु को अन्य वस्तुद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। हाथी को खुला छोड़ने के कारण ही वह पिंजरे में कैद हो जाता है। उसी समय वह भविष्य बताने वाले ज्योतिषों की नियुक्ती का सुझाव देता है। भविष्य कथन करनेवालों पर हम सदियों से विश्वास करते आए हैं। आजभी अधिकतर लोग भविष्य कथन करने वालों का सुझाव लेते हैं। मंत्रकी शक्ति के कारण देवताओं के नाम का जप करने से अथवा यज्ञयागोसे मन का लक्ष्य पूरा हो जाता है। ऐसा विश्वास कई सदियों से इन्सान को है।

३.५ सुनियोजित शहर का जीवन :

शहरों की रचना सुंदरता के साथ की जाती है विशेषरूपमें राजधानी की तरफ़ प्राकार बनाया जाता है, रास्ते अच्छी तरह से बंधे हुए और चौड़े हुआ करते थे। बड़े राजमार्गभी होते थे। राजप्रासाद नगर के क्षेत्र के भरी बस्ती से उत्तर की ओर हुआ करता था, उसका मुख पूरब अथवा उत्तर की ओर होना चाहिए। पुरोहित और उपाध्याय का घर, शाला, यज्ञ, पानी की सुविधा का स्थान, मंत्रियों की बस्ती, ईशान्य की तरफ़ हो, पाकशाला, गजखाना, बारुद आदि फौजी सामान की कोठी, आग्नेय दिशा में, उससे आगे इनके व्यापारी, फूल और शरबतों को बनाने वाले रहे और उनसे भी आगे क्षत्रिय रहे ऐसा नियम था।

सामान रखने के लिए गोदाम, जानकारी रखने के लिए लिखित पुस्तिकाएँ, जमाखर्चा लिखने के लिए पुस्तिका, इनके कार्यालय, कारागिरों के घर आग्नेय दिशामें बाँधे जाने चाहिए। जंगल की मिलकत इकट्ठी करने के लिए जगह और शस्त्रगृह नैऋत्य की ओर हो। उनसे आगे अनाज के व्यवसायिक, कारखाने के अधिकारी, सेना के अधिकारी तैयार खाना बेचनेवाले मय और मांस का व्यापार करनेवाले, नाचने वाले दरबार के लोग और शाला दक्षिण की ओर होने चाहिए। गधे और ऊँटों के घुडसास तथा कारखाने नैऋत्य दिशामें बाँधने चाहिए। गाड़ी और रथ रखने के लिए जगह और उसके पास ऊन और कपड़े, बाँस, चमड़ी की वस्तुएँ बनाने वाले, आयुध-शस्त्र सेनानियों के पहनावे, ढाल बनाने वाले, वायव्य दिशामें रहे। बेचने का सामान और दवाई के लिए कमरा वायव्य की ओर, खजाना, जानवर, घोड़े इन सबके लिए ईशान्य दिशामें और उससे आगे शहर की ग्रामदेवता, राजा, धातु का काम करनेवाले, हिरों के कारागीर और ब्राह्मण उत्तर दिशा में रहे।

जहाँ लोगों की बस्ती न हो वहाँ व्यापार करनेवाली संघटनाएँ और विदेशी व्यापारी लोग रहे। (२-४, ८-१५) राजपाठ की हर बात की सूचना बहुत ही बारिकी से सिलसिले के साथ कौटिल्यने बताई है। शहर के राज्यकार्य के कार्यालय में, हर परिवार के रहने का स्थान लिखा होता है। गाँव में कौन नया आया या कौन कहाँ चला गया इस बात को भी कार्यालय में लिखा जाता था। जनता ऐसी जानकारी देती है। रात के समय गाँव के लोगों का गाँव में आना अथवा बाहर जाना अधिकारी के अनुमतीपर निर्भर करता था। शहर में सभी रास्ते चौड़े होते थे। घर इस प्रकार बाँधे जाते थे, कि दुसरे रहनेवालों की जमिनपर अतिक्रमण न हो अथवा किसी को कोई हानी न पहुँचे। घर की तरफ बांध बनाया जाता था, पानी का निकास होना चाहिए और कूड़े का सुयोग्य इंतजाम करना चाहिए ऐसी बलजोरी थी। और भी बहुत सी चीजे बारिकी से बताई है। कँटने की और पिसने की सुविधा थी। जानवर और गाड़ियों के लिए बंद जगह थी। बारिश के पानी का निकास होने के लिए नाली थी। पड़ौस के घरों को जोड़ने वाली गलियाँ, दिवार में बसी खिडकियाँ इन सबकी रचना किसप्रकार हो इस बात की भी जानकारी दी है। (३-८, ८-२३) किराएदारों को सालभर के किराए से घर दिये जाते थे।

बहुत बड़ी इमारतें हुआ करती थी जिसमें बहुत परिवार रहते थे। ऐसे घरों को आँगन, कूटने पिसने की चक्की, शौचालय और स्नानगृह समान मात्रा में होते थे।

शहर का यह आकृतिबंध भारतका ३५०० वर्ष पूर्वका है। यह रचना आगे बिना रुकावट चलती आ रही है। वह बहुत सदियों से न कि हजारों वर्ष पूर्व से चलती आई है। सरस्वती-सिंधु संस्कृति में शहर की सुबद्ध रचना नजर आती है। यह संस्कृति कौटिल्य से कमसे कम ३००० वर्ष पूर्व की है।

मांस बेचना:

गोहत्या के लिए मनाई थी। व्यापारियों को बिना हड्डी का मांस बेचना पड़ता था। अभी अभी मारे हुए जानवर का वह होना जरूरी था।

अभ्यारण्य के पंछी, हिरन, पशु अथवा मछली को मारा नहीं जा सकता था। हाथी के समान मछलियों अथवा घोड़े के समान अथवा मानव के समान बैलोंके जैसी अथवा राधे जैसे दिखने वाली, समंदर की मछलियाँ, तालाब, नदी, टंकी अथवा नहरों में रहने वाली मछलियों की रक्षा की जाती थी। राजहंस के समान पंछी, गुलाबी रंग के बत्ताख, आल्हाददायी भृंगराज, चकोर, कोकिला, मोर, तोते, मदनसारिका जैसे पंछियों का क्रीडा के लिए उपयोग किया जाता है और उन्हें शुभ भी मानते हैं, ये जानवर और दूसरे पंछी अथवा मृगौकी रक्षा की जाती थी और पीडा से, खतरे से उन्हें बचाया जाता था। इन छोटी मोटी जानकारीयों से यह ज्ञात होता है कि, मांस बेचने पर नियंत्रण था, जिस जानवर को मारने की कानून अनुमती दे, केवल उसेही मारा जाता था।

मदिरा का व्यापार:

सामान्यतः मदिरापर मनाई थी। तथापि सुनियंत्रित रूपमें मद्य का व्यापार होता था। कुछ लोगों को नियोजित स्थानों पर मदिरा छानने की और बेचने की अनुमती थी। जिस छोटे से गाँवमें मद्य छाना और बेचा जाता था वहाँसे बाहर ले जाकर बेचने के लिए मना किया जाता था। नशा दिलानेवाले मद्यपान, मेडक, प्रसन्न, आसव, अरिष्ट मधु जैसी पीने की चीजों के लिए बारिकी से नियम बनाए गए थे।

अवसरों पर अथवा त्योहारों के दिन पर, सफेद मदिरा बनाने के लिए गृहस्थाश्रम के लोगोंको अनुमती थी। मेल-मिलाप, जश्न, मेला के अवसरों पर मद्य बनाने के लिए और बेचने के लिए चार दिन पूरी छूट थी। (२-२५, १६-३६)

शराब पीने के लिए पान-गृह बाँधे जाते थे। उस इमारत को बहुत द्वार होते थे। वहाँ आसन और बिस्तर होते थे। मदिरा प्राशन करने के स्थानपर सुगंधित द्रव्य, फूल, पानी रखकर उस जगह को हर मौसम में प्रसन्न रखा जाता था। (२-२५-११)

ऐसे स्थानपर नियुक्त गुप्तचर हमेशा और विशेष अवसरों पर ग्राहकों के खर्चेपर ध्यान रखते थे। तथापि आभूषण, कपड़े, पिनेवाले और सोये हुए ग्राहकों की भी वे जानकारी रखते थे। अगर इसमें कुछ गड़बड़ हो तो मद्य बेचने वालों को उस ग्राहक का धन चुकाना पड़ता था और उतनाही जुर्माना भी भरना पड़ता था। व्यापारी दिखने में सुंदर गुलाम स्त्रियों को इस कामपर रखता था, वे नशा चढ़े हुए विदेशीय अथवा देश के ग्राहकों की उस स्थानपर आने की बजह खोजती थी। उपर से आर्य दिखनेवाले लोग असल में कौन है, यह बात वे एकांतस्थानपर सोये और बेहोशी के हालात में पड़े हुए ग्राहकों से इन स्त्रियों को ज्ञात होती थी।

कपड़ा :

हर तरह का ऊन और खदर के कपड़े बुने जाते थे। उनके रंग भी तरह तरह के हुआ करते थे। नेपाल से ऊन का कपड़ा और चीन से रेशम का कपड़ा आता था ऐसा संदर्भ मिलता है। भारत के विभिन्न प्रांतों से आनेवाले कपड़ों की विशेषताएँ लिखी हैं। रेशम देने वाले किडोके पसंद के नागपेड़, लिकुच, बकुल, बरगद आदि पेड़ होते हैं।

जड़जवाहर :

हिरे, रुबी और सोने-चाँदी के गहनों की जानकारी मोती, हिरा, कबी और दुसरे अनमोल रत्नों के वर्णन में दी गई है। (२-१३, २-१४) इत्र और फूलों की मालाओं का भी संदर्भ मिलता है। चंदन और धृतकुमारी जैसे सुगंधित लकड़ी से बहुतसी वस्तुएँ बनाई जाती थी। (२-११, ४३-७२) स्नान के बाद खुशबुदार उटन और द्रव्य शरीर पर लगाते थे। (१-२१, १३-१४)

मनोरंजन :

स्त्री और पुरुषों द्वारा विभिन्न मनोरंजन के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। दोनों मिलकर कुछ प्रयोग करें ऐसी प्रथा नहीं थी। ये प्रयोग मंचपर किए जाते थे। कलाकारों का यह उद्यम था और उसीपर उनकी रोजी रोटी चलती थी। नट, नाचने वाले, गानेवाले, वाद्य बजानेवाले, कथाकथन करनेवाले भाट, हर तरह की कला के कलाकार, रस्सीपर नाचनेवाले, अलग तरह का अभिनय करने वाले, क्रीडाके व्यवस्थापक, विदूषक, अपने मनोरंजन के प्रयोग करते थे। घुमनेवाली नारीयाँ, चारण और स्त्रीव्यवहार करने वाले अनेक कलाकार थे। (२-२७-२५)

जब प्रयोग चलता था तब घरके सबकी तरफसे प्रयोग करनेवालों को पैसे देने पड़ते थे। सब मनोरंजन का यह कार्यक्रम देख पाते थे। जो पैसे नहीं देते वे यह प्रयोग देख नहीं सकते थे। (३-१० -३७-३८) देहातों में मनोरंजन के लिए कोई खास जगह नहीं थी। लोगों की खेती में अथवा दूसरे काम की जगह पर वह रुकावट बन जाती थी। (२-१-३३-३४) त्योहार अथवा जश्न के दिन प्रयोग करने के लिए अल्पकालीन रंगमंच खड़ा किया जाता था।

और एक तरह के कलाकार का संदर्भ है जिसका नाम है कौशिक। वाघ्या-मुरली नामक एक भगतों की जोड़ी होती है। मुरली के अथवा नाचने वाले स्त्री के सरपर देवी का (नकली) चेहरा लगाया जाता है, वे घूमते फिरते रहते हैं और गाँववालों का ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं। वे नाचते हुए हर तरहसे प्रेक्षकों का मनोरंजन करते हैं। उनकी धन माँगने की (प्रयोग पूरा होने के बाद) रीति कुछ इस प्रकार थी कि आप बिना थके अपनी खुशी से उन्हें पैसा अनाज, कपड़ा आदि दे। अदिती, कौशिक, वासुदेव आदि नामों से भी वे आते हैं। वासुदेव मोर के पंखोंद्वारा अपना सर सजाते थे। किसी सरदार की तरह वे परिधान करते थे। वे रास्ते में गाते और नाचते थे। और हाथमें घंटी बजाते थे। जब मैं छोटा बालक था तब देहात में मैंने वासुदेव की मूर्ती ईसा के १९३० में देखी है।

आश्चर्य की बात यह है कि, जिस तरह की समान की स्थिती उपर चित्रित की है आजभी हमारे हिंदु समाजकी स्थिती वैसी ही है। राज्य में इस प्रकार नाचने वाले लोगों का उपयोग गुप्तचर के तौरपर किया जाता था। आजके गुप्तचरों का तरिका कौटिल्य द्वारा वर्णित गुप्तचरों से अलग है। गुप्तचरों के बारे में विशेष प्रकरण आगे आएगा जिसमें हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

गुप्तचर :

राजव्यवस्था में गुप्तचर संस्था एक शस्त्र ही है, यह कहना उचित होगा। कौटिल्य के अनुसार इस संस्थाकी दो शाखाएँ होनी चाहिए: १) संस्था नामक प्रमुख शाखा २) संचार - एक स्थान से दूसरे स्थानपर काम के हिसाब से जो घूमते रहते हैं ऐसे लोगोंकी शाखा। जिनकी सेवा जहाँपर जरूरी है, वहाँ उन्हें जाना पड़ता है।

संस्था:

एक जगह पर स्थित संस्था। इस गुप्तचर संस्थाकी पाँच उपशाखाएँ हैं।

१. कापटिक: बहुत ही चालाक और होशियार चेला अथवा सहाय्यकर्ता! इस कामपर काबू रखने वाले मंत्री उसे आदेश देते हैं: “मुझे और राजा को अपना उच्चतर समझो और किसी मनुष्यद्वारा किया गया दुष्कर्म और उसका बरताव संदेहजनक हो ऐसा नजर आने पर, तुरंत हमें खबर करो।”

२. उदास्थितः धर्मभ्रष्ट साधु। जिस साधुने अपनी भ्रमणक्रिया का त्याग कर दिया हो और जो होशियार, इमानदार है उसे धर्मभ्रष्ट साधु कहा जाता है। उसके पास बहुत धन होता है और उसके आधीन काम करनेवाले बहुत लोग होते हैं। जिस स्थानपर उसे नियुक्त किया जाता है, वहाँ उस कार्य को उसे संपन्न करना होता है, साधुके भेस में गुप्तचरों के बीच महत्वपूर्ण स्थान पर रहकर वह कार्यभार संभालता है।

३. गृहपतिकः होशियार और इमानदार आदमी, उसके नियुक्त स्थानपर खेती करने में मग्न है ऐसा नाटक कर गुप्तचरों की हरकतों पर नजर रखता है।

४. व्यापारीः वैदेहक, जिसके पास होशियारी और इमानदारी हो, पैसाभी बहुत है, अपने आधीन काम करनेवाले गुप्तचरों द्वारा काम करवाता है।

५. तापसः इसी प्रकार की सुविधा प्राप्त करने वाला साधु यह एक होशियार इन्सान होता है। यह सज्जन किसी को भी धनदौलत प्राप्त करवा देता है। गूढ़ नोकर और दलालोंको अपने कर्मद्वारा इनका भविष्य सच साबित करना होता है। राजा से पैसा और मान प्राप्त होने के कारण ये सारे लोग राजाके सेवकों की काबिलीयत परखते हैं। (१-११-२)

संचार (घुमनेवाले) :

संचार के चार प्रकार होते हैं :

१) सत्रिनः अत्याधिक उच्च श्रेणी का गुप्तचर, यह उपर देखते हुए अनाथ, प्रतीत होता है पर इसे सरकार द्वारा खास शिक्षा मिलती है।

२) तीक्ष्णः बहुत धैर्यवान अथवा वीर, देशके शत्रुका गूढ़ता से खात्मा करने के लिए काम आता है।

३) रसद : जहर देनेवाले ये दोनो उपांशुदंड अर्थात् 'गूढ़ता से दिया गया दंड' अथवा 'तुष्णिदंड' अर्थात् शांती से दंडित करते हैं।

४) भिक्षुकी अथवा परिव्रजिकाः ब्राह्मण स्त्री संत, वह बड़े अधिकारी के परिवारमे रहकर गुप्तचर का काम करती है। उसे राजघराने में मिलने वाले सम्मान के कारण वह घर में सरलता से घूम-फिर सकती है। पाखंडी स्त्री संत भी इसी प्रकार नियुक्त की जा सकती है। (१-१२-१-५)

राजाके बड़े पदाधिकारियों पर नजर रखने के लिए उपर्युक्त समूह होते हैं। उनका देश, भेस, उद्यम, भाषा, जन्म, उनकी इमानदारी और योग्यता के अनुसार नीचे दिए गए लोगों के लिए गुप्तचर का काम करने हेतु उचित भेस बदलकर राजा उन्हें कामपर भेजते थे। "युवराज, मंत्री, पुरोहित, राजभवन का मुख्य चोबगार, राजभवन का प्रमुख रखवाला, संचालक, कार्यवाह, भांडार प्रमुख, फौजी न्यायाचार्य, शहर के न्यायाधीश,

कारखाने के मुखिया अधिकारी, सलाहकार मंडल के मुखिया, किलेदार, देशकी सरहद के सेना के अधिकारी, वन-अधिकारी, इन सब बारिकी से दिए गए सिलसिलों के साथ गुप्तचरों के खाते का मंत्री हो तो गुप्तचर किस प्रकार नियुक्त किए जाए और उनसे किस प्रकार काम करवाया जाए इस बारे में जानकारी दी है। प्राचीन काल के कलाकारों को भी अगर वे होशियार और इमानदार हो तो गुप्तचर के तौर पर नियुक्त किया जाता है। वारांगना विशेषरूप में अधिकारियों पर और विदेश के राजपुत्रों पर नजर रखने के लिए और विदेश में गुप्तचर का काम करने के लिए नियुक्त करते हैं।

और एक प्रकार के अत्यंत बुद्धिमान और बहुत इमानदार सुप्तचरों का समूह है। उसे उभयवेतन (दोनों का नोकर) कहते हैं। एक देश का यह गुप्त चर कान के लिए दुसरे देश में नियुक्त किया जाता है। उस देश के राजा का विश्वास प्राप्त कर वह ऊँची नौकरी पा लेता है। वह उस जगह महत्वपूर्ण वार्ता खोजता है और अपने देश को सूचित करता है। वह अपने देश को धोका न दे इस बातकी तसल्ली के लिए उसके परिवार को मूल देशमे रखा जाता है। (१-१२-१७-१९)

देश के हित के लिए हानिकारक लोगों का खात्मा करने के लिए कौटिल्य अशिष्ट मार्गका अनुसरण करने के लिए बिल्कुल भी नहीं कतराता। वह ऐसा भी आदेश देता है कि ऐसे उपायों को हमेशा उपयोग नहीं करना चाहिए, बल्कि देशद्रोह अथवा राजद्रोहक गुनाह के लिए अथवा पापाचरण करने वाले लोगों के खिलाफ ही इनका अंमल करना चाहिए, अन्य किसी के विरोध में नहीं। वह राजा से स्पष्ट कहता है कि, बागमे से पक्व फल ही ले, अपक्व नहीं। अपक्व फल तोड़ने पर उसके परिणाम भुगतने पड़ेंगे। लोक उसके खिलाफ आक्रमण करेंगे और जिससे सर्वनाश होगा। (५-२-६९)

३.६ कौटिल्य और मॅकिअँव्हेली के बीच विचारों की समानता थी क्या? :

कौटिल्य की तुलना बहुत बार इटॅलियन विचारतज्ज्ञ मॅकिअँव्हेली के साथ की जाती है। 'Prince' नामक ग्रंथ उसने लिखा था। अर्थशास्त्र का ज्ञान होने से पहले सी. फॅर्मिची नामक अन्य राज्यशास्त्र के अभ्यासकने 'नीतिसार' के लेखक कामंदक की तुलना मॅकिअँव्हेली और हबिस के साथ की है। कांगणे नी ने बी.के. सरकार का अगला अनुच्छेद दिया है: “मॅकिअँव्हेली के द्वारा कहे गए सभी असंबंधित सिलसिले दूर करनेपर उसमें आनेवाली महत्वपूर्ण बातें आगे दिए हुए दो वचनों द्वारा कह सकते हैं: १) शत्रु या तो प्रत्यक्ष सामने खड़ा हो अथवा आगे जा रहा हो, बहुत बड़ी किमत चुकाकर उसका खात्मा करना ही चाहिए

२) किसी समूह, पक्ष अथवा देशका सेवक बनकर जाने वाला व्यवहार एक व्यक्ति किसी भूमिका में दुसरे व्यक्ति से जो व्यवहार करें, उससे साफ़ अलग होनी चाहिए।

तथापि कौटिल्यको जब भारतका मॅकिअँव्हेली कहा जाता है तब उसे उतनाही विधिनिषेधशून्य अथवा वक्रबुद्धिका माना जाता है। कौटिल्य के बारेमे आजतक जो जानकारी मिलती है उससे कौटिल्य अपने आपमें बहुत इमानदार था और राजा के साथ भी इमान रखता था। स्वार्थ से उसका दूर दूर तक कोई संबंध नहीं है। वह अध्यापक था और अपने शिष्य चंद्रगुप्त को राजपर बिठाने के बाद प्रधानमंत्री पदसे तुरंत आझाद होने के बाद वह फिरसे अध्यापक बना। राजा को भी उसने स्पष्ट किया कि, राजा केवल तीन घंटे ही निद्रा ले और जिस तरहसे पिता पुत्र के लिए करता है उस प्रकार प्रजाका हित करे। राजा लालची अथवा लोभी न हो। प्रजा की निष्ठा जीतने के लिए वह वक्र मार्ग का स्वीकार न करे। ऐसा मनुष्य जब उपरी अशिष्ट प्रतीत होने वाला मार्ग राष्ट्रहित के लिए स्वीकारता है, तब वह काम ही राज्यपुर आए राजकीय संकटों को दूर करने का, अर्थात् राष्ट्रहित प्राप्त करने का जलद और निश्चित उपाय है, ऐसी उसका मानना होता है।

महाभारत में पांडवों के अध्यापक और बादमें शत्रुओं के सेनापती बने गुरु द्रोण को मारने के लिए असत्यको स्वीकारने का सुझाव श्रीकृष्ण पांडवों को देता है। पांडवों का सेनापती धृष्टद्युम्न द्रोण के पास जब आता है तब निःशस्त्र द्रोण 'अश्वत्थामा मारा गया।' यह बात सच है क्या, इस बातपर सोचविचार कर रहे थे। श्रीकृष्ण जानता था कि, गुरुद्रोण पांडवों पर भारी थे और पांडवों की सेना का पुरी तरह से खात्मा कर देते। पांडव हस्तिनापूरपर अपने न्यायोचित हक के लिए लड़ रहे थे। कौरवांका नेता दुर्योधनने पांडवों के राज्यपर गैरकानूनी तरिके से कब्जा किया था। ऐसी स्थितीमें श्रीकृष्णने धर्मराजको झूठ बोलने के लिए कहा। पांडवों के विजय मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट दूर हो इसलिए पांडवों के सेनापती धृष्टद्युम्न को कृष्णने गुरु द्रोणको मारने के लिए भेज दिया। राजा के परिश्रम और बिना वजह का खर्चा बचाने के लिए कौटिल्य यही करता है और देशके शत्रुओं को समाप्त करने के लिए उपर से अनुचित दिखने वाली चीजे करनेका सुझाव देता है। सत्ता और संपत्ती प्राप्त करने के लिए जो अनुचित दावपेंचों का प्रयोग करते है उनका खात्मा करने के लिए वैसे ही दावपेंचों से खेलना गलत नहीं है, यही इस स्थानपर हमें दिखाई देता है।

मॅकिअँव्हेली कौटिल्यसे अलग नहीं है। उसके तजुर्बेसे उसे ज्ञात हुआ कि, राज्यशास्त्र कोई नीतीशास्त्र पर आधारित प्रबंध नहीं है। इसलिए दोनो शास्त्रों के बीच का फर्क समझना चाहिए। बी. रसेल कहता है मॅकिअँव्हेली के नजरिये से देशकी स्वतंत्रता, सुरक्षितता और सुरचित राज्यघटना ही उत्तम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए हमेशा नजर के सामने रखनी चाहिए। मॅकिअँव्हेली का यह मानना है कि, सच्चे धर्मानुचरण करनेवाले लोग और साहित्यिक अपने अपने क्षेत्र में महान होते है। परंतु राजनीती में 'साधनानाम् अनेकता', उद्देश्य पुरा करने के लिए गलत रास्ता अपनाना, इस सिद्धान्त को वह स्वीकारता है। उपर देखते हुए उसकी उपाययोजना अनैतिक और अशिष्ट प्रतीत होती है। पर देशहित के लिए उसीका अनुसरण करना पड़ता है। व्यक्तिका आपस में व्यवहार नीती का अनुसरण करते हुए होना चाहिए। राजनीति का व्यक्तिभी स्वयं को राष्ट्र

मानकर प्रतिद्वंद्वियों को खत्म करने का प्रयास न करें। जब देश के विस्तृत हित के लिए तत्त्वहीन उपायों की योजना करनी पड़ती है, तब वह भी समर्थन करने योग्य बन जाता है। कौटिल्य और मॅकिअँद्वेली दोनों भी अंतिम निर्णय की तरफ बढ़ते हैं कि, देशके शत्रुओंका खात्मा करने के लिए माने बुरे किसी भी उपाय का उपयोग करे। तथापि राजनीति में शत्रुओं पर आजकल के नेता जिस प्रकार खुनभरे हमले करते हैं, इन सबका समर्थन नहीं किया जा सकता। ऐसी योजना घृणाजनक है। और बहुत कड़े शब्दों में उसका अस्वीकार करना चाहिए। यह बात साफ है कि, यूरोप में मॅकिअँद्वेली के खिलाफ युद्ध करने वाले जेझुइट लोग ही थे। उन्होंने उसके छायाचित्र जलाए और उसका 'Prince' नामक ग्रंथ बहिष्कृत पुस्तकोंकी सूची में डाल दिया। जीझस खाइस्ट शांति सम्राट के नाम पर जेझुइट लोगों ने अमानवीय अत्याचार किए। मानवता के शत्रु यह शपथ लेते हैं कि, जीझस खाइस्ट का संदेसा हम पुरी दुनियाओं फैलाएंगे उस शपथको पढ़ना भीषण क्लेशजनक है। प्रचार करने वाले मासुम लोगों को बिना किसी दोष के मार देते हैं और उनपर अत्याचार करते हैं। इस शपथ का जनक सेंट झेवियर, ही विश्वास करना कठीन हो ऐसे अत्याचार धर्म के नामपर करवाने के लिए, पूँछताछ के न्यायालय नामक दुष्ट संस्था खड़ी करने के लिए बजह था। मॅकिअँद्वेली को बुरा ठहरानेवाले ये ख्रिश्चन प्रचारक मानवजाति के इतिहास में सबसे बनावटी और हैवानीयत से भरे हुए थे। मॅकिअँद्वेली का वचन ऐसा था, “युद्ध बहुत जरूरी चीज़ है और जब अन्य सभी साधनो द्वारा देशहित की आशाएँ खत्म हो जाती है तब शस्त्रास्त्रोंको धार्मिक पवित्रता प्राप्त होती है।” कौटिल्य इस वचन के लिए जरूर सहमती दिखाता पर कौटिल्य के सामने कोई भी विदेशीय सत्ता नहीं थी। क्यों की चंद्रगुप्त मौर्यको सरहद पर किसी पराए के साथ नहीं लड़ना था। ग्रीक देश के राजा अलेक्झांडर के साथ साम्राज्य संस्थापक गुप्त घराने के चंद्रगुप्त को लड़ना पड़ा, चंद्रगुप्त मौर्य को नहीं। अलेक्झांडर गुप्त घराने के चंद्रगुप्त का काल एकसमान था। कौटिल्य की शिक्षा लगभग निश्चितरूपमें प्राचीन अध्यापकों द्वारा पुरी हुई नजर आती है। उन्हें विदेशी शत्रुओं के हमले की कोई आहट थी अथवा चिंता थी, ऐसा नहीं नजर आता। पर्शियन अथवा ग्रीक लोग भारत पर हमला करेंगे ऐसा कोई डर नहीं था। अथवा विदेशीयों के हमले की पलटाने की चाहत बहुत कम नजर आती है। मॅकिअँद्वेली के सामने तत्कालीन इटली की बिगड़ी हुई स्थिती थी, पर कौटिल्य के विचारों में अथवा कार्य में ऐतिहासिक अवसरों की कोई चिंता नहीं प्रकट होती।

इस स्थानपर ख्रिश्चन प्राच्यविद्यविशारदों ने कौटिल्य के बारे में की हुई टीका के बारे में चर्चा करते हैं। ए.बी. कीथ के भाष्य के अनुसार: “जो हमें कौटिल्य का अर्थशास्त्र भारत के राजनीति पर खिला हुआ सुंदर फूल है ऐसी प्रशंसा करने के लिए कहते हैं, वह बिलकुल गलत देशभक्ती है। अगर प्लेटो के लिखे 'रिपब्लिक' अथवा ऑरिस्टॉटल के लिखे 'पॉलिटिक्स' इन ग्रंथों के सामने रखने के लिए कौटिल्य अर्थशास्त्र सर्वोत्तम ग्रंथ है ऐसा बताया जाने पर भी वह अत्यंत खेदजनक बात है।”

यह टीका बेबुनियाद है। प्लेटो आदर्श राज्य कैसा हो इस खोज में लगा हुआ है। कौटिल्यको भारत राज्यके शत्रुको वहाँ से किस प्रकार भगाया जाए, इस बात की चिंता थी। प्लेटोका 'रिपब्लिक' किसी आदर्शवादीका आदर्श राजनैतिक सिद्धान्त प्रणाली बनाने का प्रयास है, तो कौटिल्य का यत्न यह है कि, अपने राजा के लिए उत्तम कामकाजका एक शस्त्र बनाया जाए, अर्थात् अपने सुप्रशिक्षित और सदाचारी अपत्यों के लिए प्रजा के लिए वह आदर्श पिता साबित हो सके। तेढ़ी चाल से चलने वाले लोगों को भी सही रास्ते पर लाने का काम कौटिल्य करना चाहता था। कौटिल्य की ऑरिस्टॉटल के साथ तुलना करने की कोई जरूरत नहीं है। कौटिल्य आदर्श एवं कल्याणजनक राज्य की स्थापना करने के लिए तैयार था।

सभी वर्णों का सहीसे खयाल रखना चाहिए। इस राज्य में कोई किसी का गुलाम नहीं होता। जो वर्णाश्रम प्रणाली में शामिल नहीं थे, उन्हें भी अपने रीतिरिवाज, परंपरा, कानून का पालन करने की छूट थी। इससे विपरित ऑरिस्टॉटल ने राज्य के कुछ खास समूह के लोगों के लिए गुलामगिरी जारी रखने का समर्थन किया। बारकर के कहने के अनुसार, अथेन्समें नागरिकों की संख्या ५०,००० थी, गुलामों की संख्या एक लाख थी। उनमेंसे अधिकतर सभी सरकारी गुलाम थे और उनके मेहनतपर ही राज्यकी पूरी आर्थिक स्थिती निर्भर करती थी। नागरिक सार्वभौम सत्ता जताने में हिस्सा होते थे और सदाचार से जिंदगी बिताते थे, इसका कारण उनके गुलाम सारे मेहनत के काम करते थे और इसलिए प्रजा के पास बहुत समय बचता था। ऑरिस्टॉटलका गुलामगिरीका समर्थन भले ही ग्रीक देश - काल - स्थिती के हिसाब से उचित हो, फिर भी गुलामगिरीकी तरफदारी करना ऑरिस्टॉटल को हरगिज शोभा नहीं देता।

| END |

Reference Books List – Masters in Kautilya Politics and Economics

1. Socio Economic Dynamics of Indian Society -A Historical Overview, Vivek Group pub, Dr A.P. Jamkhedkar
2. BHISHMA Vol 1 : Beginnings
3. BHISHMA Vol 4 : Glorious Epoch
4. Vedanta and Management - Dave, Nalini, Deep and Deep Publicatins P Ltd., Delhi
5. The Geeta and the Art of Successful Management - Chakravarty, Ajanta E., Rupa & Co., Delhi
6. Business Management the Gita Way, Someswarananda, Swami, Jaico Publishing House, Mumbai
7. Better Management and Effective Leadership - Misra, Narayanji, Pustak Mahal, New Delhi
8. Indian Management and Leadership - Bodhananda Swami, Bluejay Books, New Delhi
9. History of the Dharmaśāstras Vol. 1, Kane P.V.
10. Bhattathiri, 2001. M.P., Bhagavad Gita and Management. [online] Available at: https://www.academia.edu/7393589/Bhagavad_Gita_and_Management

11. Gupta, Aruna Das, 2005. Corporate Social Responsibility in India: Promoting Human Development towards a Sacro-Civic Society. Social Responsibility Journal, Vol. 1, No. ¾. [online] Available at: <https://www.emerald.com/insight/content/doi/10.1108/eb045812/full/html>
12. Sagar, Prema and Singla, Ashwani, 2004. Trust and Corporate Social Responsibility: Lessons from India. Journal of Communication Management, Vol.-8, No.-3. [online] Available at: <https://www.emerald.com/insight/content/doi/10.1108/13632540410807691/full/html>
13. Ubha, Dharminder Singh, 2007. Corporate Governance: Solutions through Indian Spiritual System. In: Walia, G. S. and Ubha, Dharminder Singh, (ed). Corporate Governance in India Emerging Paradigms. Fatehgarh Sahib: Mata Gujri College, pp.-216-226.
14. Tripathi, Shiv K., 2007. Managing Business as a Spiritual Practice: The Bhagwadgita way to Achieve Excellence through Perfection in Action. In: Sengupta, Sunita Singh and Fields, Dail (ed). Integrating Spirituality and Organisational Leadership. New Delhi: Macmillian India Ltd, pp. 221-231.
15. Muniapan, Balakrishnan, 2007. Transformational leadership style demonstrated by Sri Rama in Valmiki Ramayana. International Journal Indian Culture and Business Management, vol.1, Nos.1/2. [online] Available at: www.inderscience.com/filter.php?aid=14473
16. Reddy, Sudhakar, 2009. Business Principles from the Bhagavad Gita. In: Kalkundrikar, A. B., Hiremath, S. G and Mutkekar, R. R., (ed). Business Ethics and Corporate Social Responsibility. New Delhi: Macmillian India Ltd, pp. 242-251.

17. Ancient Indian Political Thought -MA Poli. Science: Tripura University p72-92 Indian Political thought K S Padhy 1 -32
18. Patrick Olivelle, Manu's Code of Law: A Critical Edition and Translation of the Mānava-Dharmaśāstra (New York: Oxford UP, 2005), 64.
19. Chanakya in daily life : Radhakrishnan Pillai Who was Chanakya
20. Antiquity and continuity of Vedic Culture : H.S. Sangh ppt for History and chronology
21. Invasion that never was : Michel Danino
22. Ancient Indian Political Thought -MA Poli. Science: Tripura University p93-157
23. Indian Political thought K S Padhy P 33-64
24. The Foundations of Indian Culture by Sri Aurobindo : essays on Indian Polity : The Third way by Dattopantthengadi : dharma rules chapters
25. Indian Political Thought: Dharamshastra
<https://www.civilserviceindia.com/subject/Political-Science/notes/indian-political-thought-dharamshastra.html>
26. Patrick Olivelle, Manu's Code of Law: A Critical Edition and Translation of the Mānava-Dharmaśāstra (New York: Oxford UP, 2005), 64.
27. Jha, Ganganath (trans.), Manusmṛti with the Manubhāṣyā of Medhātithi, including additional notes, 1920.
28. Bühler, Georg (trans.), The Laws of Manu, SBE Vol. 25, 1886.

29. Bühler, Georg (trans.), The Sacred Laws of the Āryas, SBE Vol. 2, 1879
[Part 1: Āpastamba and Gautama]
30. Bühler, Georg (trans.), The Sacred Laws of the Āryas, SBE Vol. 14, 1882
[Part 2: Vāsiṣṭha and Baudhāyana]
31. How Kautilya shaped the history of Ancient India : Swarajmag
32. The Big Aryan Invasion debate – First post
33. Kautilya person, uniqueness, one only : significance, KautilyaArthashastra
: Hindi : Prof Prannath Vidyalankar, Pub. Motilal Banarasidas
34. Chakraborty, S.K., 1995. Ethics in Management: Vedantic Perspectives.
USA: Oxford University Press.
35. Journal Article - Vedic ideals and Indian Political Thought - K.
SreeranjaniSubba Rao, The Indian Journal of Political Science, Vol. 68,
No. 1 (JAN. - MAR., 2007), pp. 105-114 (10 pages), Published By: Indian
Political Science Association
36. Reclaiming the Mahabharata for India's 21st Century manifestation:
GAUTAM CHIKERMANE <https://www.orfonline.org/expert-speak/reclaiming-the-mahabharata-for-indias-21st-century-manifestation-49225/>
37. Indian Antecedents to Modern Economic Thought Satish Y. Deodhar W. P.
No. 2018-01-02 January 2018
<https://web.iima.ac.in/assets/snippets/workingpaperpdf/3431835162018-01-02.pdf>
38. Hindunomics: From State To Wealth To Dharma To Happiness By R
Jagannathan - Sep 1, 2018 05:20 PM +05:30 IST

<https://swarajyamag.com/magazine/hindunomics-from-state-to-wealth-to-dharma-to-happiness>

39. Mahabharat continues to be the major reference in India's political economy

<https://mostlyeconomics.wordpress.com/2017/10/06/mahabharat-continues-to-be-the-major-reference-in-indias-political-economy/>

40. The Indian Judicial System, A Historical Survey, By Mr. Justice S. S. Dhavan High Court, Allahabad, Part A: Judicial System in Ancient India

https://www.allahabadhighcourt.in/event/TheIndianJudicialSystem_SSD_havan.html

41. ANCIENT INDIAN JURISPRUDENCE By : Justice MarkandeyKatju, Judge, Supreme Court of India Speech delivered on 27.11.2010 at Banaras Hindu University, Varanasi

https://www.bhu.ac.in/mmak/resent_article/JusticeKatjusLec.pdf

Notes:

[illegible]